पुस्तक माला - 4

ज्ञान-विज्ञान

शैक्षिक निबन्ध

सम्पादन

कृष्ण कुमार मिश्र

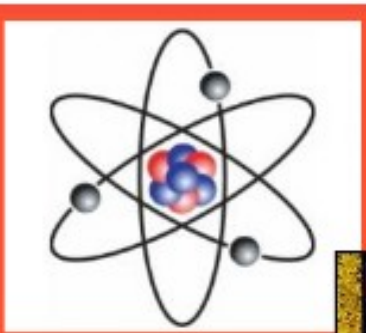

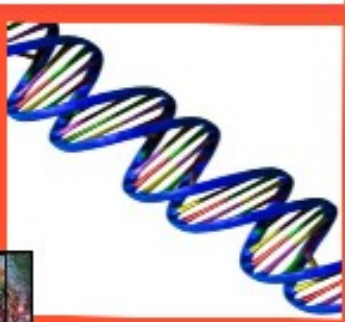

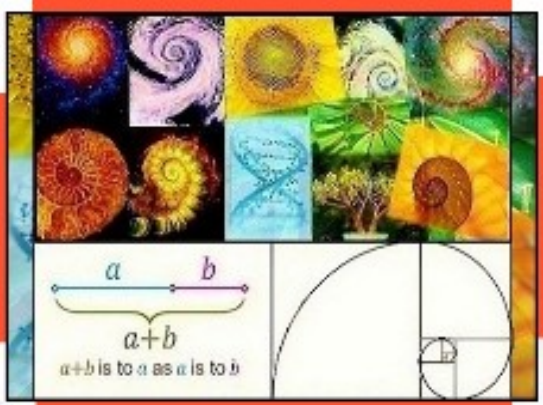

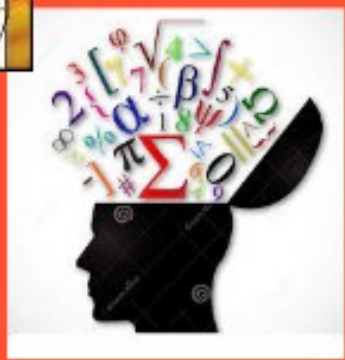

पुस्तक माला – 4

ज्ञान–विज्ञान

शैक्षिक–निबन्ध

HBCSE

सम्पादन

कृष्ण कुमार मिश्र

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र

टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान

ज्ञान–विज्ञान : शैक्षिक–निबन्ध

- सम्पादक : प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र
- प्रकाशक : होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र
  टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान
  वी. एन. पुरव मार्ग, मानखुर्द
  मुंबई–400088

- © सर्वाधिकार केन्द्र,मुंबई : होमी भाभा विज्ञान शिक्षा

- शब्द संयोजन एवं पृष्ठ योजना : शितल सदगीर, कोमल सिन्हा
- आवरण : शितल सदगीर
- संस्करण : प्रथम, वर्ष 2015

प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना यह पुस्तक या इसका कोई अंश, इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटोकॉपी या किसी भी अन्य रूप में प्रकाशित या संग्रहीत नहीं किया जा सकता।

विशेष – इस पुस्तक में आलेखों के संगत चित्र विकीपीडिया मुक्त ज्ञानकोष (http://www.wikipedia.org) से साभार लिए गए हैं।

आवरण – छवियाँ विकीपीडिया (http://www.wikipedia.org) से साभार

HBCSE

पुस्तक माला–4

ज्ञान–विज्ञान : शैक्षिक–निबन्ध

अनुक्रमणिका

- प्राक्कथन/ प्रो. जयश्री रामदास vii
- प्रस्तावना/ प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र viii

01. परमाणु संरचना 01
प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र

02. गतिविधियों के द्वारा गणित शिक्षण 13
डॉ. ज़ाकिर अली 'रजनीश'

03. संख्याओं की अद्भुत दुनिया 23
रिन्टू नाथ

04. थायराइड ग्रंथि और उसके स्रावित हार्मोन 37
सचिन नरवड़िया

05. परजीवी और उनका संक्रमण 41
डॉ. इरफाना बेगम

06. वैज्ञानिक साक्षरता और टेलीविजन की भूमिका 48
नवनीत कुमार गुप्ता

HBCSE

07. विश्वप्रसिद्ध आनुवंशिकीविद् टॉमस हंट मॉर्गन 57
डॉ. प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

08. कोलॉइड : संरचना एवं अनुप्रयोग 68
डॉ. मनु सिकरवार

09. पादपोपचार (फाइटोरेमिडिएशन) : धातु निस्तारण की एक बेहतर तकनीक 81
डॉ. दिनेश मणि

10. जीवों के अवशेषी अंगों से जैव विकास के प्रमाण 86
मनीष मोहन गोरे

11. भारतीय ज्ञानपरम्परा में अंकों का शाब्दिक विश्लेषण 97
डॉ. रेखा रॉय

12. आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विज्ञान सीखने–सिखाने की प्रभावी विधाएं 104
डॉ. सुनील कुमार गौड़

13. सन्तुलित आहार 115
डॉ. उमेश कुमार शुक्ल

14. डी.एन.ए संरचना की खोज 128
डॉ. अर्चना पांडेय

15. अनुक्रम, श्रेढ़ी और श्रेणी 138
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र

HBCSE

16. विज्ञान शिक्षण हेतु अल्पव्ययी दृश्यश्रव्य सामग्री का प्रयोग 148
अखिलेश कुमार श्रीवास्तव

17. जैव प्रौद्योगिकी एवं उसके अनुप्रयोग 154
डॉ. दुर्गा दत्त ओझा

******

HBCSE

HBCSE

–: प्राक्कथन :–

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र के कार्य का उद्देश्य है कि देश में प्राथमिक स्कूल से लेकर स्नातक स्तर तक विज्ञान एवं गणित की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सभी को हासिल हो। स्कूली शिक्षा में सच्चे रूप से बदलाव तभी आ सकता है जब लोकमानस में विज्ञान के प्रति रुचि का निर्माण हो, और वैज्ञानिक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिले। होमी भाभा केन्द्र का कार्य अनुसंधान और विकास की बुनियाद पर निर्मित है। विज्ञान और गणित शिक्षा में अनुसंधान, अभ्यास, फील्ड वर्क की परस्पर अन्योन्यक्रिया से नई संकल्पनाएँ निर्मित होती हैं। समय के साथ शैक्षिक सामग्री के रूप में उन्हें विकसित करने का इस केन्द्र का लगातार प्रयास रहा है। इसी सोच के साथ होमी भाभा केन्द्र, "हिन्दी में शैक्षिक ई–सामग्री का विकास" विषय पर विज्ञान परिषद प्रयाग के साथ मिलकर द्विवार्षिक कार्यशाला आयोजित करता आया है। यह कार्यशाला देश के बेहतरीन विज्ञान लेखकों की मदद से विज्ञान और गणित को लोकप्रिय बनाने, तथा शैक्षिक सामग्री विकसित करने का एक सुन्दर अवसर है।

यह पुस्तक इसी क्रम में आयोजित चौथी राष्ट्रीय कार्यशाला का नतीजा है। इसमें कुल 17 निबन्ध संकलित हैं। ये निबन्ध विज्ञान तथा गणित के विविध विषयों पर केंद्रित हैं। इस किताब को कार्यशाला के संयोजक प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र ने संपादित किया है। मुझे यह कहने में खुशी है कि इस श्रृंखला की छपी पहली तीन पुस्तकों के साथ यह पुस्तक भी वेबसाइट पर ई–पुस्तक के रूप में अपलोड की जाएगी जहां से छात्र, अध्यापक तथा आम पाठक इसे निःशुल्क डाउनलोड कर सकेंगे तथा लाभ उठा सकेंगे। मुझे विश्वास है, यह पुस्तक हिन्दी में विज्ञान के लोकव्यापीकरण तथा देश में वैज्ञानिक साक्षरता को बढ़ावा देने में बहुत सार्थक भूमिका निभाएगी।

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान
मुंबई

प्रो. जयश्री रामदास
केन्द्र निदेशक

–: प्रस्तावना :–

इक्कीसवीं सदी ज्ञान की सदी है। इसमें वही समाज तथा राष्ट्र तरक्की करेगा जो ज्ञान पर पकड़ रखेगा। इस ज्ञान के आदान–प्रदान में संचार प्रौद्योगिकी की बड़ी अहम भूमिका है। देश में पिछले दो दशकों में संचार तकनीक का जबर्दस्त विकास तथा विस्तार हुआ है। देश के दूर दराज के क्षेत्र भी संचार माध्यमों के जरिए आपस में जुड़ रहे हैं। इंटरनेट सुविधाओं का विस्तार महानगरों, शहरों तथा कस्बों को पार करता हुआ अब गांव–देहात की ओर अग्रसर है। डिजिटल इंडिया के अंतर्गत समूचे भारत को सूचना तथा संचार नेटवर्क से जोड़ देने का महत्वाकांक्षी कार्यक्रम सरकार ने शुरू किया है। कंप्यूटर, टैब्लेट्स, तथा मोबाइल टेलीफ़ोन की पहुंच जन–जन तक हो रही है। देश में मोबाइल फोनधारकों की संख्या 100 करोड़ के आँकड़े को पार कर चुकी है।

सूचना तथा संचार क्रांति के वर्तमान दौर में पठन–पाठन तथा ज्ञानार्जन का तौर–तरीका भी तेजी से बदल रहा है। शिक्षा अपनी पारंपरिक पद्धति से आधुनिक पद्धति की ओर अग्रसर है। वह ब्लैकबोर्ड तथा चाक के चलन से स्मार्ट बोर्ड एवं पॉवर प्वाइंट की ओर अग्रसर है। शिक्षण में डिजिटल युक्तियों का इस्तेमाल बढ़ रहा है तथा कक्षाएं अब डिजिटल हो रही हैं। लेकिन भारतीय भाषाओं, विशेष कर के, हिन्दी माध्यम के छात्रों, अध्यापकों तथा शिक्षक–प्रशिक्षकों के लिए भी इलेक्ट्रॉनिक सामग्रियां सुलभ हों, यह बेहद जरूरी है। इसी आवश्यकता को पहचानते हुए होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र ने हिन्दी में शैक्षिक सामग्रियों के सृजन का संकल्प लिया तथा उस दिशा में कार्यरत है। वर्ष 2008 में केन्द्र ने हिन्दी में शैक्षिक सामग्री के सृजन के लिए समर्पित देश का प्रथम तथा एकमेव लर्निंग पोर्टल (http://ehindi.hbcse.tifr.res.in) शुरू किया। वर्तमान में इस वेबसाइट पर ई–व्याख्यान, ई–प्रस्तुतियां, ई–पुस्तकें, ई–लेख, ई–रिपोर्ट, ई–पत्रिका, ई–शब्दावली, तथा अनेक उपयोगी इंटरनेट लिंक दिए गए हैं। पोर्टल पर होमी भाभा केन्द्र द्वारा तैयार स्कूली पाठ्यक्रम की विज्ञान की पुस्तकें तथा लोकोपयोगी विज्ञान की किताबें भी उपलब्ध हैं। विज्ञान तथा गणित

विषयों पर करीब 100 व्याख्यान उपलब्ध कराए जा चुके हैं।

ज्ञान–विज्ञान– शैक्षिक निबन्ध, पुस्तकमाला–4 की प्रस्तुत पुस्तक में विभिन्न विषयों पर कुल 17 शैक्षिक निबन्ध संकलित हैं। ये निबन्ध वर्ष 2014 में होमी भाभा केन्द्र द्वारा आयोजित चौथी राष्ट्रीय कार्यशाला में दिए गए व्याख्यानों पर आधारित हैं। इस कार्यशाला का शीर्षक था– हिन्दी में शैक्षिक ई–सामग्री का विकास। होमी भाभा केन्द्र ने वर्ष 2008, 2010 तथा 2012 में ऐसी तीन राष्ट्रीय कार्यशालाएं विज्ञान परिषद् प्रयाग के तत्वावधान में इलाहाबाद में आयोजित की थीं। उनमें दी गयी तकनीकी प्रस्तुतियों पर आधारित पुस्तकें पहले ही प्रकाशित की जा चुकी हैं। वे पुस्तकें पीडीएफ तथा आनलाइन फॉर्मेट में वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिन्हें कोई भी निःशुल्क डाउनलोड कर सकता है तथा प्रिंट ले सकता है। इन कार्यशालाओं में दी गई तकनीकी प्रस्तुतियों को ई–व्याख्यान के रूप में उपरोक्त वेबसाइट पर डाला जा चुका है। इसके अलावा अनेक तकनीकी प्रस्तुतियों की सॉफ्टप्रतियां भी वेबसाइट पर ई–प्रस्तुतियों के रूप में उपलब्ध हैं।

इस तरह इन कार्यक्रमों से विज्ञान तथा गणित विषयों के लिए डिजिटल एवं मुद्रित, दोनों तरह की सहपाठ्यचर्यात्मक सामग्रियां सृजित किए जाने का प्रयास किया गया है। आपसे अनुरोध है कि इस वेबसाइट पर जाएं तथा विज्ञान पर इन शैक्षिक सामग्रियों के बारे में अपने विचारों तथा सुझावों से आप हमें जरूर अवगत कराएं। इसके लिए वेबसाइट पर दिए गए 'आपके सुझाव' लिंक के जरिए आप हमें ई–मेल भेज सकते हैं। आप अलग से भी ई–मेल के द्वारा kkm@hbcse.tifr.res.in पर पत्र लिखकर अपनी राय तथा रचनात्मक सुझावों से हमें अवगत करा सकते हैं।

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान
मुंबई

प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र

HBCSE

ज्ञान–विज्ञान

शैक्षिक निबंध

HBCSE

HBCSE

परमाणु संरचना

■ प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र

परमाणु संरचना आधुनिक विज्ञान का प्रमुख विषय है। भौतिक विज्ञान हो या फिर रसायन विज्ञान, इन विषयों की बुनियाद परमाणु संरचना पर टिकी हुई है। इसीलिए इन विषयों की पुस्तकों में शुरू के अध्यायों में परमाणु संरचना की चर्चा होती है। भौतिक जगत का अध्ययन बिना परमाणुओं की संरचना को जाने नहीं हो सकता। जैसा कि हम जानते हैं, परमाणु किसी द्रव्य की सबसे सूक्ष्म संरचना होते हैं जो रासायनिक अभिक्रिया में भाग लेते हैं। लेकिन परमाणु स्वतंत्र रूप से नहीं रह सकते। सभ्यता के आदिकाल से पदार्थ की सूक्ष्मतम रचनात्मक इकाई को जानने की उत्सुकता दार्शनिकों तथा विचारकों में रही है। प्राचीन काल से ही मानव परमाणु संरचना और तत्वों के बारे में जानने का इच्छुक रहा है। इस जिज्ञासा के कारण परमाणु संरचना के बारे में कई अभिधारणाएं प्रस्तुत हुई। प्राचीन काल में ऐत्रेय ऋषि ने विश्व को कुछ मूलभूत तत्वों में बांटा था जो थे– पंचमहाभूत (वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तथा आकाश)। कपिल मुनि के सांख्य दर्शन के मतानुसार प्रकृति ही पंचमहाभूतों की जननी है। पश्चिमी सभ्यता में यूनानी दार्शनिक एम्पेडोकल्स ने सर्वप्रथम मूलभूत तत्वों को पृथ्वी, वायु, अग्नि और जल के रूप में वर्गिकृत किया। रसायन विज्ञान की दृष्टि से ब्रह्मांड में दो ही चीज़ें हैं – द्रव्य/पदार्थ एवं विद्युत–चुंबकीय विकिरण।

इसके बाद अरस्तू (अ. 384–323 ई. पू.) ने चतुर्तत्व का मत दिया– यानी वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी। उन्होंने बताया कि लौकिक वस्तुएं इनसे ही बनी हैं। इनके अलावा ईथर तत्व भी है जिससे ब्रह्माण्ड की वस्तुएं बनी है। महर्षि कणाद के मतानुसार ईथर या आकाश की कोई संरचना नहीं है। उन्होंने बताया कि कण चार प्रकार के होते है; वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी। प्राचीन चीनी सभ्यता के अनुसार भौतिक जगत के पांच तत्व– पृथ्वी, काष्ठ, धातु, अग्नि और जल थे।

तात्विक पदार्थ

कालान्तर में 6 वीं शताब्दी ईसा पूर्व में भारतीय दार्शनिक महर्षि कणाद ने यह अभिधारणा दी कि द्रव्यों को छोटे कणों में विभाजित करने की एक सीमा होती है। द्रव्यों का गठन करने वाले अविभाज्य कणों को कणाद ने 'परमाणु' नाम दिया। कणाद के अनुसार परमाणु अविनाशी होता है। इसका अलग से कोई अस्तित्व नहीं होता तथा भिन्न–भिन्न पदार्थों के परमाणु भिन्न–भिन्न होते हैं।

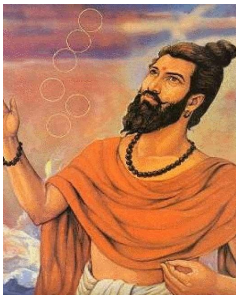

महर्षि कणाद

विख्यात यूनानी दार्शनिक डेमोक्रिटस ने 430 ई.पू. में यह अभिधारणा दी कि द्रव्य छोटे–छोटे कणों से बने होते हैं और इन छोटे कणों को अधिक छोटे कणों में विभाजित नहीं किया जा सकता। डेमोक्रिटस ने द्रव्य के सबसे छोटे कण को एटोमॉस नाम दिया।

सन् 1808 ई. में ब्रिटिश रसायनज्ञ जॉन डाल्टन ने द्रव्य की प्रकृति के बारे में बुनियादी सिद्धांत दिए जो आधुनिक विज्ञान की बुनियाद पर आधारित थे। डाल्टन के परमाणु सिद्धांत के अनुसार, सभी द्रव्य (तत्व, यौगिक या मिश्रण) परमाणु नाम के छोटे कणों से बने होते हैं। इस सिद्धांत की कई अभिधारणाएं हैं जैसे कि सभी द्रव्य बहुत छोटे कणों से बने होते हैं और इन कणों को परमाणु कहा जाता है। परमाणु अविभाज्य होते हैं। इन्हें रासायनिक अभिक्रिया के दौरान निर्मित या नष्ट नहीं किया जा सकता है। एक दिए गए तत्व के परमाणुओं के द्रव्यमान और रासायनिक गुण परस्पर समान होते हैं। भिन्न–भिन्न तत्वों के परमाणुओं के द्रव्यमान और रासायनिक गुण भिन्न–भिन्न होते हैं। परमाणु सरल पूर्णांकों के अनुपात में संयोग करके यौगिकों का निर्माण करते हैं। किसी दिए गए यौगिक में परमाणुओं के प्रकार और सापेक्ष संख्याएं नियत होती हैं। लेकिन डाल्टन का यह परमाणु सिद्धांत, परमाणु के भीतर इलेक्ट्रॉनों और प्रोटॉनों की संरचना के बारे में विवरण देने में असफल रहा।

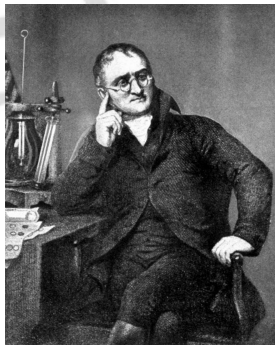

जॉन डाल्टन

इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन की खोज के बाद डाल्टन का परमाणु सिद्धांत परमाणु के भीतर इलेक्ट्रॉनों और प्रोटॉनों की अवस्थित तथा संरचना की व्याख्या नहीं कर सका। अत:

परमाणु की संरचना का मॉडल प्रस्तावित कर उसका विवरण देने वाले सर जे. जे. थॉमसन पहले व्यक्ति थे।

जे. जे. थॉमसन

डाल्टन के मॉडल के लगभग 100 वर्ष बाद कैथोड रे ट्यूब के साथ काम करते हुए सर जे. जे. थॉमसन ने कैथोड (ऋणावेशित इलेक्ट्रोड) से उत्सर्जित किरणों के बारे में पाया कि ये ऋणावेशित कण थे जो चुंबकीय क्षेत्र में विक्षेपित हो रहे थे। उन्होंने यह भी बताया कि ये ऋणावेशित कण सभी पदार्थों के मूलभूत घटक हैं। उन्होंने इन कणों को "इलेक्ट्रॉन" नाम दिया।

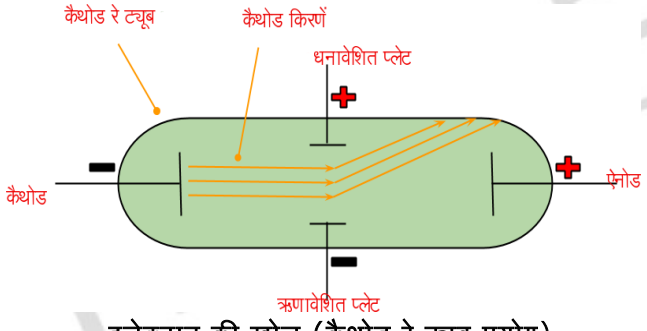

इलेक्ट्रान की खोज (कैथोड रे ट्यूब प्रयोग)

सर जे. जे. थॉमसन ने सर्वप्रथम यह बताया कि नाभिक के चारों ओर पाये जाने वाले ऋणावेशित कण इलेक्ट्रॉन हैं। इलेक्ट्रॉन की खोज सर जे. जे. थॉमसन ने 1897 में की थी। इलेक्ट्रॉन के गुणधर्म नीचे की सारिणी में दिए गए हैं।

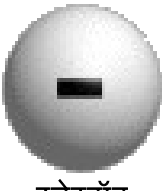
इलेक्ट्रॉन

इलेक्ट्रॉन कण डाटा

चिन्ह	द्रव्यमान	अर्ध जीवन काल	आवेश	स्पिन
e^-	0.511 MeV	स्थिर	−1	1/2

सन् 1903 में सर जे. जे. थॉमसन ने परमाणु संरचना को क्रिसमस पुडिंग एवं तरबूज के समान बताया जिसमें धनावेशित क्षेत्र में इलेक्ट्रॉन, गोलाकार पुडिंग में बिखरे हुए किशमिश या फिर किसी तरबूज में सन्निहित बीज के जैसे होते हैं। थॉमसन ने प्रस्तावित किया कि परमाणु एक ठोस गोलाकार क्षेत्र है जिसमें धनात्मक रूप से आवेशित गोल और उसमें अंतःस्थापित इलेक्ट्रॉन हैं। ऋणावेशित तथा धनावेशित क्षेत्र समान परिमाण में और समरूप में वितरित हैं। इसलिए कोई भी परमाणु समग्र रूप से विद्युत उदासीन होता है।

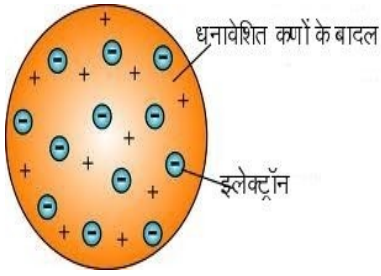

वास्तविक परमाणु

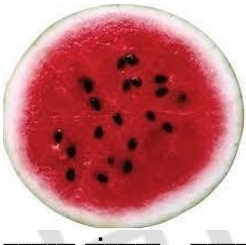
परमाणु संरचना– तरबूज में निहित बीज

परमाणु मॉडल – क्रिसमस पुडिंग

इसके बाद अर्नेस्ट रदरफोर्ड ने स्वर्ण पर्णिका (गोल्ड फॉइल) प्रयोग के द्वारा परमाणु के नाभिक की खोज की। रदरफोर्ड को परमाणु संरचना के बारे में जानने की दिलचस्पी थी। इस प्रयोग से प्राप्त अवलोकनों से उन्हें परमाणु के भीतर की जानकारी मिली। उन्होंने पाया था कि अधिकांश α–कण स्वर्ण पर्णिका के माध्यम से सीधे गुजर गए। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि परमाणु के भीतर ज्यादातर स्थान रिक्त हैं। चूंकि अधिकांश कण अपने मार्ग से अल्प कोण से विक्षेपित हो गए तथा बड़ी मुश्किल से 12000 कणों में से कोई एक कण पलटकर वापस लौट आया।

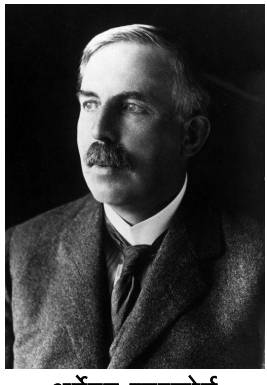
अर्नेस्ट रदरफोर्ड

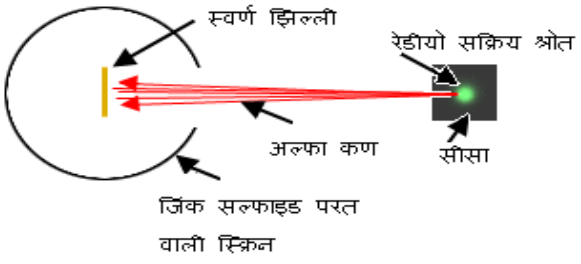

स्वर्ण पर्णिका (गोल्ड फॉइल) प्रयोग

इससे यह नतीजा निकाला गया कि परमाणु के भीतर कोई धनावेशित केंद्र है जो आकार में बहुत छोटा है। इस प्रयोग के आधार पर, रदरफोर्ड ने परमाणु का नाभिकीय मॉडल प्रस्तुत किया। इसकी कुछ खास बातें थीं। मसलन कि किसी परमाणु में नाभिक एक धनावेशित केंद्र होता है। परमाणु का लगभग पूर्ण द्रव्यमान नाभिक में ही होता है। इलेक्ट्रॉन सुपरिभाषित कक्षाओं में नाभिक के चारों ओर घूमते हैं। नाभिक का आकार परमाणु के आकार की तुलना में बहुत छोटा होता है।

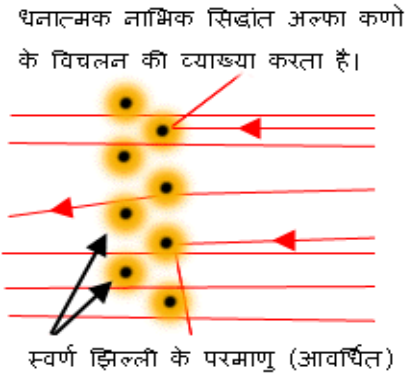

इसके बाद प्रोटॉन की खोज हुई। परमाणु के नाभिक में पाए जाने वाले धनावेशित कणों को प्रोटॉन कहते हैं। प्रोटॉन की खोज अर्नेस्ट रदरफोर्ड द्वारा किए गए प्रयोगों से हुई।

प्रोटॉन

प्रोटॉन कण डाटा

चिन्ह	द्रव्यमान	अर्ध जीवन काल	आवेश	स्पिन	क्वार्क सामग्री
p	938.3 MeV	$>10^{32}$ वर्ष	+1	1/2	uud

अलबत्ता रदरफोर्ड के परमाणु मॉडल में कई खामियां थीं। यदि इसे सही माना जाए तो इलेक्ट्रॉन की कक्षीय परिक्रमा स्थिर नहीं होगी क्योंकि वृत्तीय कक्षा में गतिमान कणों में त्वरण होता है। त्वरण के दौरान आवेशित कणों से ऊर्जा का विकिरण होगा। इस प्रकार परिक्रमारत इलेक्ट्रॉन ऊर्जा खोते हुए सर्पिलाकार पथ पर गति करेगा तथा अंततोगत्वा नाभिक में गिर जाएगा। यदि ऐसा हुआ होता तो परमाणु अत्यधिक अस्थिर होता जब कि वास्तविकता में ऐसा नहीं होता।

बाद में रदरफोर्ड के परमाणु मॉडल में मौजूद कमियों को दूर करते हुए नील बोर ने परमाणु मॉडल के बारे में एक अभिधारणा प्रस्तुत की जिसके अनुसार केवल कुछ विशेष कक्षाओं (विविक्त कक्षाओं या डिस्क्रीट कक्षाओं) को ही परमाणु के अंदर जाने की अनुमति है और जब इलेक्ट्रॉन विविक्त कक्षाओं (डिस्क्रीट आर्बिटल्स) में घूमते हैं तब वह ऊर्जा का विकिरण नहीं करते। इन कक्षाओं को ऊर्जा स्तर (एनर्जी लेवल) कहा जाता है और इन्हें K, L, M, N, ...या संख्या 1, 2, 3, 4, ... से दर्शाया जाता है।

नील बोर

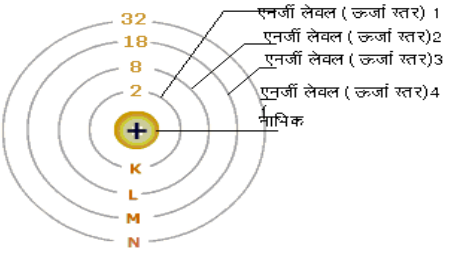

नील बोर के परमाणु मॉडल में ऊर्जा के स्तर

सन् 1922 में नील बोर को उनके परमाणु की संरचना पर किए गए काम के लिए नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। लेकिन बोर मॉडल में भी कुछ खामियां थी। बोर मॉडल किसी भी अन्य तत्व के परमाणु स्पेक्ट्रम, यहां तक कि अगले सरलतम तत्व हीलियम के परमाणु स्पेक्ट्रम की व्याख्या करने में असफल रहा। बोर मॉडल एक से अधिक इलेक्ट्रॉन वाले परमाणुओं के लिए काम नहीं करता क्योंकि इन परमाणुओं में नाभिक–इलेक्ट्रॉन आकर्षण और इलेक्ट्रॉन–इलेक्ट्रॉन प्रतिकर्षण जैसे कारक मौजूद होते हैं।

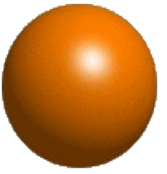
न्यूट्रॉन

सन् 1932 में जेम्स चैडविक ने एक नए कण की खोज की जिसमें कोई आवेश नहीं था और उसका द्रव्यमान करीब प्रोटॉन के बराबर था। विद्युत उदासीन होने के कारण इसका नाम न्यूट्रॉन रखा गया। केवल हाइड्रोजन को छोड़कर, बाकी सभी परमाणुओं के नाभिक में न्यूट्रॉन होता है। सामान्य तौर पर, न्यूट्रॉन को 'n' से दर्शाया जाता है। वर्ष 1960 तथा सत्तर के दशक में स्टैनफोर्ड लीनियर एक्सीलरेटर केन्द्र (Stanford Linear Accelerator Center) में किये गये प्रयोगों से पाया गया कि न्यूट्रॉन दूसरे कणों से बने होते हैं जिसे "क्वार्क" कहते हैं। न्यूट्रॉन एक 'अप' क्वार्क और दो 'डाउन' क्वार्क से बनता है। न्यूट्रॉन के गुण नीचे दिए गए हैं।

न्यूट्रॉन कण डाटा

चिन्ह	द्रव्यमान	स्थान	अर्ध जीवन काल	आवेश	स्पिन	क्वार्क सामग्री
n	939.6 MeV	नाभिक में स्थिर	मुक्त : 15 मिनट	0	1/2	udd

भौतिकीविदों का मानना है कि सभी सांसारिक वस्तुएं यानी द्रव्य तीन प्रकार के बुनियादी कणों से बने हैं : क्वार्क, लेप्टॉन और बोसॉन। इनमें क्वार्क और लेप्टॉन से रोजमर्रा की वस्तुएं बनती हैं। ये कण परस्पर बोसॉन कणों के द्वारा एक दूसरे से बंधे हुए होते है। प्रत्येक बोसॉन किसी बल से संबंधित होता है। फोटॉन, विद्युत चुम्बकीय बल की इकाई है। क्वार्क को परस्पर बांधे रखने के लिए ग्लुआन कण जिम्मेदार होते हैं। प्रोटॉन और न्यूट्रॉन क्वार्कों से बने होते हैं जो कि ग्लुआन क्षेत्रों से बंधे हुए होते हैं।

इस संदर्भ में एक स्टैंडर्ड मॉडल भी है। यह एक सरल और व्यापक सिद्धांत है जो सैंकड़ो कणों और जटिल प्रक्रियाओं को कुछ ही कणों के जरिए परिभाषित करता है। इस स्टैंडर्ड मॉडल का चित्र नीचे दिखाया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि परमाणु के बारे में जानने की जिज्ञासा ने हमारी जानकारी में उत्तरोत्तर परिवर्तन तथा परिवर्धन करते हुए उसे कहां से कहां तक पहुंचा दिया है तथा इतनी विविध वस्तुएं कुछ बहुत ही सरल कणों से निर्मित हैं।

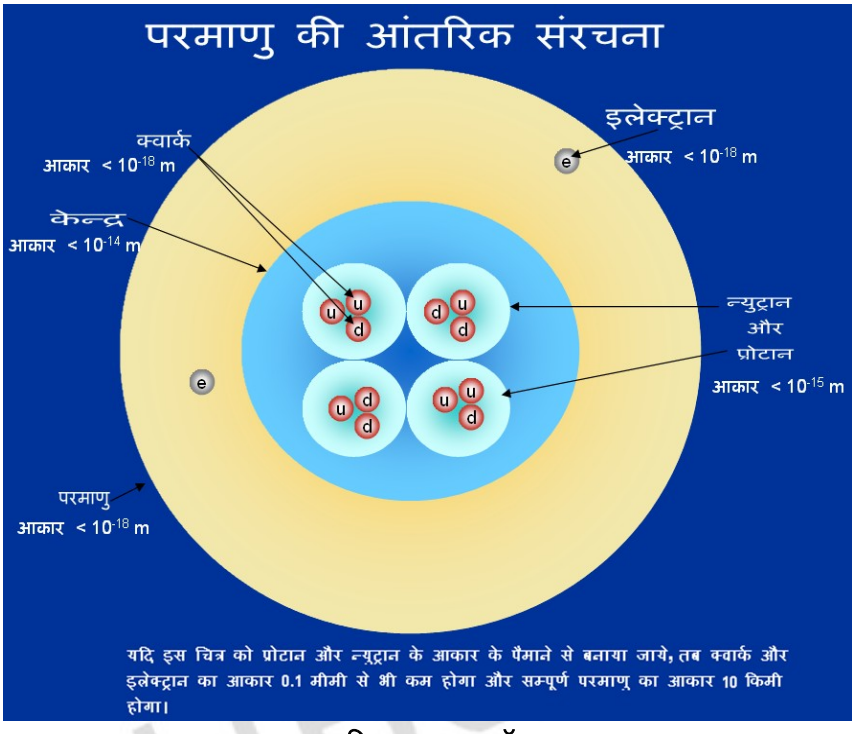

आधुनिक परमाणु मॉडल

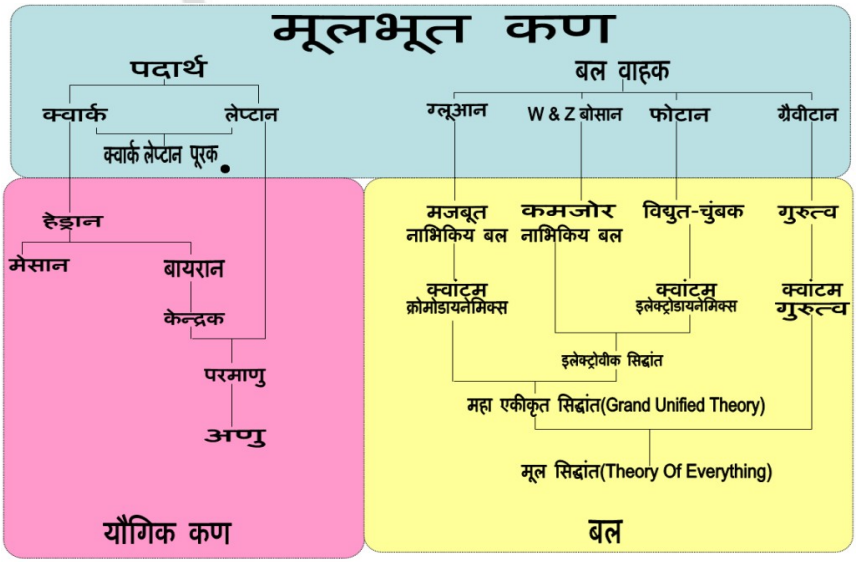

स्टैंडर्ड मॉडल : स्टैंडर्ड मॉडल में कणों की सूची

फर्मियॉन्स				
लेप्टॉन्स				
नाम	**संकेत**	**प्रति–कण**	**आवेश(e)**	**द्रव्यमान**
इलेक्ट्रॉन	e^-	e^+	−1	0.511
इलेक्ट्रॉन न्यूट्रिनो	V_e	$\overline{V}_{\bar{e}}$	0	< 2.2
म्यूऑन	μ^-	μ^+	−1	105.7
म्यूऑन न्यूट्रिनो	$V\mu$	$\overline{V}^{\bar{\mu}}$	0	< 0.170
टाओऑन	T^-	T^+	−1	1777
टाओऑन न्यूट्रिनो	V_T	$\overline{V}_T$	0	< 15.5
क्वार्क्स				
अप	u	$\bar{u}$	+2/3	1.5–3.3
डाउन	d	$\bar{d}$	−1/3	3.5–6.0
चार्म	c	$\bar{c}$	+2/3	1,160–1,340
स्ट्रेन्ज	s	$\bar{s}$	−1/3	70–130
टॉप	t	$\bar{t}$	+2/3	169100–173300
बॉटम	b	$\bar{b}$	−1/3	4,130–4,370
बोसॉन्स				
फोटॉन	γ	Self	0	0
W बोसॉन	W^-	W^+	−1	80.4
Z बोसॉन	Z	Self	0	91.2
ग्लुऑन	g	Self	0	0
हिग्स बोसॉन	H^0	Self	0	> 112

HBCSE

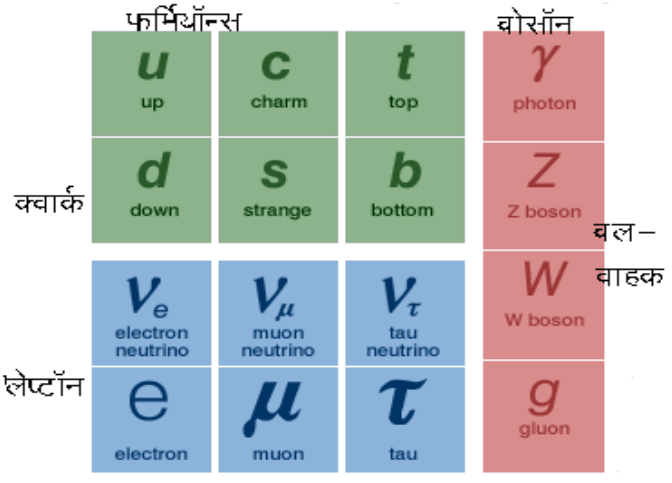

स्टैंडर्ड मॉडल

क्वार्क और लेप्टॉन से द्रव्य का निर्माण होता है। ये बोसॉन द्वारा एक दूसरे के साथ जुड़े होते हैं। फोटॉन, इलेक्ट्रॉन को नाभिक से जोड़कर रखते हैं। क्वार्क को परस्पर बांधे रखने में ग्लुऑन कणों की भूमिका होती है। प्रोटॉन और न्यूट्रॉन क्रमशः तीन–तीन क्वार्क कणों से बने हैं। जैसा कि हम जानते हैं, फोटॉन विद्युतचुंबकीय बल–वाहक कण है लेकिन फोटॉन का विद्युत आवेश नहीं होता है। यह स्वयं का प्रतिकण भी है।

हिग्स बोसॉन

हिग्स बोसॉन पदार्थ की संहति के लिए जिम्मेदार होते हैं। ये सर्वव्यापी कण होते हैं तथा उनकी फील्ड होती है जिसे हिग्स फील्ड कहा जाता है। हिग्स बोसॉन को प्राप्त करने के लिए प्रोटॉन को लगभग प्रकाश की गति से परस्पर टकराया जाता है। सर्न प्रयोगशाला के भूमिगत कण त्वरक में प्रयोग करने पर हिग्स बोसॉन कण के अस्तित्व की पुष्टि हो चुकी है।

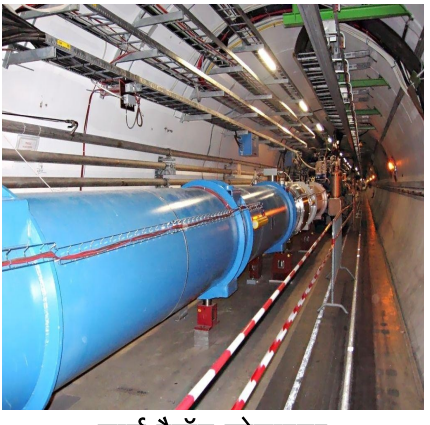

लार्ज हैड्रॉन कोलाइडर

इस महामशीन के महाप्रयोग पर अरबों डॉलर का खर्चा आया।

बोसॉन

स्टैंडर्ड मॉडल में, बोसॉन (ग्लुऑन, फोटॉन, W और Z बोसॉन) बलों के मध्यस्थ (मीडीऐट) की भूमिका निभाता हैं।

ग्लुऑन

ग्लुऑन मजबूत अंतःक्रिया में मध्यस्थ (मीडीऐट) की भूमिका निभाता है। प्रोटॉन और न्यूट्रॉन ग्लुऑन के माध्यम से जुड़े हुए होते हैं और परमाणु नाभिक का निर्माण करते हैं।

लेप्टॉन

ये बिंदु के जैसे लगते हैं जिनकी कोई आंतरिक संरचना नहीं होती है। सबसे प्रमुख लेप्टॉन e^- है, जिसे हम इलेक्ट्रॉन कहते हैं। अन्य तीन लेप्टॉन तीन तरह के न्युट्रीनो (ν) हैं।

फोटॉन

इसी प्रकार से एक कण है फोटॉन जो विद्युत–चुंबकीय बल से संबंधित है। यह प्रकाश का एक कण है। इनमें शून्य संहति और शून्य आवेश होता है।

क्वार्क्स

क्वार्क्स को द्रव्य का एक बुनियादि मूलभूत अंग माना जाता है। पहले प्रकार में अप और डाउन (Up and Down) क्वार्क्स, जो एक साथ जुड़कर प्रोटॉन और न्यूट्रॉन बनते है। दूसरे प्रकार में स्ट्रेन्ज और चार्म (Strange and Charm) क्वार्क्स होते हैं और तीसरे प्रकार में टॉप और बॉटम (Top and Bottom) क्वार्क्स होते हैं।

भौतिकविदों द्वारा यह प्रस्तावित किया गया है कि सारे कण एक सर्वव्याप्त फील्ड से क्रिया करके संहति में रहते है। इस क्षेत्र को हिग्स फील्ड कहते हैं। हिग्स बोसॉन इस फील्ड में बल–वाहक का कार्य करता है और यह पदार्थ की संहति के लिए उत्तरदायी होता है। हिग्स बोसॉन की अधिक जानकारी के लिए खोज आज भी जारी है। इस तरह हम देखते हैं कि

परमाणु संरचना जानने का कितना रोचक इतिहास है तथा समय के साथ इस संरचना के बारे में हमारे मत तथा संकल्पनाएं किस तरह से परिमार्जित होते गए हैं।

➢ होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान
वी. एन. पुरव मार्ग, मानखुर्द
मुंबई – 400 088

HBCSE

गतिविधियों के द्वारा गणित शिक्षण

■ डॉ. ज़ाकिर अली 'रजनीश'

सारांश

गणित को बहुत से लोग हौव्वा समझते हैं। बचपन से ही उसको लेकर भय का माहौल बना दिया जाता है। यही कारण है कि बच्चे इससे दूर भागने लगते हैं। कुछ लोग तो गणित का नाम लेते ही थर्राने लगते हैं। ऐसे लोगों के लिए गणित एक प्रकार से 'मैथिमैटिक्स फोबिया' (गणित भय) से कम नहीं है। पसीना आना, जल्दी–जल्दी सांस लेना, दिल की धड़कन तेज हो जाना, स्पष्ट बोलने में दिक्कत होना, चिंता का दौरा पड़ना इत्यादि इसके प्रमुख लक्षण हैं।

गणित को लेकर हमारे समाज में कुछ अजीबोगरीब धारणाएं प्रचलित हैं, जैसे– गणित एक ठोस विषय है, अन्य विषयों की तुलना में गणित ज्यादा कठिन होता है, यह बेहद नीरस विषय है, गणित के अध्यापक बेहद गंभीर होते हैं, वे हँसते–मुस्कुराते नहीं हैं। इसी तरह से लड़कियों के बारे में यह धारणा प्रचलित है कि वे गणित में कमजोर होती हैं। आश्चर्य का विषय है कि इन धारणाओं का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है, फिर भी ये हमारे समाज में प्रचलित हैं।

ऐसा नहीं है कि पहली बार स्कूल जाने वाले बच्चे गणित से पूर्णतः अंजान होते हैं। वे रूपया–पैसा समझते हैं, टॉफी और रोटियाँ गिन सकते हैं। वे दुकान से लेमनचूस या खट्टी–मीठी गोलियां खरीदने का अनुभव रखते हैं। इसके अलावा उन्हें कम–ज्यादा, हल्का–भारी व दूर–पास का भी कुछ–कुछ ज्ञान होता है।

फिर ऐसा क्या हो जाता है कि स्कूल पहुंचते ही बच्चों की समझ गड़बड़ा जाती है? इसका मतलब है कि कहीं न कहीं उस प्रक्रिया में कमी है, जिसके जरिए बच्चे का गणित से परिचय कराया जाता है। संभव है कक्षा में ठोस/परिचित वस्तुओं का प्रयोग न होने की वजह से बच्चे गणित की अमूर्तता से डर जाते हों। वैसे इसका एक कारण शिक्षक का रूखा व्यवहार तथा अरूचिकर ढ़ंग से कराया गया अध्यापन भी हो सकता है। इसके साथ ही साथ शिक्षकों द्वारा बच्चों की गलतियों को नकारात्मक नजरिये से देखना भी उनमें अपराध बोध पैदा कर सकता है और वे मैथिमैटिक्स फोबिया (गणित भय) के शिकार हो सकते हैं।

ज्यादातर अध्यापक स्कूलों में गणित पढ़ाने से बचते भी हैं, खासकर प्राथमिक विद्यालयों में, जहां एक अध्यापक पर सभी विषयों को पढ़ाने की जिम्मेदारी होती है। इसके भी कई कारण हो सकते हैं। जैसे कि शिक्षक को गणित की अवधारणाएं स्पष्ट न होना, शिक्षक का गणित को एक अमूर्त विषय मानना, जिसे सिर्फ ब्लैक बोर्ड और चॉक द्वारा ही पढ़ाया जा सकता है।

शिक्षाविदों का मत है कि गणित के प्रति भय या रूचि जगाना काफी हद तक अध्यापक के सिखाने की तकनीकों पर निर्भर करता है। यदि बच्चों को उनके प्रारम्भिक ज्ञान से जोड़ते हुए आसपास पाई जाने वाली वस्तुओं, चित्रों आदि के द्वारा रोचक ढ़ंग से गणित का अभ्यास कराया जाए, तो न सिर्फ वे आसानी से उसे ग्रहण करेंगे, बल्कि उसके भय से भी पूरी तरह से मुक्त हो जाएंगे।

इस लेख में प्राथमिक स्तर पर बच्चों को गणित पढ़ाने की उन्हीं रोचक एवं व्यवहारिक विधियों का जिक्र किया गया है, जिसके द्वारा बच्चों के मन से गणित के भय को निकाला जा सकता है और उनके लिए गणित को भी एक आनंददायी विषय बनाया जा सकता है।

HBCSE

प्रस्तावना

सबसे पहले तो हमारे लिए यह समझना जरूरी है कि गणित आखिर है क्या? वास्तव में गणित एक भाषा है। संप्रेषण का ही एक प्रकार, जिसमें बड़े–बड़े वक्तव्यों के लिए कुछ सर्वमान्य फार्मूलों और संकेतों का प्रयोग कर एक निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है। गणित में कुछ ऐसे नियम होते हैं जिनके बारे में गणितज्ञ कोई तर्क–वितर्क नहीं करते। इन्हें गणित की भाषा में स्वयंसिद्ध कहा जाता है। जैसे बिन्दु, रेखा या कोण की परिभाषाएं। एक गणितज्ञ इनपर सवाल खड़े नहीं करता। इन्हें ज्यों का त्यों मान लेता है।

अब सवाल यह उठता है कि आखिर हमारे लिए गणित आवश्यक क्यों है? दरअसल जीवन के प्रत्येक कदम पर हमें छोटे–मोटे हिसाब–किताब की जरूरत होती है, जिसके लिए गणित का आना जरूरी होता है। अन्यथा ठगे जाने का डर होता है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए गणित का आधारभूत ज्ञान जरूरी होता है और जो व्यक्ति उसे एक बार सहज ढ़ंग से समझ लेता है, गणित उसकी जिन्दगी का सहज व अभिन्न अंग बन जाता है।

बच्चे गणित से भय न खाएं, उसे भी सामान्य ढ़ंग से लें, इसके लिए जरूरी है कि शिक्षक कक्षा के प्रत्येक बच्चे की सीखने की क्षमता व तरीके का मूल्यांकन करे। क्योंकि कुछ विद्यार्थी समूह में बेहतर ढ़ंग से सीखते हैं, तो कुछ अकेले में। कुछ विद्यार्थी उदाहरणों, चित्रों या ग्राफ की मदद से बेहतर सीखते हैं, तो कुछ गेम खेलते हुए पढ़ना व सीखना पसंद करते हैं। इसलिए यदि शिक्षक बच्चों की रूचि को समझकर उनके मनोनुकूल ढ़ंग से गणित का अध्यापन करवाए, तो निश्चित ही बच्चे भी गणित को एक सहज रूप में लेंगे और उसे भी वैसे ही सीखेंगे, जैसे कि वे अ, आ, इ, ई या ए, बी, सी, डी को सीखते हैं।

गणित से पहला परिचय

बच्चों को गणित सिखाने के लिए सबसे उचित तरीका यही है कि पहले उन्हें वस्तुओं के द्वारा प्रत्येक चीज का अभ्यास कराया जाए, फिर चित्रों के रूप में उसे ब्लैक बोर्ड पर लाया जाए, तत्पश्चात उसे संख्या रूप में प्रदर्शित किया जाए। ऐसा करने पर वे गणित की अमूर्तता से भय नहीं खाएंगे और सहज रूप में गणित के प्रत्येक रूप से घुल–मिल जाएंगे।

स्कूल आने वाला प्रत्येक बच्चा कंचे, गेंद, इमली के बीज, पैसों/सिक्कों से भलीभाँति परिचित होता है। हम इनके द्वारा विभिन्न प्रकार के खेल खिलाते हुए बच्चों से गणित का परिचय करा सकते हैं। आइए जानते हैं कि वे कौन–कौन से खेल हो सकते हैं।

गिनतियों के मनोरंजक खेल

ईंट के चपटे और थोड़े गोल टुकड़े, जिन्हें 'गिप्पल' कहते हैं (खपरैल या टाइल के टुकड़े हों तो बेहतर है) इकट्ठा करके उन्हें एक के ऊपर एक रखें और फिर बच्चों की दो टीमें बनाकर उन्हें गेंद देकर थोड़ी दूर से उसमें निशाना लगाने को कहें। इसके लिए प्रत्येक बच्चे को पांच बार मौका दें और हर बार उन्हें गिनने के लिए कहें। जो बच्चा निशाना लगाकर गिप्पलों को गिरा दे, उसके लिए सभी बच्चों से तालियां बजवाएं। यह भी देखें कि गेंद लगने से कितनी गिप्पल गिरती हैं। गिरी हुई गिप्पलों को गिनवाएं और उन्हें एक जगह लिखते जाएं। इस तरह से यह भी देखें कि एक टीम के कितने बच्चे निशाना लगाने में कामयाब होते हैं और कितने बच्चे निशाना नहीं लगा पाते हैं। सभी लोगों की अलग–अलग गिनती करवाएं। जब एक टीम के बच्चे अपनी चांस चल लें, तो दूसरी टीम को मौका दें। जिस टीम के बच्चे अधिक बार गिप्पलों को गिरा दें, उन्हें विजेता घोषित करें।

एक छोटे से घेरे में ढ़ेर सारे कंचे रखें और थोड़ी दूरी से बच्चों को कंचे के द्वारा उसमें निशाना लगाने को कहें। निशाना लगाने पर जितने कंचे घेरे के बाहर चले जाएं, वे कंचे निशाना लगाने वाले बच्चे को दे दें। वह जोर–जोर से बोल कर सबको बताए कि उसने कितने कंचे जीते। इस तरह जो बच्चा सबसे ज्यादा कंचे घेरे के बाहर निकाल ले, उसे विजेता घोषित करें। यह खेल टीम के रूप में भी खिलाया जा सकता है।

बच्चों को दो टीमों में बांट कर उन्हें बराबर–बराबर कंचे दे दें। इसके बाद लूडो का पासा लेकर एक टीम को चलने को कहें। जो टीम पासा चलेगी, वह उसमें आने वाले नंबर के बराबर कंचे दूसरी टीम से ले लेगी। उसके बाद दूसरी टीम की बारी आएगी। वह भी ऐसा ही करेगी। जो टीम दूसरे के सारे कंचे जीत लेगी, उसे विजेता घोषित किया जाएगा।

इन खेलों के द्वारा बच्चों को एक से लेकर नौ तक की गिनतियों के बारे में बताएं। जब बच्चे इन गिनतियों को समझने लगें तो उन्हें 'बोल भाई कितने' खेल खिलवाएं। इसमें सभी बच्चों को एक जगह समूह में खड़ा कर दें और लयात्मक स्वर में पूछें– बोल भाई कितने? बच्चे जवाब देंगे– आप चाहें जितने। दो–तीन बार इस प्रक्रिया को करने के बाद एक से लेकर नौ तक की कोई भी संख्या बोलें। आप जो भी संख्या बोलेंगे, बच्चों को उतनी संख्या के अलग–अलग समूह बनाने होंगे। जो बच्चे समूहों से अतिरिक्त बच जाएं, उन्हें अपनी गिनती करने को कहें। उसके बाद सारे बच्चों को एक जगह एकत्रित करके फिर से यही प्रक्रिया करें और कोई दूसरी संख्या बोलें। इस खेल के द्वारा बच्चे स्वतंत्र रूप से गिनतियों को गिनना सीखेंगे।

जब बच्चे एक से लेकर नौ तक की गिनतियां पूरी तरह से समझ लें, तब उन्हें बताएं कि इन संख्याओं को किस तरह से लिखा जाता है। उन्हें यह भी बताएं कि लिखने की जरूरत इसीलिए पड़ती है जिससे कि याद रखने में आसानी हो। जैसे कि रमेश ने गिप्पल वाले खेल में पांच बार गेंद से सही निशाना लगाया, कंचे वाले खेल में उसने आठ कंचे बाहर निकाले और पांच बार उसकी टीम पासे वाला खेल जीती। अब अगर घर पर अपने माता–पिता को उसे यह बात बतानी हो, तो वह घर जाते–जाते भूल न जाए, इसलिए वह उन्हें अपनी कॉपी में लिख सकता है। इसके लिए वह कंचे, गेंद और पासे के चित्र बनाकर उनके आगे उन संख्याओं को लिख सकता है, जितनी बार वह उस खेल को जीता है। बच्चों को यह भी बताया जाए कि

लिखी हुई संख्याएं हमेशा सुरक्षित रहती हैं और जरूरत पड़ने पर कभी भी देखी/पढ़ी जा सकती हैं।

जोड़–घटाने के खेल

जब बच्चे गिनतियों को समझने लगें और उनमें गिनने की समझ पैदा हो जाए, तो उन्हें जोड़–घटाने के खेल खिलाए जाने चाहिए। इसके लिए उपरोक्त खेलों को ही लिया जा सकता है। जैसे कि गिप्पल वाले खेल में एक ही टीम के सदस्यों ने कितनी बार गिप्पले गिराने में कामयाबी पाई। अगर एक बच्चे ने एक से अधिक बार गिप्पले गिराईं, तो कुल कितनी गिप्पले गिरीं। इसी प्रकार दूसरे खेलों के द्वारा भी जोड़ का खेल कराया जा सकता है।

घटाने की समझ विकसित करने के लिए भी इन्हीं खेलों का उपयोग किया जा सकता है। जैसे कि एक टीम ने दूसरी टीम से कितनी ज्यादा बार मैच जीते। एक खिलाड़ी ने दूसरे खिलाड़ी से कितनी ज्यादा गिप्पले गिराईं या फिर कल की तुलना में आज कितनी कम या अधिक गिप्पलें गिराईं।

इसके लिए एक अन्य खेल भी खेला जा सकता है। इस खेल में बच्चों की दो टीमें बना कर उन्हें अलग–अलग पासे दे दिये जाएं। दोनों टीमें अपना–अपना पासा चलें और उनमें जिस टीम के पासे में अधिक अंक आए, वह दोनों पासों के अंकों को आपस में जोड़ या घटा कर आई हुई संख्या के बराबर कंचे दूसरी टीम से ले ले।

प्रारम्भ में जोड़/घटाव के लिए छोटी–छोटी संख्याओं का ही उपयोग करें। जब बच्चे जोड़/घटाव की अवधारणा समझ लें, तो उन्हें उसको लिखने का तरीका समझाएं और उन्हें जोड़ तथा घटाव के चिन्हों के बारे में बताएं। जब बच्चे इसे समझ जाएं, तो उन्हें उनके आसपास की वस्तुओं को आपस में जोड़ने/घटाने के लिए प्रेरित करें।

जब बच्चे इस खेल में थोड़ा माहिर हो जाएं, तो उन्हें रूपये/सिक्के का उदाहरण देकर भी यह खेल खिलाया जा सकता है। जैसे पांच रूपये के सिक्के लेकर यह बताना कि अगर सोनू ने दो रूपये की दो टाफियां खरीदीं, तो उसके पास कितने रूपये बचेंगे। या फिर कि अगर उसने दो रूपये की टॉफी और दो रूपये की खट्टी–मीठी गोलियां खरीदीं, तो उसने कुल

कितने रूपये खर्च किये और उसके पास कितने रूपये बचे। एक बार जब बच्चे रूपयों/सिक्कों के द्वारा इस काम को करने लगेंगे, तो फिर उन्हें लिखकर/चित्र बनाकर कार्य करने में दिक्कत नहीं होगी।

शून्य की अवधारणा एवं स्थान मान

एक से लेकर नौ तक की संख्या के बारे में समझ विकसित होने के बाद ही बच्चों को शून्य के बारे में बताया जाए। इसके लिए बिस्किट, टॉफी या फिर पेड़ की छोटी सी टहनी या किसी भी वस्तु का प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए पांच टाफियों से इस खेल को शुरू करते हैं। मान लेते हैं कि राजीव के पास पांच टाफियां हैं। उसने एक टॉफी खा ली, तो उसके पास कितनी टाफियां बचीं? फिर उसने एक टॉफी अपने भाई और एक टॉफी अपनी बहन को दे दी, तो उसके बाद कितनी टाफियां बचीं? उसके बाद अगर उसने एक टॉफी और खा ली और एक टॉफी रास्ते में कहीं गिर गयी, तो उसके पास कितनी टाफियां बचीं? यह पूछने पर बच्चे जवाब देंगे कि कुछ नहीं बची। अब ऐसे में बच्चों से ही सवाल पूछें कि जब कुछ नहीं बचा, तो इसको कैसे लिखेंगे? यह सुनकर बच्चे सोच में पड़ जाएंगे। तब उन्हें बताएं कि 'कुछ नहीं' को कहते हैं 'जीरो'। जैसे मुर्गी का अंडा होता है न, वैसे ही होता है जीरो, जिसका मतलब 'कुछ नहीं' होता है।

इसके बाद बच्चों को बताएं कि भले ही शून्य का मान कुछ नहीं होता है, लेकिन अगर यह किसी भी संख्या के बाद में जुड़ जाता है, तो उसका मान दस गुना बढ़ जाता है। जैसे कि एक के साथ जीरो लगा दो तो दस बन जाता है और दो के साथ जीरो लगा दो तो बीस की संख्या बन जाती है। फिर बच्चों को बताएं कि दस की संख्या कैसे-कैसे बनती है। यानी कि पांच और पांच मिला दो, दो और आठ मिला दो, तीन और सात मिला दो या फिर चार और छः मिला दो, तो दस की संख्या बन जाती है।

दस की अवधारणा को बताने का सबसे व्यवहारिक तरीका सींक/माचिस की तीली एवं उसके बंडल के उपयोग का है। इसके लिए एक आकार की ढ़ेर सारी सींकें इकट्ठी कर लें और उनके दस-दस सींकों के कई बंडल बना लें। कुछ सींकें खुली भी रखें। उसके बाद उनके द्वारा गतिविधि करवाएं।

इसकी शुरूआत जोड़ से कर सकते हैं। मान लेते हैं कि हम सात और पांच का जोड़ बच्चों को समझाना चाहते हैं। इसके लिए पांच और सात तीलियां अलग–अलग लें और बच्चों को उन्हें मिलाकर जोड़ने के लिए कहें। बच्चे उन्हें जोड़ कर बताएंगे– बारह। अब बारह में से दस सींकों को जोड़ कर एक बंडल बना लें और दो खुली सींकों को अलग कर लें।

अब बच्चों को यह बताएं कि ये जो खुली वाली सींक हैं, इन्हें 'इकाई' भी कहते हैं। और चूंकि बंडल में दस तीलियां हैं, इसलिए इसे 'दहाई' भी कहते हैं। दहाई देखने में भले ही एक है, लेकिन चूंकि इसमें दस सींक आपस में बंधी हुई हैं, इसलिए इसका मान दस है। उसके बाद बच्चों को बारह लिख कर दिखाएं और उसमें उसे इकाई और दहाई को बताएं कि इकाई दाईं ओर लिखी जाती है और दहाई बाईं ओर। इसी तरह बड़ी संख्याओं के जोड़ भी सींकों के द्वारा बताएं, जिनमें दहाई की संख्या दो या तीन आए, जिससे बच्चों में दहाई और स्थान मान की समझ अच्छे से विकसित हो सके।

स्थान मान की समझ को विकसित करने के लिए अन्य मजेदार खेल भी खिलाए जा सकते हैं। जैसे एक से लेकर नौ नंबर तक के कार्ड बनाएं और उन्हें नौ बच्चों को देकर उन्हें एक जगह एकत्रित करें। उसके बाद उन्हें बताएं कि अब मैं कोई संख्या बोलूंगा और आप लोगों को अपने कार्ड के साथ उस संख्या को प्रदर्शित करना होगा। जैसे कि मैं कहूंगा बारह, तो दो नंबर वाले कार्ड को दाईं ओर और एक नंबर कार्ड वाले बच्चे को बाईं ओर खड़े होना होगा। हो सकता है कि इस खेल के दौरान बच्चे विपरीत जगहों पर खड़े हो जाएं, ऐसे में उन्हें बताना होगा कि अगर एक के स्थान पर दो की संख्या रख दी जाएगी, तो यह संख्या बारह के स्थान पर इक्कीस बन जाएगी। इक्कीस में दो का मान बीस है, और उसके लिए दस–दस सींकों के दो बंडलों की जरूरत पड़ेगी।

गुणा की अवधारणा

बच्चों में गुणा की अवधारणा विकसित करने के लिए भी कंचों अथवा सींकों की मदद ली जा सकती है। बच्चों के एक समूह को आठ कंचे देकर उनसे कहें कि दो–दो कंचों के चार ढ़ेर बनाएं। जब वे ऐसा कर लें, तो उनसे कहें कि इन सभी को एक साथ गिनें। बच्चे उन्हें गिन कर बताएगें–आठ। इसी तरह अलग–अलग संख्याओं के ढ़ेर के साथ बच्चों से कई बार इसका अभ्यास करवाएं, जब बच्चे इस कार्य को सहजतापूर्वक करने लगें, तो उन्हें बताएं कि इसे ऐसे

भी लिखा जाता है, 2X4 अथवा 3X5। इसी के साथ उन्हें गुणा के चिन्ह के बारे में भी बताएं और अलग–अलग संख्याएं लिखवा कर अभ्यास करवाएं। इसके बाद बच्चों को यह बताएं कि 2X4 का मतलब है दो को चार बार लिख कर जोड़ना।

जैसे : 2X4= 2+2+2+2 =8

इसी के साथ आप बच्चों को यह भी बता सकते हैं कि इसी तरह से पहाड़े (टेबल) भी बनाए जाते हैं :

दो एकम दो, 2X1 = 2
दो दूनी चार, 2X2 = 2+2 = 4
दो तियां छः, 2X3 = 2+2+2 = 6
दो चौको आठ, 2X4 = 2+2+2+2 = 8
दो पंचे दस, 2X5 = 2+2+2+2+2 = 10

इसी प्रकार विभिन्न संख्याओं के उदाहरण के साथ बच्चों में गुणा की अवधारणा अच्छे तरीके से विकसित की जा सकती है। एक बार जब वे दो की संख्या के इस खेल को समझ जाएंगे, तो इसे अन्य संख्याओं के साथ भी अच्छे से करने लगेंगे।

HBCSE

भाग की अवधारणा

भाग की अवधारणा समझाने के लिए कंचों एवं चॉक का सहारा लें। सबसे पहले बच्चों को 10 कंचे दें और फिर उन्हें चॉक के द्वारा दो घेरे बनाने के लिए कहें। घेरे बनाने के बाद उनसे कहें कि वे अपने कंचों के ढ़ेर में से एक–एक कंचा उठाएं और उन्हें इन घेरों में समान रूप से रखें। जब वे यह काम कर लें, तो उनसे पूछें कि पहले हमारे पास कितने कंचे थे? हमने इन कंचों को कितने ढ़ेरों में बांटा? अब हर ढ़ेर में कितने कंचे हैं?

जब बच्चे इसे ठीक तरह से बता दें, तो उन्हें बताएं कि इससे यह पता चलता है कि अगर हम दस कंचों को दो बराबर भागों में बांटें, तो हर भाग के हिस्से में पांच कंचे आते हैं। बांटने का यह काम 'भाग करना' भी कहलाता है। अगर आपसे कोई कहे कि दस को दो भाग

में बांटों, तो इसका मतलब है कि दस में दो का भाग दो।

बच्चों के साथ अलग–अलग संख्याओं के द्वारा इस क्रिया को कई बार करवाएं, जिससे वे भाग देने का मतलब आसानी से समझ जाएं। जब वे इस काम में एकदम निपुण हो जाएं, तब उन्हें बताएं कि इसे कॉपी में किस तरह से लिखते हैं और भाग के लिए कौन से निशान का प्रयोग किया जाता है।

सम/विषम संख्याएं

बच्चों में सम और विषय संख्याओं की समझ पैदा करने के लिए एक बेहद रोचक खेल है– 'ऊना कि पूरा'। इसे दो बच्चों अथवा दो टीमों के साथ खेला जा सकता है। इसमें एक बच्चा अपने हाथ में कुछ कंकर लेकर अपने साथी से पूछता है– ऊना कि पूरा? अगर सामने वाला बच्चा 'पूरा' कहता है, तो वह बच्चा मुट्ठी खोलकर उसमें बंद कंकर जमीन पर रख देता है और उनमें से दो–दो की ढ़ेरियां बनाता है। अगर सारे कंकर दो–दो की ढ़ेरियों में बंट जाते हैं, तो इसका मतलब है कि पूरा, नहीं तो ऊना। पूरा होने पर उन कंकरों को सामने वाला बच्चा जीत जाता है। वह उन कंकरों को ले लेता है और खुद इस खेल को दोहराता है। लेकिन अगर 'ऊना' होता है, तो पहले से चाल चल रहा बच्चा जीत जाता है और वह दोबारा इस चाल को चलता है।

जब बच्चे इस खेल के अभ्यस्त हो जाएं और दो–दो की ढ़ेरियां लगाने में माहिर हो जाएं, तब उन्हें बताएं कि 'पूरा' को 'सम संख्या' और 'ऊना' को 'विषम संख्या' भी कहते हैं। सम का मतलब है जो संख्या दो से कट जाए अर्थात जिसके दो–दो के पूरे ढ़ेर लगाए जा सकें। जबकि विषम संख्या का मतलब है कि जिसके दो–दो के पूरे ढ़ेर न लग पाएं, अर्थात वह दो से पूरी तरह से न कट पाए।

निष्कर्ष

गणित एक अमूर्त विषय है। उसके शिक्षण की सभी समस्याएँ, अभ्यास व मूल्यांकन पद्धतियां यांत्रिक हैं। उनमें दुहराव की भरमार है तथा गणना पर ज्यादा ज़ोर दिया गया है। इसमें स्थानिक चिंतन जैसे गणितीय क्षेत्रों को उतना स्थान नहीं दिया गया है जितना दिया जा सकता था। यही कारण है कि बच्चे इसे देख कर घबरा जाते हैं और भय खाने लगते हैं।

लेकिन यदि प्रत्येक बच्चे के साथ इस विश्वास के आधार पर काम किया जाए कि स्कूली गणित का गूढ़ दर्शन समझाने के बजाय विभिन्न गतिविधियों के द्वारा उसे गणित के रहस्यों से परिचित कराया जाए और उसकी प्रत्येक समस्या अथवा प्रणाली को समाज से जोड़ते हुए पहले भौतिक वस्तुओं, तत्पश्चात चित्रों और उसके बाद अंकों के द्वारा हल किया जाए, तो बच्चे उसके भीतर छिपी प्रणाली से आसानी से परिचित हो जाते हैं और गणित के अभ्यस्त हो जाते हैं।

लेकिन इन गतिविधियों को करते समय अध्यापक को पर्याप्त धैर्य से काम लेना चाहिए और साथ ही उसे यह विश्वास भी होना चाहिए कि प्रत्येक बच्चा गणित सीख सकता है। ऊपर बताई गयी गतिविधियां कुछ उदाहरण भर हैं। अध्यापक इनके अलावा भी गतिविधियां बना सकते हैं तथा अन्य प्रक्रियाओं के लिए भी नई गतिविधियों का सृजन कर सकते हैं। ऐसा करते हुए हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हर समस्या के समाधान के अनेक तरीके हैं, बस जरूरत है उन्हें जानने और समझने की। अगर उन्हें अच्छे से समझ लिया जाए और बच्चों तक सही ढ़ंग से पहुंचा दिया जाए, तो फिर कोई कारण नहीं बनता कि प्रत्येक बच्चा गणित से प्यार न करने लगे।

➢ सम्पादक– साइंटिफिक वर्ल्ड
7ए/55, वृन्दावन योजना,
रायबरेली रोड, लखनऊ 226 029
ई–मेल : zakirlko@gmail.com
फोन – 9935923334
वेबपेज– http://Me.ScientificWorld.in
(www.ScientificWorld.in)

HBCSE

संख्याओं की अद्भुत दुनिया

■ रिन्टू नाथ

भूमिका

विश्व इतिहास साक्षी है कि गणितज्ञों से लेकर धर्मशास्त्रियों तक सभी चिन्तक यथार्थ की प्रकृति और संख्याओं के बीच के रहस्यमय व अनोखे संबंधों पर विचार करते रहे हैं। शून्य (0), पाई (π), फाई (Φ), e तथा i ($\sqrt{-1}$) जैसी संख्याएं अपने अनन्य गुणों और सर्वाधिक विस्मयकारी भिन्न स्थलों पर प्रकटीकरण के कारण लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती रही हैं। ऑयलर आइडेंटिटी $e^{i\pi}+1 = 0$ एक अद्वितीय संबंध है, जो Φ के अतिरिक्त, इनमें से अन्य सभी संख्याओं को आपस में जोड़ता है।

शून्य एक अद्भुत संख्या है और मानवीय चिन्तन के महान विरोधाभासों में से यह एक है। यह दोनों ही अर्थ व्यक्त करता है : कुछ न होना और सब कुछ होना भी। भारत का शून्य से गहरा संबंध है। शून्य की संकल्पना पहली बार 628 AD में भारतीय गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त द्वारा प्रस्तुत की गई थी। शून्य की संकल्पना का विकास गणित के इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण खोज थी।

किसी भी अन्य संख्या ने लोगों को इतना आकर्षित नहीं किया, जितना कि वृत्त की परिधि और व्यास के अनुपात ने, जिसे पाई (प्रतीक π) कहा जाता है। π का मान लगभग 3.14 के बराबर होता है।

π का सन्निकट मान 3.14 है तथा प्राचीन मिस्रवासियों और आर्कीमिडीज से लेकर लियोनार्डो दा' विन्चि और अब आधुनिक गणितज्ञ अद्यतन कम्प्यूटरों का उपयोग करके π का मान लगभग आठ अरब अंकों तक ज्ञात करने का प्रयास कर रहे हैं। π के मान का दशमलव निरूपण कभी समाप्त नहीं होता है और न ही इसमें अंकों के दोहराने का क्रम आता है। गणित के इतिहास में π के मान को अधिक यथार्थता से जानने और इसकी प्रकृति को समझने के अनेक प्रयास हुए हैं। गणित, विज्ञान और अभियांत्रिकी के अनेक सूत्रों में π का उपयोग होता है, जिस कारण यह गणित के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अचरांकों में से एक है।

अन्य रहस्यमय संबंध Φ (फाई = 1.6180339887...) है और यह विचित्र गणितीय संबंध आम तौर पर 'स्वर्णिम अनुपात' के नाम से जाना जाता है। इसकी खोज लगभग अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व यूक्लिड द्वारा पेन्टाग्राम बनाने में इसकी आवश्यक भूमिका के कारण की गई थी। तब से अब तक इसने मोलस्क कवचों से लेकर सूर्यमुखी के पटल दलों, गुलाब की पंखुड़ियों और मंदाकिनियों की आकृतियों जैसे विविध स्थलों पर अपनी आश्चर्यजनक उपस्थिति दर्ज की है। अपनी शोभा और सरलता के कारण स्वर्णिम अनुपात गणितीय जगत का सर्वाधिक सुन्दर अनुपात है।

गणितज्ञों के बीच e को π के साथ ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण अचरांकों मे से एक माना जाता है। π की तरह ही e का दशमलव निरूपण भी न समाप्त होने वाला और न दोहराव वाला है। इसको ऑयलर की संख्या भी कहा जाता है। e का लघुगणक और अवकलन सहित गणित के अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों में प्रयोग दिखाई पड़ता है, ऐसा लगता है कि लघुगणक और अवकलन से जुड़े ज्ञान के बहुत पहले से गणितज्ञों को इस संख्या e का ज्ञान था। पहली बार यह संख्या चक्रवृद्धि ब्याज के सूत्रों में प्रकट हुई।

समीकरण x^2+1 का कोई वास्तविक हल नहीं है, क्योंकि किसी वास्तविक संख्या का वर्ग या तो शून्य होता है या धनात्मक। मिश्र संख्याओं ने इस समस्या का एक हल प्रस्तुत किया। संकल्पना यह है कि वास्तविक संख्याओं में एक नई अ–वास्तविक संख्या i जिसका वर्ग –1 है, जोड़ कर संख्या प्रणाली को बढ़ाया जाए जिससे कि उल्लिखित समीकरण के हल $x = i$ एवं $x = -i$ प्राप्त हो। इससे मिश्र संख्याओं की संकल्पना अस्तित्व में आई। मिश्र संख्याएं भौतिकी और खगोलिकी की अनेक परिघटनाओं को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। सैद्धान्तिक विज्ञान के अतिरिक्त मिश्र संख्याएं परिपथ व्यवहार, विद्युत चुम्बकत्व तथा परिपथ पुनर्निवेशन नियंत्रण प्रणाली को समझने के लिए विद्युत अभियान्त्रिकी का एक अभिन्न अंग है।

शून्य का संक्षिप्त इतिहास

शुरू में संख्या के रूप में शून्य उपलब्ध नहीं था। पहले पहल खाली आकाश की अवधारणा थी जो संकल्पनात्मक रूप से शून्य जैसी समझी जाती थी। लगभग 700 ई. पू. में बेबिलोनिया निवासी अपने स्थिति निरूपक संकेतों में रिक्त स्थान को तीन हुकों के द्वारा दर्शाते थे।

लगभग उसी दौरान यूनानी गणितज्ञों ने गणित में कुछ अद्वितीय योगदान किए। यूनानी गणित का रोचक पक्ष यह है कि यह अधिकांशतः ज्यामिति पर आधारित है। यूक्लिड ने संख्या सिद्धांत पर एक पुस्तक '*एलिमेंट्स*' नाम से लिखी परंतु वह पूरी तरह ज्यामिति पर आधारित थी।

650 ई. में भारतीय गणित में शून्य का उपयोग एक अंक के रूप में होने लगा था। भारतीय एक स्थानिक–मान संख्या प्रणाली का उपयोग करते थे और शून्य का उपयोग एक रिक्त स्थान निर्दिष्ट करने के लिए होता था। वास्तव में स्थानिक संख्या प्रणाली में रिक्त स्थान निरूपक चिह्न के उपयोग के प्रमाण भारत में लगभग 200 ई. से पाए जाते हैं। लगभग 500 ई. में आर्यभट ने एक ऐसी संख्या प्रणाली का विकास किया जिसमें रिक्त स्थान में शून्य का उपयोग तो नहीं किया गया था परंतु रिक्त स्थान को निर्दिष्ट किया जाता था। इस बात के प्रमाण हैं कि प्राचीन भारतीय गणित की पांडुलिपियों में स्थानिक संकेतों में रिक्त स्थान दर्शाने के लिए बिंदु का उपयोग किया जाता था।
उदाहरणार्थ, 100 लिखने के लिए 1 के आगे दो बिंदु लगे होंगे।

ईस्वी 628 में ब्रह्मगुप्त ने 'ब्रह्मस्फुट सिद्धांत' की रचना की और शून्य तथा ऋण संख्याओं से युक्त अंकगणित के सिद्धांत बताने की चेष्टा की। उन्होंने समझाया कि जब किसी संख्या को उसी संख्या में से घटाया जाता है तो आपको शून्य प्राप्त होता है। उन्होंने शून्य को शामिल करते हुए समाकलन के निम्नलिखित नियम बनाए :–

- शून्य और ऋण संख्या का योग ऋणात्मक होता है।
- शून्य और धन संख्या का योग धनात्मक होता है।
- शून्य और शून्य का योग शून्य होता है।

इसी प्रकार उन्होंने व्यवकलन के भी सही नियम बताए।

ब्रह्मगुप्त ने कहा कि जब किसी संख्या को शून्य से गुणा किया जाता है तो गुणनफल शून्य होता है। परंतु उनके शून्य के शून्य से गुणा संबंधी नियम सही नहीं थे। लेकिन, यह याद रखें कि यह संकल्पना के विकास की शुरूआत ही थी और शुरू–शुरू में ग़लती होना स्वाभाविक है। अतः ऋणात्मक संख्याओं, शून्य और धनात्मक संख्याओं के प्रकाश में एक

संख्या प्रणाली की कल्पना करने का यह एक शानदार प्रयास था।

इसके बाद 830 ई. में, महावीर ने गणित सार संग्रह (गणितीय विवरणों का संकलन) लिखा जो ब्रह्मगुप्त की पुस्तक को अधुनातन रूप में प्रस्तुत करने का ही प्रयास था। उन्होंने शून्य से गुणा संबंधी नियम सही करके बताए परंतु शून्य से भाग संबंधी नियमों में उनसे भी त्रुटि हो गई।

ब्रह्मगुप्त के 500 वर्ष बाद भास्कर ने यह कह कर कि किसी संख्या का शून्य से भागफल अनंत होता है, शून्य से विभाजन की समस्या को हल करने का प्रयास किया। संकल्पना की दृष्टि से तो बात अभी भी पूरी तरह सही नहीं थी, तथापि भास्कर ने शून्य के अन्य गुण सही–सही बताए जैसे कि शून्य का वर्ग शून्य होता है और शून्य का वर्गमूल भी शून्य होता है।

संक्षेप में यह कह सकते हैं कि भारतीय गणितज्ञों ने शून्य की संकल्पना का विकास किया और इसके साथ जुड़ी विभिन्न गणितीय संक्रियाओं के नियम बताए।

HBCSE

ऑपरेशन शून्य

उन वास्तविक संख्याओं में से शून्य का सबसे महत्वपूर्ण व अद्वितीय स्थान है। यह धनात्मक व ऋणात्मक संख्याओं के बीच सर्वनिष्ठ है। यदि आप शून्य की दाहिनी तरफ जाएं तो धनात्मक संख्याएं प्राप्त होती हैं और यदि शून्य की बाईं तरफ जाएं तो सभी ऋणात्मक संख्याएं प्राप्त होती हैं। इस प्रकार तत्वतः शून्य न तो धनात्मक संख्या है और न ही ऋणात्मक संख्या, यह धनात्मक व ऋणात्मक संख्याओं के लिए सीमा रेखा है, या यह उस अर्थ में उदासीन है। वास्तव में, वास्तविक संख्या की दुनिया में शून्य एकमात्र ऐसी संख्या है जो न तो धनात्मक है और न ही ऋणात्मक।

साधारण रूप में एक सम संख्या उसे कहते हैं जो 2 से विभाजित हो और विषम संख्या उसे जो 2 से विभाजित न हो। चूंकि सैद्धांतिक रूप से शून्य 2 से विभाज्य है इसलिए शून्य को सम संख्या माना जाता है। लेकिन बहुत से लोग शून्य को सम संख्या नहीं मानते, क्योंकि शून्य धनात्मक या ऋणात्मक किसी भी संख्या से विभाजित हो जाता है और 2 से

विभाजित होना शून्य की कोई अद्वितीय विशेषता नहीं है जैसी कि अन्य सम संख्याओं की है।

एक अभाज्य संख्या वह धनात्मक पूर्णांक होती है जो एक (1) और स्वयं अपने के अलावा कोई धनात्मक पूर्णांक विभाजक नहीं रखती। अतः इस परिभाषा के अनुसार अभाज्य संख्या एक धनात्मक पूर्णांक होती है और इसे वास्तविक रेखा के पैमाने पर एक (1) के दाहिनी तरफ रखना चाहिए। स्पष्ट रूप से शून्य इस परिभाषा के अनुकूल नहीं है। अतः शून्य एक अभाज्य संख्या नहीं होगा।

शून्य के द्वारा भाग देना भी एक जटिल मसला है। ब्रह्मगुप्त स्वयं इस संक्रिया का ठीक से वर्णन नहीं कर सके और बाद में भास्कर ने भी इसका गलत उल्लेख किया।

पहले उदाहरण के रूप में हम ऐसी कोई धनात्मक संख्या निर्धारित करते हैं जिसमें शून्य के भाग अनन्त के रूप में या अत्यंत उच्च मान में तर्कसंगत प्रतीत होते हो। उदाहरण के लिए यदि आप एक वास्तविक धनात्मक संख्या को एक छोटी संख्या से लगातार भाग दें तो प्राप्त परिणाम लगातार बढ़ता जाएगा।

जैसे

$10/10 = 1$

$10/1 = 10$

$10/0.01 = 1000$

$10/0.001 = 10,000$

:

:

$10/10^{-99} = 10^{100}$

जैसे-जैसे हम एक छोटी संख्या द्वारा भाग देंगे और शून्य की ओर उन्मुख होंगे, परिणाम बढ़ता जाएगा। लेकिन ध्यान रखें, छोटी से छोटी संख्या भी शून्य के बराबर नहीं होती। इसीलिए हम वास्तव में शून्य के द्वारा कोई भाग नहीं कर रहे हैं बल्कि एक प्रवृत्ति की भविष्यवाणी कर रहे हैं, जो संभव हो सकता है यदि भाजक एक ऐसे मान तक पहुंच जाता है जो

शून्य के करीब हो या अत्यंत छोटी संख्या हो लेकिन हम जो भी छोटी से छोटी संख्या सोच सकते हैं, उससे भी छोटी एक अन्य संख्या विद्यमान रहेगी। इसके अतिरिक्त हमें याद रखना चाहिए कि अनन्तता एक धारणा है, एक निरपेक्ष वस्तु, न कि एक संख्या जैसा कि हमारी संख्या पद्धति में परिभाषित किया गया है और जब हम अनन्त के साथ संक्रिया पर विचार करते हैं तो गणित के सभी नियम अमान्य हो जाते हैं। जैसे यदि हम अनन्त से अनन्त का जोड़ करें तो अनन्त के मान का दोगुना नहीं प्राप्त होगा, इसका परिणाम अनंत ही रहेगा।

तब तो यह कहना गलत है कि किसी संख्या को शून्य से भाग देने पर अनंत प्राप्त होगा।बिल्कुल, वास्तव में सबसे पहले तो किसी संख्या को शून्य से भाग देने का प्रयास ही गलत है।

मै एक और स्पष्टीकरण देता हूं। भाग की क्रिया अनिवार्य रूप से गुणा के नियम की उलटी होती है। इसका मतलब है कि यदि 10 को 2 से भाग दें तो परिणाम 5 प्राप्त होगा। और यदि 5 को 2 से गुणा करें तो वास्तविक मान पुनः प्राप्त हो जाएगा। बीजगणित के द्वारा हम इसे इस प्रकार समझ सकते हैं :

यदि $(a/b) = c$ तो $a = (b \times c)$

अब हम देखेंगे कि यदि हम अनन्त सिद्धांत का पालन करें तो क्या होगा।

मान लिया $a = 10$ और $b = 0$

अब यदि हम a को b से भाग दें (a/b) और मान ले कि c (परिणाम) = अनन्त है तो गुणा के नियम के अनुसार हमें प्राप्त होगा :

$$10 = (0 \times \text{अनंत})$$

लेकिन शून्य से गुणा करने का नियम कहता है कि किसी भी संख्या को शून्य से गुणा करने पर परिणाम शून्य ही प्राप्त होता है। इसका मतलब है कि दाहिनी तरफ गुणा का नियम लागू करने पर हमें अंत में 10=0 प्राप्त होता है। इस प्रकार आप दाहिनी तरफ की संख्याओं के

आपस में गुणन से पुनः परिणाम 10 नहीं प्राप्त कर सकते, इसके बजाय यदि आप किसी संख्या को शून्य से भाग देने और उसका मान निकालने का प्रयास करेंगे तो आपको कुछ निरर्थक परिणाम प्राप्त होंगे।

हां! जब हम किसी भी संख्या को शून्य से भाग देने का प्रयास करते हैं तो भाग की विशिष्टता खत्म हो जाती है क्योंकि हम इसमें गुणन की प्रक्रिया को उलटकर मूल संख्या नहीं प्राप्त कर सकते और शून्य इस गुण वाली अकेली संख्या है। अतः वास्तविक संख्याओं के लिए शून्य से भाग का परिणाम अनिश्चित होता है। अतः कभी भी शून्य से भाग देने का प्रयास नहीं करना चाहिए। वास्तव में इस संक्रिया को करने का प्रयास निरर्थक ही होता है।

यदि शून्य में शून्य का भाग दिया जाये तो क्या होगा?

गणितीय रूप से कहने पर शून्य में शून्य का भाग देने जैसे व्यंजक को अनिर्धाय (जिसका निर्धारण न किया जा सके) कहते हैं। इसे साधारण रूप से समझें तो यह व्यंजक का एक प्रकार है जिसे ठीक-ठीक निर्धारित नहीं किया जा सकता। यदि हम व्यंजक को ठीक से देखें, तो इसके लिए किसी भी मान का निर्धारण नहीं कर सकते। इसका मतलब है कि 0/0 का मान 10, 100 या कोई भी हो सकता है और रोचक बात यह है कि यहां गुणन का नियम भी सत्य होगा, चूंकि 10 या 100 में शून्य से गुणा करने पर परिणाम शून्य ही प्राप्त होता है। अतः मूल समस्या यह है कि हम इस व्यंजक के लिए यथार्थ या परिशुद्ध मान का निर्धारण नहीं कर सकते। इस कारण ही गणितीय रूप से (0/0) को अनिर्धाय कहा जाता है।

शून्य पर घात शून्य का मान क्या होगा?

गणितीय रूप से यह स्थिति शून्य को शून्य से भाग देने जैसी ही है। सीमा सिद्धांत का प्रयोग करने पर यह पाया जाता है कि x & $a \to 0$, तो फलन a^x का मान 0 और 1 के बीच होता है। अतः शून्य के घात शून्य को भी अनिर्धाय कहा जा सकता है। लेकिन आधुनिक समय के गणितज्ञों ने शून्य पर घात शून्य की उचित व्याख्या से संबंधित कई नये सिद्धांत और अंतर्दृष्टि प्रदान की हैं। कुछ गणितज्ञों का कहना है कि $0^0=1$ को स्वीकार करने से कुछ सूत्रों को सरलता से निरूपित किया जा सकता है जबकि अन्य कुछ वैज्ञानिक कहते हैं कि $0^0=0$ जीवन को और आसान बनाता है। अतः यह व्यंजक उतना सहज नहीं है, जितना दिखता है।

फैक्टोरियल शून्य का मान एक होता है। ऐसा इसलिए है कि शून्य तत्वों के साथ किया जा सकने वाला क्रमचय केवल एक होता है। इसको गणितीय रूप से भी सिद्ध किया जा सकता है। यहां यह याद रखें कि फैक्टोरियल एक का मान हमेशा एक होता है।

रहस्यमयी पाई (π)

एक वृत्त की परिधि से इसके व्यास के अनुपात, जिसको पाई के नाम से जाना जाता है (चिह्न π, ग्रीक वर्णमाला का 16 वां अक्षर)।

गणित के इतिहास में शुरू से अंत तक π के अचूक एवं एकदम सही मान निर्धारित करने और इसकी प्रकृति को समझने के काफी प्रयास किए गए हैं। गणित, विज्ञान एवं अभियांत्रिकी के कई सूत्रों में π का प्रयोग होता है, इसलिए इसकी गणना सबसे अधिक महत्वपूर्ण गणितीय स्थिरांकों में की जाती है।

π एक अपरिमेय संख्या है जिसका अर्थ यह है कि इसके मान को एक ऐसी भिन्न, जिसमें अंश और हर (denominator) दोनों पूर्णांक हों, में निश्चित रुप से व्यक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि 22/7 केवल दशमलव के दो स्थानों तक ही सही होता है, इसलिए यह π का केवल एक लगभग मान है।

यह एक अबीजीय संख्या भी है, जिसमें पूर्णांकों पर बीजगणितीय गणनाओं (घात, वर्गमूल, योगफल इत्यादि) का निश्चित अनुक्रम इसका मान नहीं निकाल सकता है। इस तथ्य को सिद्ध करना 19 वीं शताब्दी की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि लगभग 200 ई. पू. ग्रीक गणितज्ञ आर्किमिडीज़ द्वारा π की प्रथम सैद्धांतिक गणना की गई थी। उनका मानना था कि स्थिरांक का मान 223/71 और 22/7 के मध्य होता है।

भारतीय गणितज्ञ आर्यभट्ट (476–550) ने π का निकटतम मान खोजने के लिए 384 भुजाओं वाले समभुज का प्रयोग किया और इसका मान 62832/2000 रखा जो

3.1416 के बराबर था और दशमलव के चार स्थानों तक सही था।

सन् 1400 ई. में प्रतिभाशाली भारतीय गणितज्ञ माधव ने π की गणना करने के लिए एक श्रेणी (सीरीज़) का प्रयोग किया। उन्होंने निम्नलिखित श्रेणी का प्रयोग किया :

$$\pi/4 = 1 - 1/3 + 1/5 - .....$$

उपर्युक्त श्रेणी की सहायता से उन्होंने π के निकटतम मान की गणना 3.14159265359 की, जो दशमलव के 11 स्थानों तक सही था। ऐतिहासिक रूप से यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी क्योंकि माधव के यूरोपीय साथी उस समय इस खोज के कारण पिछड़ गए थे।

17 वीं शताब्दी के दौरान न्यूटन (1642–1727) तथा गॉटफ्राईड लाइबनिट्स (1646–1716) द्वारा कलन की खोज के बाद आर्किमिडीज़ की π का मान ज्ञात करने की विधि की जगह अनंत श्रेणी विस्तार का प्रयोग किया जाने लगा। इसी बीच काफी हद तक बीजगणित एवं ज्यामिति की अवधारणा भी विकसित हो गई थी। शून्य और दशमलव अंकन प्रणाली की अवधारणा ने भी गणित को काफी उन्नत बना दिया था। इसलिए π का मान ज्ञात करने की समस्या को गणित की इन सभी शाखाओं की सहायता से हल करना आसान हो गया। इस प्रकार ज्यामिति से उत्पन्न यह π अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति, कलन और आधुनिक गणित की सभी शाखाओं में शामिल हो गई।

उदाहरण के लिए, बीजगणित, ज्यामिति एवं कलन की सहायता से यह सिद्ध किया जा सकता है कि :

$$\tan^{-1}x = x-(x^3/3)+(x^5/5)-(x^7/7)+(x^9/9)....$$

यह सुप्रसिद्ध ग्रेगोरी–लाइबनिट्स सूत्र है। इस सूत्र में एक मजेदार बात यह है कि 1 द्वारा X को प्रतिस्थापित करने पर एक श्रृंखला का निर्माण होता है जिसे भारतीय गणितज्ञ माधव द्वारा बहुत पहले प्रयोग किया गया था।

$$\tan^{-1}1 = \pi/4 = 1-(1/3)+(1/5)-(1/7)-(1/9).....$$

बीसवीं सदी के महान गणितज्ञों में से एक श्रीनिवास रामानुजन (1887–1920) ने सन् 1910 में कुछ अभिनव अनंत श्रृंखला सूत्रों का प्रणयन किया मगर दुर्भाग्यवश इसके महत्व को सन् 1970 के उत्तर दशक में उनकी मृत्यु के बहुत समय बाद समझा गया। उनके अनेक सुस्पष्ट सूत्रों में से एक सूत्र इस प्रकार था :

$$1/\pi = 2\sqrt{2}/9801 \sum_{k=0}^{\infty} \{(4k)!/(k!)^4 \times (26390k+1103)/396^{4k}\}$$

रामानुजन की दी गई श्रृंखला में प्रत्येक पद के समावेश से π के लगभग आठ अतिरिक्त स्थान तक मान ज्ञात हो सकते हैं। सन् 1985 के दौरान, इस सूत्र के प्रयोग द्वारा अमेरिकी गणितज्ञ विलियम गोस्पर ने π के लगभग 1.7 करोड़ अंकों तक की गणना सटीक रूप में कर दी थी। अतः इससे भी रामानुजन के सूत्र की वैधता साबित हुई। सन् 1994 में कोलंबिया विश्वविद्यालय के डेविड और ग्रेगोरी चुदनोवस्की बंधुओं ने रामानुजन के सूत्र से मेल खाने वाली कलन विधि का प्रयोग करके एक सुपर कंप्यूटर में π के लगभग चार अरब अंकों के मान की गणना की।

गणितज्ञों के लिए π हमेशा से ही एक रहस्य था और इसलिए उन्होंने इसकी तह तक जाने की कोशिश की है। हाइड्रोजन के परमाणु के आकार से भी कम त्रुटि की सीमा के साथ आकाशगंगा की त्रिज्या की गणना करने हेतु गणितज्ञों के लिए दशमलव के 37 स्थानों तक π का मान पर्याप्त है। इसलिए यह वाकई मजेदार लगता है कि विश्व भर से गणितज्ञ π का मान ट्रिलियन यानी 10 खरब अंकों तक ज्ञात करने के लिए मंत्र–मुग्ध होकर जुट गए हैं जबकि सबसे अधिक सही माप/गणना के लिए यहां तक कि प्रथम 100 अंकों की जरूरत भी नहीं हैं।

π की गणना की चुनौती ने विज्ञान एवं अभियांत्रिकी के कई उन्नत क्षेत्रों में अनुसंधान को बढ़ावा दिया है। इस चुनौती ने गणित के क्षेत्र में कई नवीन खोजों एवं कलनविधि को जन्म दिया। π में किसी सांख्यिकीय असामान्यताओं अथवा अनियमितताओं को ढूंढने में शैक्षणिक रूचियां भी थीं जो यह सुझाव दे सकती थीं कि π एक सामान्य संख्या नहीं है।

एक अन्य कारण यह है कि π के अंकों की गणना हमारे आधुनिक कंप्यूटर हार्डवेयर

HBCSE

और सॉफ्टवेयर की शक्ति और एकरुपता को परखने का एक अद्भुत तरीका है। यदि दो कंप्यूटर π की अरबवीं (बिलियन) संख्या की सटीक गणना करते हैं तो हम यह मान सकते हैं कि ये दो कंप्यूटर लाखों अन्य गणनाओं को त्रुटिहीन तरीके से करने के लिए विश्वसनीय हैं। π अंकों के परिणामों को प्राप्त करने के बाद कोई भी व्यक्ति हार्डवेयर की समस्याओं को ढूंढ कर निकाल सकता है। इसी प्रकार की एक समस्या का पता सन् 1986 में क्रे–2 नामक सुपर कंप्यूटर में लगा था।

गोल्डन रेशियो (Φ) – दुनिया की सबसे विचित्र संख्या

गोल्डन रेशियो को एक ऐसे रेखा खंड के रूप में परिभाषित किया जाता है जो दो असमान हिस्सों में बंटा होता है। ये हिस्से इस तरह बंटे होते हैं कि लंबे हिस्से से छोटे हिस्से के सापेक्ष अनुपात, लंबे हिस्से से संपूर्ण लंबाई के अनुपात के समान होता है। माना जाता है कि यह अनुपात प्रकृति में सर्वत्र पाया जाता है और कला, वास्तुशिल्प, संगीत, दर्शन, विज्ञान तथा गणित का यह अभिन्न अंग है।

गोल्डन रेशियो के सटीक मान का कोई अन्त नहीं होता और 1.6180339887 संख्या कभी दुहराई नहीं जाती तथा इस तरह की अन्तहीन संख्याएं प्राचीन काल से मनुष्यों के लिए पहेली बनी रहीं है।

स्वर्णिम आयत गोल्डन रेशियो का एक परिवर्त है जिसके पार्श्व की लंबाईयां गोल्डन रेशियो में निहित होती हैं या लगभग 1 : 9.618 होती हैं। जब स्वर्णिम आयत से वर्ग अनुच्छेद को हटा देते हैं तो यह उसका एक विशिष्ट गुण बन जाता है और शेष रचना एक अलग प्रकार का स्वर्णिम आयत बन जाती है जो आनुपातिक दृष्टिकोण से पहले के समान होती है। वर्ग का निष्कासन् अनन्त बार तक दोहराया जा सकता है जिसमें वर्ग के सापेक्ष कोने, स्वर्णिम सर्पिल पर बिंदुओं का एक अनन्त अनुक्रम निर्मित करते हैं।

असंख्य चित्रकारों और वास्तुविदों ने अपने कार्यों को लगभग स्वर्णिम अनुपात के इर्द–गिर्द साधा है – विशेष तौर पर स्वर्णिम आयत के रूप में जिसमें लंबी भुजा से छोटी भुजा का अनुपात गोल्डन रेशियो होता है और जो सुंदरता के साथ आनंद की अनुभूति देता है। गोल्डन रेशियो के अद्वितीय और रोचक गुणों के कारण गणितज्ञों ने गोल्डन रेशियो का

अध्ययन किया है।

संख्या 1 को सरलता से जोड़कर हम इसका गोल्डन रेशियो बना लेते हैं (जैसे, $\Phi^2 = \Phi + 1$) और वह गोल्डन रेशियो का एक चौंकाने वाला गुण होता है।

गोल्डन रेशियो और फिबोनाशी श्रृंखला

फिबोनाशी अनुक्रम संख्याओं की एक पुनरावर्ती श्रृंखला होती है जहां निम्नलिखित संख्या अपने से पूर्ववर्ती दो संख्याओं के योगफल के बराबर होती है। यह अनुक्रम इस प्रकार है 0, 1, 1, 2, 3, 5, 8, 13, 21, 34, 55, 89, ...। फिबोनाशी श्रृंखला का नाम इटली के गणितज्ञ लियोनार्डो (1170–1250) के नाम (उन्हें अधिकतर फिबोनाशी के नाम से भी जाना जाता है) पर रखा गया है।

गोल्डन रेशियो और फिबोनाशी श्रृंखला के बीच एक विशेष संबंध होता है। फिबोनाशी श्रृंखला में किन्हीं दो पूर्ववर्ती संख्याओं का अनुपात गोल्डन रेशियो (1.618025.....) के करीब होता है।

A	**B**	**B/A**
2	3	1.5
3	5	1.666666666...
5	8	1.6
8	13	1.625
13	21	1.615384615...
---	---	---
144	233	1.618055556...
233	377	1.618025751...
---	---	---
---	---	---

HBCSE

- $\Phi^2 = 1\Phi+1$
- $\Phi^3 = 2\Phi+1$
- $\Phi^4 = 3\Phi+2$
- $\Phi^5 = 5\Phi+3$
- $\Phi^6 = 8\Phi+5$
- $\Phi^7 = 13\Phi+8$
- . . .
- $\Phi^n = F(n)\Phi + F(n-1)$

F(n) नवीं फिबोनाशी संख्या है। प्रत्येक समान चिन्ह (लाल और नीले रंग में जो संख्याएं हैं, वे पृथक रूप से फिबोनाशी श्रृंखला बनाती हैं) दाहिने तरफ वाली फिबोनाशी संख्या पर ध्यान दें।

गोल्डन रेशियो के ही समान फिबोनाशी संख्याओं और प्राकृतिक स्वरूपों (देवदार के शंकु में सर्पिलों की संख्या एवं सूरजमुखी में बीजों का विन्यास) के बीच एक अनोखा रिश्ता होता है। ज्यामिति, संख्या सिद्धांत, संभाव्यता और बीजगणित में फिबोनाशी श्रृंखला के अनेक उन्मुक्त अनुप्रयोग पाए जाते हैं।

ये सभी प्रकृति के गहरे गणितीय आधार के आश्चर्यजनक प्रमाण हैं। गोल्डन रेशियो और फिबोनाशी श्रृंखला गणित के सौंदर्य के भी प्रमाण हैं। इसके अस्तित्व का अचरजपूर्ण संस्पर्श हर जगह विद्यमान है – गणित जगत के अंदर और उसके बाहर भी।

रहस्यमय 'e'

e की संकल्पना न सिर्फ बहुत देर से करीब वर्ष 1700 में सामने आई थी, बल्कि इसका इतिहास भी कैलकुलस से बहुत अधिक संबंधित है। कैलकुलस ऐसा विषय है जिसे परंपरागत रूप से उच्च गणित का दर्जा दिया गया। लेकिन, गणितज्ञों के लिए π के समान ही e भी महत्वपूर्ण है।

लगता है कि लघुगणक और कैलकुलस की खोज के बहुत पहले से गणितज्ञ e को जानते थे। चक्रवृद्धि ब्याज की गणना करने वाले सूत्र में यह सर्वप्रथम सामने आया।

स्कॉटलैंड के धर्मशास्त्रज्ञ एवं गणितज्ञ जॉन नेपीयर ने गुणन को हल करने का प्रयत्न करते वक्त एक मॉडल का आविष्कार किया, जिसने गुणन को योग में बदल दिया और इस प्रकार लघुगणक का विचार सामने आ गया। उन्होंने लघुगणक की पहली सारणी सन् 1614 में तैयार की। यह मॉडल उस मॉडल के लगभग समान था, जिसे हम आज लॉगरिथ्म यानी लघुगणक के नाम से जानते है :

$$Y = \log_b X \quad \text{if} \quad b^Y = X$$

नेपीयर के कार्य का अनुवाद सन् 1618 में हुआ, जिसमें एक परिशिष्ट में इसी प्रकार का एक गणितीय पद $\log_e = 2.302$ दिया गया था। ऐसा लगता है कि गणित में संख्या e की भूमिका की सर्वप्रथम स्पष्ट पहचान यहीं से हुई होगी।

हां, परंतु यह शख्स लेओन्हार्ड यूलर था जिसने इस स्थिरांक को 'e' का संकेताक्षर दिया और इसके कई महत्वपूर्ण गुणधर्मों की खोज की। e के बहुत से परिणामों और अनुप्रयोगों से इसका संबंध प्रदर्शित करते हुए यूलर की खोजों ने इस पर किए गए पूर्व कार्यों पर नए सिरे से प्रकाश डाला।

$y = e^x$ फंक्शन ही चरघातकीय फंक्शन कहलाता है। इस फंक्शन में इसकी घात (exponent) में 1 की वृद्धि करने पर फंक्शन के मान e के गुणनखंड के अनुरूप वृद्धि होती है। e^x का अवकलज e^x होना ही इस फंक्शन की सुंदरता प्रदर्शित करती है। इसीलिए इस फंक्शन का प्रयोग संबंध दर्शाने के लिए किया जाता है, जिसमें स्वतंत्र चर में निरंतर परिवर्तन होने पर निर्भर चर में उतने अनुपात में (यानि प्रतिशत वृद्धि अथवा कमी) ही परिवर्तन होता है।

➢ वैज्ञानिक–एफ
विज्ञान प्रसार
ए–50, इंस्टीट्यूशनल एरिया, सेक्टर–62,
नोएडा – 201 309 (उ. प्र.)
ई–मेल : rnath@vigyanprasar.gov.in

थायराइड ग्रंथि और उसके स्रावित हार्मोन

■ सचिन नरवड़िया

शरीर को संचालित करने के लिए मुख्य रूप से दो तंत्र संयुक्त रूप में कार्य करते है जिन्हें तंत्रिका तंत्र एवं हार्मोन प्रणाली के नाम से जाना जाता है। यह दोनों तंत्र आपस में मिलकर शरीर की चयापचय क्रियाओं में संतुलन स्थापित करते हैं। इनमें से किसी एक के भी ग़लत काम करने की दशा में विभिन्न रोगों के होने की संभावना बढ़ जाती हैं। तंत्रिका तंत्र का कार्य तंत्रिका कोशिकाओं के माध्यम से उतकों को नियंत्रित करना है।

तंत्रिका तंत्र की प्रतिक्रिया तेज और कम समय के लिए होती है। वहीं हार्मोन प्रणाली जो कि हार्मोन के स्राव से अपनी क्रिया को संचालित करती है, धीमी होती है। हार्मोन के स्राव और प्रतिक्रिया के अनुसार कोशिकाओं को अलग–अलग श्रेणी में विभाजित किया जा सकता है।

- कोशिका से हार्मोन निकलकर यदि उसी कोशिका पर प्रतिक्रिया दर्शाता हो तो उसे ऑटोक्राईन कहते हैं।

- यदि एक कोशिका से निकल कर हार्मोन रक्त में मिलकर दूसरी कोशिका तक जाता है, और उस पर प्रतिक्रिया दर्शाता है तो उसे ऐंडोक्राईन या अंतःस्रावी कहते हैं।

- यदि एक कोशिका से निकल कर हार्मोन दूसरी कोशिका पर प्रतिक्रिया दर्शाता हैं, तो उसे पराक्राईन कहते हैं।

हार्मोन का संचालन ऋणात्मक प्रतिपुष्टि तंत्र (Negative Feedback System) पर आधारित होता है। अलग–अलग हार्मोन के प्रभाव भी अलग–अलग होते हैं।

हमारे शरीर में थायराइड ग्रंथि सबसे बड़ी अंतःस्रावी ग्रंथि है। यह गले में हलक के नीचे रहती है। इसके 2 भाग होते हैं, वे श्वासनली के एक ओर या दोनों ओर हो सकते हैं। थायराइड ग्रंथि $\mathbf{T_3}$ तथा $\mathbf{T_4}$ हार्मोन के उत्पादन में शामिल होती है। यह हार्मोन कोशिकाओं

के चयापचय क्रिया को बढ़ाते हैं।

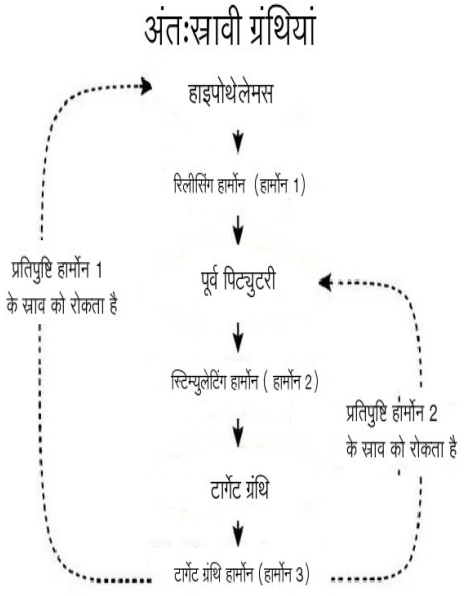

चित्र 1 – ऋणात्मक प्रतिपुष्टि तंत्र
Negative Feedback System

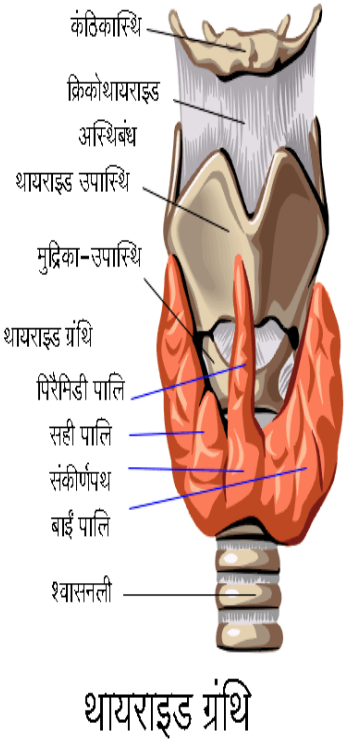

थायराइड ग्रंथि हमारे शरीर के चयापचय को क्रियान्वित करती है। जब हमारे शरीर की क्रियाशीलता में कमी आती है, तो उसे पहचान कर हाइपोथेलेमस एक हार्मोन थायराइड रिलीसिंग हार्मोन (TRH) का स्राव शुरू कर देता है, थायराइड रिलीसिंग हार्मोन जाकर पिट्युटरी नामक ग्रंथि पर अपना कार्य दर्शाता है और उसके परिणाम में पिट्युटरी ग्रंथि थायराइड स्टिम्युलेटिंग हार्मोन (TSH) का निर्माण और स्राव करती है। थायराइड स्टिम्युलेटिंग हार्मोन हमारे शरीर में अन्य क्रियाओं के साथ 3 प्रमुख क्रियाओं को प्रेक्षित करता है और वे हैं :–

1) थायराइड ग्रंथि के अन्दर टायरोसिन और आयोडीन को मिलाकर $\mathbf{T_3}$ तथा $\mathbf{T_4}$ हार्मोन का निर्माण करवाना।
2) आंतो से रक्त में आयोडीन के अवशोषण को बढ़ाना।
3) प्रोटीन को तोड़ने वाले एन्जाइमों को क्रियाशील करना।

जब हम भोजन करते हैं, तो भोजन में मौजूद आयोडीन तत्व भोजन नलिका से रक्त में अवशोषित हो जाता है, उसके पश्चात आयोडीन तत्व को रक्त से थायराइड ग्रंथि ले लेती है और उसे T_3 तथा T_4 बनाने के लिए उपयोग करती है। सामान्य प्रमाण में T_3 तथा T_4 बनाने के लिए लगभग 50 मि. ग्रा. भोजन में लिए गए आयोडीन तत्व की आवश्यकता होती है जिसे आयोडाइड के रुप में रूपांतरण किया जाता है। थायराइड ग्रंथि की कोशिकाओं में बेसल मेम्बरेन होती है जिसमें ये क्षमता होती है कि वो आयोडीन तत्व को सक्रिय रूप से पंप करके कोशिका के अन्दर खीच लें। इस पंप का नाम सोडियम आयोडाइड स्यम्पोर्टर है। इस क्रिया को आयोडाइड प्रग्रहण (Iodide Trapping) कहते हैं। सामान्य अवस्था में आयोडाइड पंप आयोडाइड को रक्त में मौजूद आयोडाइड की तुलना में 30 गुना तक सान्द्र कर देता है।

अतिरिक्त आयोडीन मूत्र द्वारा विसर्जित कर दिया जाता है। आयोडीन तत्व थायराइड ग्रंथि के अन्दर फोलीक्युलर कोशिकाओं में Na^+/I^- समनव्य परिवहन प्रणाली (Co-transporter System) पर आधारित परिवहन से थायराइड ग्रंथि के अन्दर प्रवेश करता है। फोलिकल कोशिकाओं के पुटी (Lumen) में जाने के बाद परऑक्साइड नामक एंजाइम द्वारा आयोडीन तत्व का ऑक्सीकरण किया जाता है। इसी आयोडीन तत्व को टायरोसिन के साथ संलग्न करके T_3 तथा T_4 हार्मोन को निर्मित किया जाता है।

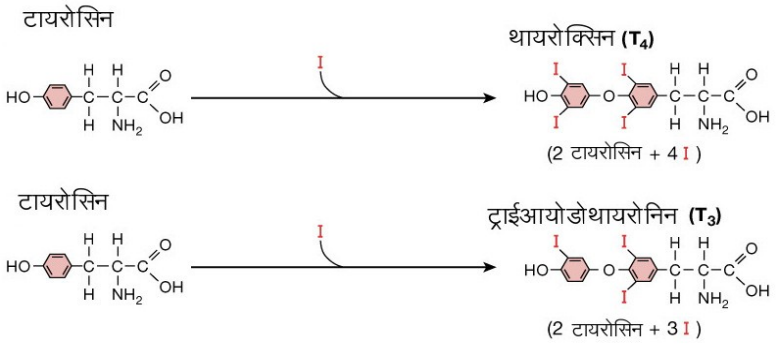

चित्र 4 – T_3 और T_4 के बनने की प्रक्रिया

Chemical Reaction showing association of Iodine and Tyrosine for formation of T_3 and T_4

जब T_3 तथा T_4 हार्मोन थायराइड ग्रंथि के अन्दर होते हैं, तब वे थायरोग्लोब्युलिन नामक प्रोटीन से जुड़े होते हैं। थायरोग्लोब्युलिन प्रोटीन आयोडीन तत्व से संलग्न होने पर 6,60,000 डाल्टन अणु भार का होता है जो 3,30,000 डाल्टन अणु भार की 2 समान इकाई से बना है। प्रोटीन को तोड़ने वाले एन्जाइम थायरोग्लोब्युलिन को तोड़कर मुक्त अवस्था में रक्त में लाते हैं। रक्त में T_3 तथा T_4 हार्मोन्स एल्ब्यूमिन नामक प्रोटीन से जुड़ जाते हैं और रक्त में प्रवाहित होकर उतकों और कोशिकाओं पर मौजूद विशेष अभिग्राहक (Receptor) पर चिपक जाते हैं, जिसके परिणाम स्वरुप उतकों और कोशिकाओं के अन्दर चयापचय की क्रिया में बढ़ोत्तरी होती है और पुरे शरीर की क्रियाशीलता में तेजी आती हैं। जब यह क्रियाशीलता में आयी हुई तेजी ज्यादा प्रमाण में होती है तब हाइपोथेलेमस उसे पहचान कर थायराइड रिलीसिंग हार्मोन (TRH) का स्राव कम कर देता हैं, जिसके कारण थायराइड स्टिम्युलेटिंग हार्मोन (TSH) के निर्माण और स्राव में कमी आती हैं।

थायराइड हार्मोन में मुख्यतः दो भाग होते हैं, टायरोसिन और आयोडीन। जब भी हमारे भोजन एवं जल में आयोडीन तत्व की कमी होती है, तो थायराइड ग्रंथि ज्यादा से ज्यादा आयोडीन को अवशोषित करने के लिए अपना आकार बढ़ा लेती है, और हमें वो घेंघा के रूप में सामने दिखता है। थायराइड हार्मोन में कमी की स्थिति को 'हायपो–थायराइड' कहते हैं। यह यदि बचपन में हो तो बौनापन होता है और यदि प्रौढ़ अवस्था में हो तो मयेक्सेडेमा होता है। बौनापन में लम्बाई सामान्य से कम होती है और मयेक्सेडेमा में मोटापा और आलस्य के लक्षण पाए जाते हैं।

आयोडीन तत्व की कमी न होने देने के लिए हमें आयोडीन युक्त नमक के साथ साथ आयोडीन युक्त भोजन जैसे आलू आदि का सेवन करना चाहिए। हमेशा नियमित व्यायाम करके हम थायराइड ग्रंथि से सम्बन्धित रोगों की रोकथाम कर सकते हैं।

➢ वैज्ञानिक 'बी' विज्ञान प्रसार
सी–24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया
नई दिल्ली 110 016
ई–मेल : sachin@vigyanprasar.gov.in

परजीवी और उनका संक्रमण

■ डॉ.इरफाना बेगम

वातावरण में चारों ओर असंख्य सजीव हैं उनमें पेड़ पौधे और एक कोशकीय जीव से लेकर बहुकोशकीय मानव अथवा सबसे बड़ा जीवित स्थलीय जीव हाथी सभी शामिल हैं। यह सभी सजीव जीवन के लक्षण को प्रदर्शित करने वाले महत्वपूर्ण गुण भोजन को किसी न किसी रूप में ग्रहण करते हैं। भोजन के ग्रहण करने के इनके प्रकार के आधार पर इनको उत्पादक एवं उपभोक्ता के क्रम में बांटा जाता है।

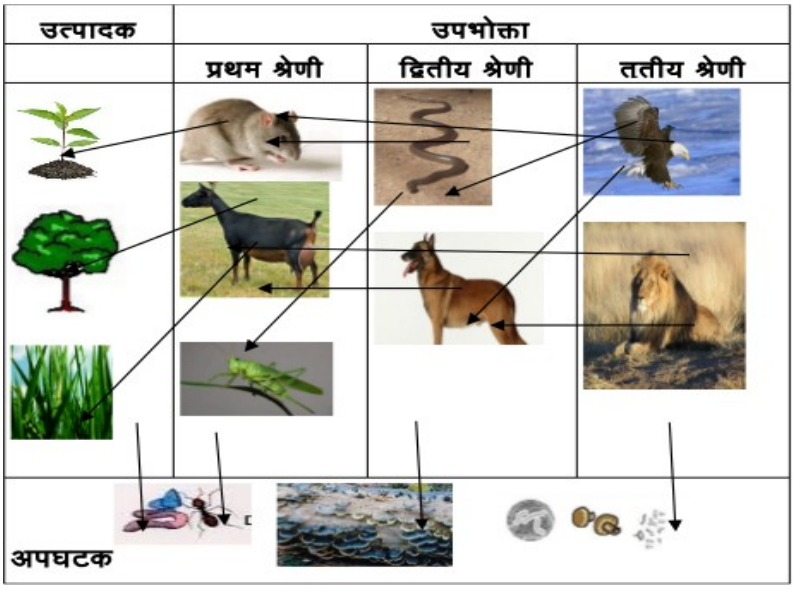

सभी हरे पौधे उत्पादक की श्रेणी में आते हैं उनमें उपस्थित क्लोरोफिल सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में प्रकाश संश्लेषण द्वारा अपना भोजन स्वयं बनाते हैं जो कि पौधों की वृद्धि के काम आता है, उन्हें उत्पादक कहा जाता है। इसी प्रकार अन्य सभी सजीव जो पौधों से अथवा दूसरे सजीवों से अपना भोजन प्राप्त करते हैं, वे उपभोक्ता की श्रेणी में आतें हैं। जो सजीव सीधे पौधों पर निर्भर होते हैं उन्हे प्रथम श्रेणी का उपभोक्ता कहा जाता है किन्तु प्रथम श्रेणी के उपभोक्ताओं पर निर्भर सजीवों को द्वितीय अथवा तृतीय श्रेणी का उपभोक्ता कहा जाता है।

जबकि उत्पादक एवं उपभोक्ताओं के मृत्यु के पश्चात उनके अवयवों को अपघटित करने वाले सजीव अपघटक की श्रेणी में आते हैं।

सभी उपभोक्ता के भोजन एवं आवास के लिये विशिष्ट प्रकृति होती है जिसके आधार पर इन्हें सहजीवी एवं परजीवी के समूह में बांटा गया है। जैसे कि कुछ उपभोक्ता अपने भोजन अथवा आवास के लिये अपने पोषक पर निर्भर होते हैं और बदले में अपने पोषक के लिये कुछ न कुछ सहायता प्रदान करते हैं, वे सहजीवी कहलाते हैं। सहजीविता तीन प्रकार की हो सकती है :–

सहजीवन (Symbiosis) : जिसमें पोषक और उपभोक्ता दोनों को ही एक दूसरे से लाभ मिल रहा हो। उदाहरण के तौर पर नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु जो कि फली वाले पौधों की जड़ों में रहते हैं, पौधों से अपने लिये पोषण एवं आवास प्राप्त करते हैं और साथ ही भूमि का नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते हैं।

सहभोजिता (Commensalism) : जब उपभोक्ता को पोषक से भोजन तो मिल रहा हो किन्तु वह उसके बदले में पोषक को कुछ भी न देता हो।

सहोपकारिता (Mutualism) : जब पोषक और उपभोक्ता दोनों को ही एक दुसरे से कोई विशेष लाभ अथवा हानि नहीं हो रही हो।

इनके अतिरिक्त पोषण एवं आवास के लिये पूर्णतया अपने पोषक पर निर्भर रहने वाले सजीवों को परजीवी कहा जाता है। यह परजीवी एककोशकीय से लेकर बहुकोशकीय तक हो सकते हैं। परजीवी जिन अन्य सजीवों पर आश्रित होते हैं उन्हें पोषक कहा जाता है। अधिकतर परजीवी संक्रमण से रोगों के होने की सम्भावनायें होती हैं। किन्तु कई परजीवी ऐसे भी है जो अपने पोषक के शरीर में बिना किसी संक्रमण को पैदा किये काफी समय तक रह सकते हैं। यह परजीवी संक्रमण कई बार आसानी से दवाओं की सहायता से ठीक हो जाता है जबकि कई बार यह संक्रमण ठीक नहीं भी होता है।

परजीवियों एवं उनके पोषक के सम्बन्धों का अध्ययन विज्ञान की महत्वपूर्ण शाखा परजीवी विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। शब्द parasite मध्य फ्रेंच के parasite,

लैटिन के parasitus, ग्रीक के παράσιτος (Parasitos) से बना है जो कि दो शब्द 'पैरा एवं सिटोस' से मिलकर बना है जिसका अर्थ होता है 'दूसरे पर निर्भर रहना'। पहली बार इस शब्द का 1939 में प्रयोग किया गया। 1611 में पैरा एवं सिटोस्म को जोड़ कर पैरासिटिस्म शब्द का प्रयोग किया गया था जिसका अर्थ होता है परजीविता।

इनकी उपस्थिति, आकारकी एवं पोषक के साथ इनके सम्बन्ध के आधार पर इन्हें विभिन्न समूहों में विभाजित किया जा सकता है। सामान्य तौर पर अत्यधिक सूक्ष्मजीव जिन्हें सूक्ष्मदर्शी से ही देखा जा सकता है, को परजीवी माना जाता था जबकि वास्तविक तौर पर कुछ बड़े जीव भी परजीवी हो सकते हैं जिन्हें नग्न आखों से देखा जा सकता है।

सामान्य तौर पर जन्तु जगत के प्रत्येक समूह में कोई न कोई प्रजाति परजीवी जीवन व्यतीत करती है किन्तु जन्तु जगत के वर्गीकरण में परजीवी सदस्यों को सामान्यतः तीन मुख्य समूहों में विभाजित किया गया है, जो है प्रोटोजोआ, हेल्मिन्थ एवं आर्थोपोडा। सभी समूहों के सदस्यों को विभिन्न वर्ग, गण, परिवारों, जाति एवं प्रजाति में बांटा गया है।

जंतु जगत के वर्गीकरण के आधार पर परजीवीयों का वर्गीकरण निम्न प्रकार है–

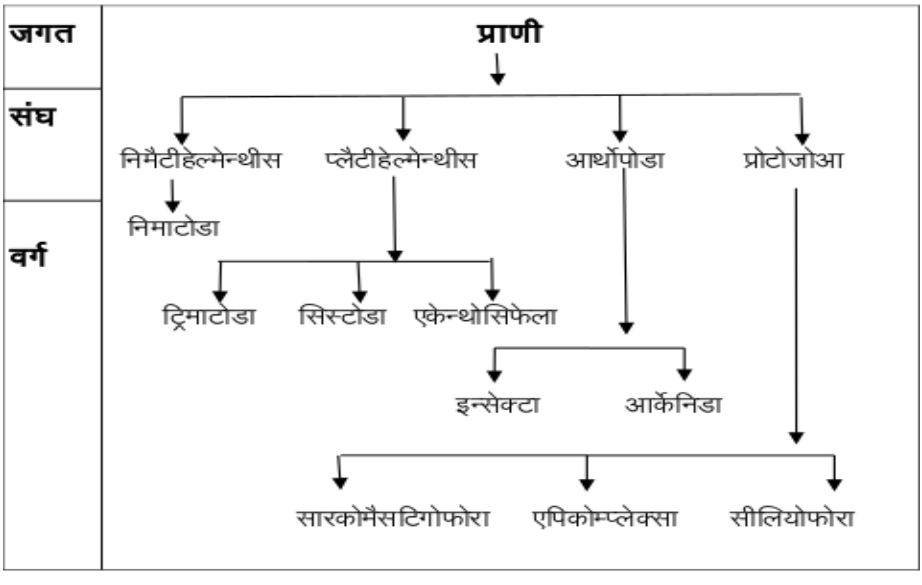

प्रोटोजोआ संघ के सदस्य एक–कोशकीय होते हैं, जो कि नग्न आँखों से नहीं देखे जा सकते हैं। जबकि अन्य संघ के सदस्य बहुकोषकीय होते हैं, जिन्हें नग्न आखों से देखा जा सकता है।

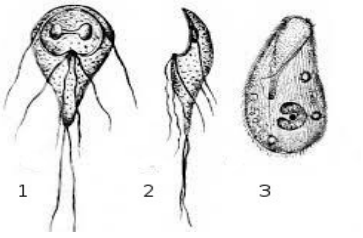

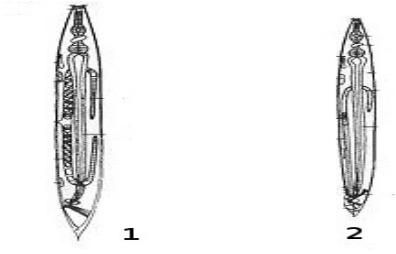

संघ निमाटोडा के जीव गोल होते हैं इनको गोल–क्रमी भी कहा जाता है। इनके नर, मादा की अपेक्षा छोटे तथा पीछे की ओर थोड़ा मुड़े होते हैं इनमें नर एवं मादा अलग–अलग होते हैं।

संघ ट्रिमाटोडा के जीव चपटे होते हैं इनमें नर एवं मादा अलग– अलग नहीं होते हैं।

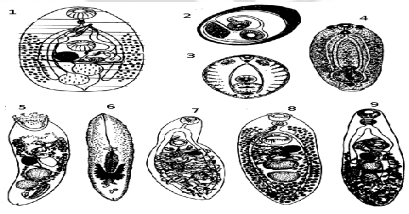

HBCSE

संघ सिस्टोडा के जीव चपटे एवं फीते के समान होते है, इन्हें फीता–क्रमी भी कहते हैं, इनमें नर एवं मादा अलग–अलग नहीं होते हैं।

संघ एकेन्थोसिफेला के जीव चपटे होते हैं। इनके मुख पर कटीला प्रोबोसिस होता है जो कि इनका विशिष्ट गुण है। इनमें नर एवं मादा अलग–अलग नहीं होते हैं।

शारीरिकी के आधार पर परजीवीयों का वर्गीकरण निम्न प्रकार है –

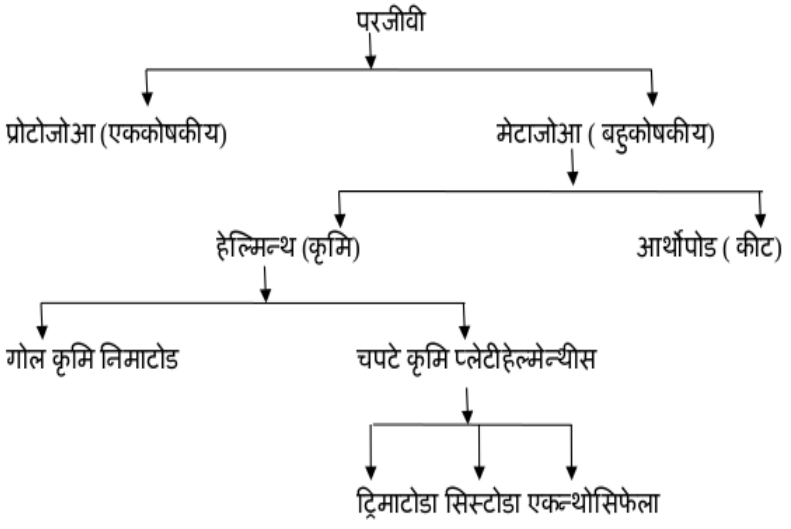

अपने रहने के आधार पर परजीवियों को निम्न प्रकार से पहचाना जा सकता है

- **अन्तःपरजीवी**

इस समूह के सभी परजीवी पोषक के शरीर के भीतर रहते हैं जैसे मनुष्य की आंत के परजीवी एवं अन्य अंगों में एवं उतकों में रहने वाले परजीवी जो पोषक के खून, कोशिकाओं अथवा शरीर के विभिन्न अंगों में रह सकते हैं। यह पूर्ण रूप से आवास एवं भोजन दोनो के लिये अपने पोषक पर निर्भर करते हैं। पोषक की मृत्यु के साथ ही इनकी भी मृत्यु हो जाती है। इनको पूर्ण परजीवी, बाध्यकर परजीवी भी कहा जाता है। जैसे एस्केरिस।

- **बाह्य परजीवी**

यह परजीवी पोषक के शरीर के बाहर रहने वाले होते है जो भोजन के लिये ही पोषक पर निर्भर करते हैं। पोषक की मृत्यु के बाद यह अपने लिये नये पोषक खोज लेते हैं। इन्हें अपूर्ण परजीवी या आंशिक परजीवी भी कहा जाता है। जैसे जू, खटमल, चीलर आदि।

- **वैकल्पिक परजीवी**

यह परजीवी अन्तः अथवा बाह्य दोनो प्रकार के हो सकते हैं किन्तु यह अपने जीवन चक्र

का कुछ हिस्सा परजीवी के रूप में तथा कुछ हिस्सा स्वतंत्र जीव के रूप में व्यतीत करते हैं।

- **सामयिक परजीवी**

  यह परजीवी पोषक में विभिन्न समयान्तराल में आते हैं।

- **आकस्मिक परजीवी**

  किसी अन्य प्रजाति का परजीवी बाह्य कारकों के प्रभाव से अन्य प्रजाती के पोषक में परजीवी जीवन व्यतीत करता है।

- **अस्थिर परजीवी**

  कई बार परजीवी अपने सामान्य विशिष्ट अंग स्थान पर न होकर अन्य किसी स्थान पर संक्रमण करता है।

- **पोषक विशिष्ट**

  कई परजीवी किसी विशेष पोषक के लिये ही परजीवी होते हैं जबकि अन्य पोषक में जाने पर या तो वह मर जाते हैं अथवा सहजीविता प्रदर्शित करते हैं।

- **एकपोषदीय**

  कई परजीवी अपना पूरा जीवनचक्र केवल एक ही पोषक में पूरा करते हैं। जैसे एस्केरिस।

- **बहुपोषदीय**

  कई परजीवियों को अपना जीवन चक्र पूरा करने के लिये एक से अधिक पोषदों की आवश्यकता होती है। उनका जीवन चक्र दो अथवा अधिक पोषक में पूरा होता हैं। जैसे मलेरिया परजीवी।

पोषद के प्रकार

1. स्थाई एवं अन्तिम पोषद

कई परजीवियों के लिये वयस्क एवं अन्तिम पोषक एक ही होता है जैसे शिषटोसोमा हिमैटोबियम के लिये स्थाई एवं अन्तिम पोषक केवल मनुष्य होता है जबकि शिषटोसोमा

जैपोनिकम के लिये स्थाई एवं अन्तिम पोषक मनुष्य के अतिरिक्त अन्य कई स्तनधारी भी हो सकते हैं।

2. मध्यस्थ पोषद

कई परजीवियों का जीवन चक्र दो पोषदों में पूरा होता है। जीवन चक्र के विशिष्ट भाग को पूरा करने के लिये मध्यस्थ पोषक की आवश्यकता होती है।

• संक्रमण के तरीके

1. प्रोटोजोआ अथवा कृमि के संक्रमण से संक्रमित पानी का प्रयोग करने से।
2. मृदा में अक्सर परजीवियों के अण्डे होते हैं जो कि पोषद में मृदा संक्रमण फैलाते हैं।
3. संक्रमित भोजन से परजीवी संक्रमण होने का खतरा रहता है।
4. शिषटोसोमिएसिस जैसे संक्रमण संक्रमित त्वचा के सम्पर्क में आने से होते हैं।
5. मलेरिया और फाइलेरिया जैसे रोगो का संक्रमण कीटों के काटने से होता है।
6. संक्रमित मध्यवर्ती पोषक के अंतर्ग्रहण से जैसे ड्रैकनकुलस मेडेनसिस।
7. लैंगिक संक्रमण जैसे ट्राइकोमोनास वैजिनेलिस।
8. टाक्सोकारा कैनिस कुत्ते के बच्चों में उसके अपरा से संक्रमण फैलता है।

परजीवी में अनुकूलन

विषम परिस्थितियों में बेहतर तरीके से जीवित रहने के लिए इन परजीवी के शरीर में अनुकूलन होता है जो केवल आकारिकी से सम्बन्धित न होकर जैवरासायनिक एवं जीवन चक्र से सम्बंधित होते हैं। इसमें परजीवी की अत्यधिक अंडे देने की क्षमता, गमन अंगो की कमी, पूर्ण पाचन तंत्र का अभाव, पोषक के शरीर को पकड़ने के लिए हुक होना, चूषक अंगो का होना अनुकूल वातावरण में सिस्ट से नए जीव में परिवर्तन, स्वतः गुड़न आदि शामिल हैं।

➢ प्रियोजना अधिकारी
एजूसेट, विज्ञान प्रसार
सी–24, कुतुब संस्थागत क्षेत्र,
नई दिल्ली

वैज्ञानिक साक्षरता और टेलीविजन की भूमिका

■ नवनीत कुमार गुप्ता

प्रस्तावना

संचार के विभिन्न माध्यमों द्वारा हम विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी सहित विभिन्न क्षेत्रों में घटित होने वाली घटनाओं, आविष्कारों एवं खोजों की जानकारी प्राप्त करते हैं। जनसंचार के सबसे प्रभावी एवं लोकप्रिय माध्यम के रूप में टेलीविजन की विशेष पहचान है। आज टीवी संचार व मनोरंजन का नया और सशक्त माध्यम बनकर उभरा है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर विभिन्न संस्थाओं द्वारा समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को जागृत करने के लिए अनेक दृश्य कार्यक्रमों का निर्माण किया जा रहा है। इन दृश्य कार्यक्रमों को दूरदर्शन एवं अन्य चैनलों के माध्यम से आम जनता तक पहुँचा कर वैज्ञानिक चेतना के विकास में योगदान दिया जा रहा है।

विज्ञान संबंधी दृश्य कार्यक्रम समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रसार में उल्लेखनीय भूमिका निभा रहे हैं। दूरदर्शन के राष्ट्रीय चैनलों पर पिछले एक दशक से विज्ञान संबंधी कार्यक्रमों का प्रसारण हो रहा है। इसके अलावा लोकसभा टीवी एवं राज्यसभा टीवी पर भी विज्ञान कार्यक्रमों का नियमित प्रसारण किया जा रहा है।

आज अंग्रेजी के महत्वपूर्ण चैनल जैसे डिस्कवरी, एनीमल प्लेनेट, नेशनल ज्योग्राफी, हिस्ट्री चैनल आदि हिंदी सहित अनेक क्षेत्रीय भाषाओं में विज्ञान संबंधी कार्यक्रम प्रसारित कर रहे हैं। अनेक समाचार चैनल जैसे एनडीटीवी आदि भी पर्यावरण, नदी संरक्षण पर विशेष कार्यक्रमों का प्रसारण करते हैं।

विज्ञान प्रसार द्वारा निर्मित कार्यक्रमों का उद्देश्य समाज में वैज्ञानिक सोच की प्रवृत्ति को प्रसारित करना है। विज्ञान विधि पर आधारित कार्यक्रमों में हल्का–फुल्का मनोरंजन और सूचनाओं का रोचक तरीके से प्रसार दर्शकों को कार्यक्रम से बांधे रखता है। किसी भी दृश्य कार्यक्रम की गुणवत्ता प्रवाहपूर्ण भाषा शैली, तथ्यों का संतुलित एवं यथार्थ प्रयोग, स्पष्ट विषय–वस्तु को प्रस्तुत करने की क्षमता पर निर्भर करती है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर निर्मित किए गए विज्ञान प्रसार के कार्यक्रमों 'विज्ञान–जवाबों में सवाल', 'द मैथ्स फैक्टर',

'खुदबुद : विज्ञान के खेल', 'जो है जैसा, क्यों है वैसा?', 'कुछ तुक्के...कुछ तीर – प्रयोग जिन्होंने दुनिया बदल दी', 'ऐसा ही होता है', 'जीते रहो', 'चमत्कार', 'जिज्ञासा', 'नैनो की दुनिया', 'कहानी धरती की', 'तारों की सैर', 'हमारे खगोलीय पड़ौसी : कितने दूर–कितने पास', 'मुखौटे–सच का चेहरा' आदि को दर्शकों द्वारा काफी सराहा गया है। विज्ञान प्रसार के स्वयं एवं डेकू, इसरो के साथ मिलकर विकसित किए गए अनेक कार्यक्रमों को दूरदर्शन के विभिन्न राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय चैनलों, लोकसभा टीवी, राज्यसभा टीवी पर प्रसारित किया जा रहा हैं। यहां विज्ञान प्रसार के कुछ कार्यक्रमों के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी जा रही है। जिनसे हमें कार्यक्रमों की रूपरेखा व उद्देश्य समझने में आसानी होगी।

1) विज्ञान धारावाहिक

◆ ऐसा ही होता है

55 कड़ियों वाला धारावाहिक "ऐसा ही होता है" विज्ञान प्रसार एवं डेकू/इसरो द्वारा संयुक्त रूप से निर्मित किया गया है। यह कार्यक्रम दूरदर्शन के राष्ट्रीय चैनल पर 2005 से 2006 के दौरान प्रत्येक रविवार सुबह 09.30 से 10.00 बजे तक प्रसारित किया जा रहा था। इस धारावाहिक की प्रत्येक कड़ी किसी विशेष विषय जैसे पृष्ठ तनाव, घर्षण, चुंबकत्व एवं अन्य विषयों पर आधारित थी। इस धारावाहिक की कुछ कड़ियों के अंत में पर्यावरण से संबंधित विभिन्न विषयों जैसे प्रदूषण, खाद्य श्रृंखला और जैवविविधता आदि पर दो मिनट की अवधि के एनीमेशन को दर्शकों द्वारा काफी सराहा गया। 55 कड़ियों का यह कार्यक्रम मन में उठने वाले अनेक सवालों को जैसे बस में ब्रेक लगने पर झटका क्यों लगता है?, वायुयान कैसे उड़ता है?, गेंद स्पिन कैसे होती है? आदि का जबाव देने में कामयाब रहा है। इस कार्यक्रम में क्यों और कैसे के चक्कर में विज्ञान के विभिन्न सिद्धांतों को सरलता से समझाया गया है। मुख्यतः इसमें दो अन्य भाग 'देख खेल के' और 'हर मुट्ठी में साइंस' भी शामिल हैं। 13 कड़ियों वाले 'देख खेल के' कार्यक्रम में विभिन्न खेलों में छिपे विज्ञान के बारे में जानकारी दी गई है। 'देख खेल के' कार्यक्रम ने खेलप्रेमियों को बहुत आकर्षित किया। इस कार्यक्रम को 2010 में आयोजित राष्ट्रमंडल खेलों के दौरान लोकसभा टीवी से दोबारा प्रसारित किया गया था।

◆ जीते रहो

विज्ञान प्रसार द्वारा स्वास्थ्य पर आधारित 26 कड़ियों वाले कार्यक्रम "जीते रहो" का

निर्माण डेकू, इसरो के साथ मिलकर किया गया। इस कार्यक्रम का प्रसारण दूरदर्शन से किया जा चुका है। एड्स, मधुमेह, टीकाकरण आदि स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न मुद्दों को इस कार्यक्रम की मदद से समझाया गया है। इसमें एक 3–डी केरेक्टर 'बब्लू बिंदास' ने दर्शकों को काफी आकर्षित किया। इस कार्यक्रम में स्वास्थ्य की महत्ता को दर्शाने के साथ ही अनेक गंभीर बीमारियों के लक्षण एवं उनसे बचाव के बारे में जानकारी प्रदान की गई।

◆ चमत्कार

2006 में 26 कड़ियों वाला कार्यक्रम "चमत्कार" दूरदर्शन पर प्रसारित किया जा चुका है। इस कार्यक्रम का निर्माण विज्ञान प्रसार ने डेकू, इसरो के साथ किया है। इसमें दैनिक जीवन में देखे जाने वाले विज्ञान के अनेक सिद्धांतों को मनोरंजक माध्यम से क्विज के रूप में प्रस्तुत किया गया था। यह कार्यक्रम आम जनता के साथ–साथ स्कूली बच्चों में काफी लोकप्रिय हुआ था। इस कार्यक्रम के माध्यम से विद्यार्थियों में अपने आसपास विज्ञान से जुड़े सवालों पर चर्चाएं आरंभ हुई।

◆ नैनो की दुनिया

13 कड़ियों वाला धारावाहिक "नैनो की दुनिया" विज्ञान प्रसार एवं डेकू, इसरो द्वारा संयुक्त रूप से निर्मित किया गया है। यह कार्यक्रम दूरदर्शन के राष्ट्रीय चैनल पर 2007–2008 के दौरान प्रत्येक रविवार को प्रसारित किया गया था। यह धारावाहिक नैनोप्रौद्योगिकी के नवीन आयामों पर आधारित था। ऐनिमेशन से भरपूर इस कार्यक्रम के द्वारा नैनोप्रौद्योगिकी के विभिन्न पहलुओं को रोचक ढ़ंग से समझाया गया है। नैनो की दुनिया कार्यक्रम में विज्ञान की नवीन शाखा की जानकारी को रोचकता एवं सरलता से समझाया गया।

◆ कहानी धरती की

26 कड़ियों वाले कार्यक्रम "कहानी धरती की" को विज्ञान प्रसार द्वारा अंतर्राष्ट्रीय पृथ्वी ग्रह वर्ष–2008 के दौरान विकसित किया गया। इस कार्यक्रम में पृथ्वी ग्रह से संबंधित विभिन्न पहलुओं जैसे यहां के वातावरण, महासागरीय तंत्र एवं अनेक पारिस्थितिकी तंत्रों जैसे पहाड़, जंगल, नदी आदि के अलावा जलवायु परिवर्तन के संकट एवं इनसे निपटने के लिए किए जा सकने वाले प्रयासों को भी शामिल किया गया है। इस कार्यक्रम में जलवायु परिवर्तन एवं प्रदूषण के खतरों को दर्शाते हुए धरणीय विकास की महत्ता को दर्शाया गया है।

HBCSE

◆ तारों की सैर

विज्ञान प्रसार द्वारा निर्मित 26 कड़ियों वाला कार्यक्रम "तारों की सैर" खगोलविज्ञान से संबंधित अनेक पहलुओं को उजागर करता है। यह कार्यक्रम विज्ञान प्रसार द्वारा अंतर्राष्ट्रीय खगोल विज्ञान वर्ष–2009 के अवसर पर निर्मित किया गया था जिसका प्रसारण 2009–2010 के दौरान दूरदर्शन से किया जा चुका है। इस कार्यक्रम द्वारा खगोल विज्ञान से सम्बन्धित अनेक प्रश्नों जैसे ; इस अनन्त ब्रम्हांड में हम कहां हैं और कहां से आए हैं, रात को आकाश में चमकने वाले तारे क्या हैं, चंद्रमा को ग्रहण क्यों लगता है, उसकी कलाएं क्या हैं, हम ब्रम्हांड में कहां तक पहुँच सकते हैं, यह ब्रम्हांड कैसे अस्तित्व में आया, सौर मंडल कैसे बना आदि को समझाने का प्रयास किया गया। प्रत्येक धारावाहिक में 'स्वयं कर सकें' जैसी गतिविधि भी धारावाहिक को आकर्षक बनाती हैं।

नक्षत्र, आकाश में विचरते तारों, भारत, यूनान, बेबिलोन आदि के खगोलविज्ञान से संबंधित प्राचीन विचार, न्यूटन और की ब्रम्हांड की समझ, आधुनिक दूरदर्शी जैसे रेडियो दूरदर्शी, एक्स–रे दूरदर्शी और गामा रे, दूरदर्शी सौरमंडल के ग्रह, सौरमंडल से बाहर के ग्रहों, तारों के जन्म और मृत्यु, ब्लैक होल आदि अनेक परिघटनाओं व रहस्यों से पर्दा उठाते हुए इस धारावाहिक ने दर्शकों का मन मोह लेने के साथ उनमें खगोल विज्ञान के प्रति रूचि को जाग्रत करने का प्रयास भी किया।

◆ कुछ तुक्के...कुछ तीर – प्रयोग जिन्होंने दुनिया बदल दी

विज्ञान के क्षेत्र में हुए क्रांतिकारी प्रयोगों पर विज्ञान प्रसार द्वारा निर्मित 26 कड़ियों वाला धारावाहिक "कुछ तुक्के...कुछ तीर – प्रयोग जिन्होंने दुनिया बदल दी" दूरदर्शन के राष्ट्रीय चैनल पर प्रत्येक मंगलवार सुबह 08.30 से 09.00 बजे के मध्य में प्रसारित हो रहा है। इस धारावाहिक की प्रत्येक कड़ी किसी विशेष प्रयोग जैसे एक्स–रे विकिरणों की खोज, हरित गृह प्रभाव की खोज, सूक्ष्मअणुओं की खोज, पेनिसिलिन की खोज, मॉर्गन के प्रयोग, संज्ञानात्मक विज्ञान का विकास, हरित क्रांति, रक्त समूहों की खोज, टीकाकरण की खोज, वायुदाब के मापन की खोज, सेमीकन्डक्टर की खोज, ब्रह्मांड के मापन संबंधी प्रयोगों आदि पर आधारित है। इस धारावाहिक द्वारा विद्यार्थियों ने वैज्ञानिकों द्वारा किए गए प्रयोगों की प्रक्रिया एवं परेशानियों को समझा। इस धारावाहिक में विज्ञान की खोजों में छिपी वैज्ञानिक विधि को समझाने का प्रयास किया गया है। इस धारावाहिक ने विद्यार्थियों को वैज्ञानिकों के

जीवन एवं उनके कार्यों से परिचित कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

◆ खुदबुद : खेल विज्ञान के

52 कड़ियों के धारावाहिक "खुदबुद : खेल विज्ञान के" का प्रसारण सितम्बर 2013 से 2014 के दौरान दूरदर्शन के राष्ट्रीय चैनल पर प्रत्येक शनिवार प्रातः 09.00 से 9.30 बजे तक किया गया। इसके अलावा इसका प्रसारण डीडी भारती चैनल पर भी किया गया। विज्ञान प्रसार द्वारा निर्मित 52 कड़ियों का यह कार्यक्रम एक अनोखे स्वरूप यात्रावृत्त के रूप में देश के विद्यालयों और समुदायों में फिल्माया गया है। इस कार्यक्रम में गांवों और कस्बों के विभिन्न विद्यालयों के बच्चों ने विज्ञान को खेल के रूप में सीखा। इसमें बच्चों को, उनकी सोच को विकसित करने का प्रयास किया गया है। इसमें विज्ञान को पाठ्यपुस्तकों या परिभाषाओं तक सीमित न रखते हुए खेल के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया गया है जहां तर्कसंगत सोच, प्रयोग और विचार करने की स्वतंत्रता है। असल में खुद यानी स्वयं और बुद यानी मस्तिष्क, इस प्रकार खुदबुद का मतलब निरंतर विचारों के जन्म लेने और जिज्ञासु प्रवृत्ति से है। खुदबुद का उद्देश्य विज्ञान को लोकप्रिय करने के साथ ही विज्ञान विधि को मुख्य तौर पर बढ़ावा देना है। इसमें बच्चों को लक्ष्यित करके रचनात्मकता और स्वयं करने की क्षमता का विकास करने को बढ़ावा दिया गया है। खुदबुद के माध्यम से करके सीखो वाली भावना के विकास पर ध्यान केंद्रित किया गया है। इस धारावाहिक के विद्यार्थियों से विज्ञान के विभिन्न सिद्धांतों जैसे पृष्ठ तनाव, घनत्व, वायुदाब, घर्षण, चुम्बकत्व, विद्युत चालकता आदि से संबंधित विभिन्न प्रयोग रोचक तरीके से कराए गए।

◆ विज्ञान– जवाबों में सवाल

विज्ञान से जुड़ी उत्सुकता और जवाबों की खोज इस धारावाहिक की मुख्य विषय–वस्तु है। ये 26 भाग वाली ऐसी श्रृंखला है जो विभिन्न भारतीय विज्ञान प्रयोगशालाओं और तकनीकी केन्द्रों में हो रही सबसे रोमांचक और अतिउन्नत शोध तथा नई खोजों को दिखाती है। इस श्रृंखला का उद्देश्य दर्शकों के इस सवाल का जवाब देना है कि भारत में विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रों में क्या हो रहा है? इस धारावाहिक की हर कड़ी हमारा परिचय शोधकर्ताओं के ऐसे समूहों से कराती है जो विज्ञान से जुड़ी किसी बड़ी समस्या को सुलझाने की कोशिश कर रहे हैं। इसमें कई क्षेत्रों को छुआ गया है, जिनमें आनुवंशिक विज्ञान, अणु भौतिकी, वन्य जीवन संरक्षण, रेडियो ब्रम्हांड, जैव प्रौद्योगिकी से लेकर खेती में हो रही नई खोजें भी शामिल हैं।

यानी इस श्रृंखला में भारत के वैज्ञानिक परिदृश्य के हर पहलू का जायजा लिया गया है।

◆ द मैथ्स फैक्टर

विज्ञान प्रसार द्वारा निर्मित 13 कड़ियों का दृश्य धारावाहिक "द मैथ्स फैक्टर" 09 जुलाई, 2014 से प्रत्येक बुधवार को दूरदर्शन के राष्ट्रीय चैनल पर प्रातः 09.00 से 09.30 बजे प्रसारित किया गया। यह कार्यक्रम गणित के विभिन्न पहलुओं को दर्शाता है। इस धारावाहिक की प्रत्येक कड़ी गणित के किसी क्षेत्र की रोचक संकल्पना और यात्रा पर केंद्रित है जिसमें ऐतिहासिक संदर्भों एवं नवाचारों का भी जिक्र किया जाता है। पाठ्यपुस्तकों जैसी सामग्री से मुक्त यह श्रृंखला दर्शकों में काफी लोकप्रिय साबित हुई।

◆ "जो है जैसा, क्यों है वैसा ?"

विज्ञान प्रसार द्वारा रसायन विज्ञान पर निर्मित 13 कड़ियों वाला धारावाहिक "जो है जैसा, क्यों हैं वैसा?" रसायन विज्ञान के विकास की यात्रा कराता है। यह धारावाहिक हमारे दैनिक जीवन में रसायनों के उपयोग से लेकर औद्योगिक युग के विकास में रसायनों की भूमिका पर प्रकाश डालता है। यह धारावाहिक रसायन विज्ञान के क्षेत्रों में हुए क्रांतिकारी परिवर्तनों से दर्शकों को रूबरू कराता है। इस धारावाहिक के माध्यम से स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, नैनोप्रौद्योगिकी, जैवरासायनिकी एवं हरित रसायन विज्ञान आदि विभिन्न क्षेत्रों में रसायन विज्ञान के महत्व को दर्शाया गया है। इस धारावाहिक के माध्यम से हरित रसायन विज्ञान की महत्ता एवं उपयोगिता से दर्शकों को परिचित कराने का प्रयास किया गया है।

2) समसामायिक विज्ञान समाचारों पर आधारित दृश्य कार्यक्रम

◆ 'ज्ञान–विज्ञान' एवं 'साइंस दिस विक'

विज्ञान प्रसार द्वारा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की नवीनतम उपलब्धियों पर विज्ञान समाचारों पर आधारित कार्यक्रम का प्रसारण किया जा रहा है। विज्ञान की नवीनतम घटनाओं की जानकारी देने का प्रयास करने वाला यह कार्यक्रम अपनी तरह का देश का पहला विज्ञान कार्यक्रम है। विज्ञान प्रसार द्वारा इस कार्यक्रम के माध्यम से हमारे देश में विज्ञान की प्रयोगशालाओं में होने वाली खोजों एवं अनुसंधानों के साथ ही पर्यावरण, स्वास्थ्य, जैव प्रौद्योगिकी, सूचना तकनीकी आदि से संबंधित नयी–नयी गतिविधियों से जनमानस को अवगत कराने का प्रयास किया जा रहा है। इस कार्यक्रम में विज्ञान साहित्य पर चर्चा,

वैज्ञानिकों के साक्षात्कार, आकाश दर्शन से संबंधित रोचक जानकारियों का समावेश, विज्ञान पर्यटन के साथ विज्ञान संबंधी समसामायिक घटनाओं का ब्यौरा दिया जाता है।

इस कार्यक्रम का प्रसारण फरवरी, 2011 से लोकसभा टेलीविजन से किया गया है। 2014 के आरंभ से यह कार्यक्रम राज्यसभा टीवी से प्रसारित हो रहा है। इस कार्यक्रम को प्रतियोगिता परिक्षाओं की तैयारी करने वाले विद्यार्थियों द्वारा काफी पसंद किया गया है।

3) वृत्तचित्र

विज्ञान प्रसार द्वारा भारतीय वैज्ञानिकों जैसे जे. सी. बोस, पी. सी. रे, एस. चन्द्रशेखर के अलावा अनेक महान वैज्ञानिकों जैसे अल्बर्ट आइंस्टाइन, चार्ल्स डार्विन के जीवन एवं कार्यों पर वृत्तचित्रों का निर्माण किया गया है। विज्ञान प्रसार के अलावा राष्ट्रीय विज्ञान संग्रहालयों और राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद सहित अनेक विश्वविद्यालयों द्वारा भी वैज्ञानिकों पर वृत्तचित्रों का निर्माण किया गया है। इन वृत्तचित्रों के द्वारा वैज्ञानिकों के संघर्ष, उनकी कार्य विधि और सबसे प्रमुख विज्ञान विधि को समझा जा सकता है जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण की अहम कड़ी है। विज्ञान प्रसार द्वारा निर्मित किए गए वृत्तचित्रों में वैज्ञानिकों के कार्यों, उनकी असफलताओं–सफलताओं को मुख्य रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है। विज्ञान प्रसार द्वारा अब तक भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियों, पी. सी. महालोबनिस, पी. सी. वैद्य, प्रोफेसर यशपाल, जी. एन. रामचन्द्रण, प्रोफेसर ए. के. रायचौधरी, अल्बर्ट आइंस्टाइन, प्रोफेसर बी. एल. सराफ आदि पर वृत्तचित्रों का निर्माण किया गया है।

4) समसामायिक परिघटनाओं पर आधारित दृश्य कार्यक्रम

विज्ञान प्रसार सहित अनेक संस्थाओं द्वारा अनेक समसामायिक विषयों जैसे सूर्य ग्रहण एवं शुक्र पारगमन पर भी दृश्य कार्यक्रमों का निर्माण किया गया है ताकि जनमानस इन प्राकृतिक परिघटनाओं को समझ सकें। इस प्रकार विज्ञान प्रसार अपने दृश्य कार्यक्रमों के द्वारा समाज में ऐसी खगोलीय घटनाओं से संबंधित प्रचलित अंधविश्वासों की सच्चाई सामने लाता है। इस प्रकार विज्ञान प्रसार समसामायिक परिघटनाओं पर आधारित दृश्य कार्यक्रम का निर्माण कर जनमानस में उन घटनाओं के प्रति जागरूकता बढ़ाने का प्रयास कर रहा है। विज्ञान प्रसार सहित ऐसी ही अन्य संस्थाओं के प्रयासों का नतीजा है कि हमारे देश में भी अब

ग्रहण या पारगमन जैसी घटनाओं को अंधविश्वास से मुक्त होकर करोड़ों लोग देखते और समझने का प्रयास करते हैं।

सितंबर, 2014 में भारत के मंगलमिशन पर अनेक चैनलों ने विशेष कार्यक्रम प्रस्तुत किए। इस अवसर पर राज्यसभा टीवी ने एक महीने तक भारतीय विज्ञान की उपलब्धियों पर कार्यक्रमों का प्रसारण किया जिसमें विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर वैज्ञानिकों के साक्षात्कार एवं समूह चर्चाओं का प्रसारण किया गया।

5) क्षेत्रीय भाषाओं में प्रसारित होने वाले विज्ञान प्रसार के दृश्य कार्यक्रम

विज्ञान प्रसार ने अपने अनेक विज्ञान कार्यक्रमों को भारत की प्रमुख 10 भाषाओं (मराठी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, उर्दू, आसामी, तमिल, तेलगू, पंजाबी, उड़िया) में रूपांतरित कर उपलब्ध कराया है। इन डब कार्यक्रमों को दूरदर्शन के क्षेत्रीय चैनलों द्वारा प्रसारित किया जा रहा है।

6) विज्ञान संबंधी दृश्य कार्यक्रमों की विशेषता

विज्ञान संबंधी दृश्य कार्यक्रमों का सबसे प्रमुख उद्देश्य वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना होता है। इसके लिए कार्यक्रमों को रोचक ढ़ंग से प्रस्तुत करना होता है। इस क्रम में कार्यक्रमों की स्क्रिप्ट, उनके प्रस्तुतिकरण, एनिमेशन एवं ग्राफिक्स पर विशेष ध्यान दिया जाता है। कार्यक्रमों की स्क्रिप्ट इस प्रकार विकसित की जाती है जिससे विज्ञान के गूढ रहस्यों को भी आसानी से समझा जा सके। इसके लिए सटिक उदाहरणों का सहारा लेते हुए तुलनात्मक ढ़ंग से वैज्ञानिक तथ्यों को सरलता से समझाया जाता है। इसके अलावा पाठकों के फीडबैक से भी अवगत होकर कार्यक्रमों को और उन्नत बनाया जाता है। इस प्रकार पाठक और कार्यक्रम के रिश्तों की प्रगाढ़ता कार्यक्रम के उद्देश्य को पूरा करने में सफल होती है। आधुनिक कार्यक्रमों में वैज्ञानिक व्याख्याओं, एनोलॉजी और अतिउन्नत एनिमेशन के माध्यम से विज्ञान को जीवंत बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

विज्ञान संबंधी कार्यक्रमों में सामाजिक मान्यताओं, प्रचलित धारणाओं, देशकाल आदि का भी ध्यान रखा जाना चाहिए ताकि दर्शक किसी भी बात को तुलनात्मक रूप से समझ सके। इस प्रकार विज्ञान संबंधी दृश्य कार्यक्रमों के माध्यम से वैज्ञानिक खोजों के

इतिहास, पर्यावरण की सुरक्षा करने, स्वास्थ्य के प्रति सजग रहने एवं नवीन तकनीकों एवं प्रौद्योगिकियों के बारे में जानकारी प्रदान करते हुए वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास पर बल दिया जाता है।

7) वैज्ञानिक साक्षरता में टेलीविजन की भूमिका

टेलीविजन न केवल मनोरंजन का बल्कि शिक्षा का भी सशक्त माध्यम है। सर्वप्रथम इसरो ने 'साइट' परियोजना के माध्यम से टेलीविजन का उपयोग शिक्षा के लिए करने का प्रयास किया। धीरे–धीरे टेलीविजन का उपयोग मनोरंजन के लिए होने लगा। लेकिन कुछ ही दिनों में समझ में आया कि मनोरंजन के साथ–साथ वैज्ञानिक साक्षरता के लिए टेलीविजन बेहतर माध्यम बन सकता है। इसीलिए 'टर्निंग पाईंट', 'भारत की छाप', 'मंथन', 'ऐसा ही होता है' जैसे कार्यक्रम बनें। आगे चलकर डेकू, इसरो एवं विज्ञान प्रसार सहित विश्वविद्यालयों द्वारा टेलीविजन के लिए विज्ञान संबंधी कार्यक्रम बनाए गए जिनके द्वारा वैज्ञानिक साक्षरता का प्रयास हुआ। टेलीविजन द्वारा वैज्ञानिक विषयवस्तु को सरलता, रोचकता और ग्राफिक्स, एनिमेशन के माध्यम से प्रस्तुत किया जाना इसका सबसे बड़ा आकर्षण है। यही कारण है अन्य माध्यमों की तुलना में टेलीविजन का प्रभाव जनमानस पर अधिक दिखाई देता है। इसके अलावा टेलीविजन एक साथ बहुत अधिक लोगों तक भी पहुंचता है। यही कारण है कि आज सूर्यग्रहण, चंद्रग्रहण जैसी घटनाओं के पीछे विज्ञान को आबादी का एक बड़ा वर्ग टेलीविजन के माध्यम से समझ सका है। आज हिग्स बोसॉन के बारे में लोग जानते हैं। असल में टेलीविजन द्वारा वैज्ञानिक तथ्यों को आसानी से जनमानस के मध्य प्रस्तुत किया जा सकता है। इसीलिए वैज्ञानिक साक्षरता के प्रसार में टेलीविजन की भूमिका महत्वपूर्ण है।

➢ परियोजना अधिकारी (एजूसेट)
विज्ञान प्रसार
सी–24, कुतूब संस्थानिक क्षेत्र
नई दिल्ली – 110 016
ई–मेल : ngupta@vigyanprasar.gov.in

विश्वप्रसिद्ध आनुवंशिकीविद् टॉमस हंट मॉर्गन

■ डॉ. प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

टॉमस हंट मॉर्गन एक विश्वप्रसिद्ध विकासवादी जीव वैज्ञानिक, आनुवंशिकीविद्, भ्रूणविज्ञानी तथा प्रचुर मात्रा में वैज्ञानिक साहित्य की रचना करने वाले सिद्धहस्त लेखक थे। आनुवंशिकी के क्षेत्र में मॉर्गन द्वारा किए गए युगान्तकारी शोधों ने उन्हें ख्याति के शिखर पर ही नहीं पहुँचाया बल्कि उन्हीं के आधार पर आधुनिक आनुवंशिकी विज्ञान की नींव भी रखी गई। इस प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक का जन्म 25 सितम्बर 1866 में संयुक्त राज्य अमेरिका के प्राकृतिक सौन्दर्य से भरे केंटुकी के लेक्सिंगटन नामक नगर में हुआ था। उस समय यह स्थान घोड़ों के प्रजनन का एक प्रख्यात केन्द्र था और यह 'ब्लू ग्रास एरिया' के नाम से जाना जाता था। आनुवंशिकी विज्ञान (जेनेटिक्स) के जनक जॉन ग्रेगर मेण्डल के बाद आनुवंशिकी के कार्य को एक प्रकार से अस्थाई विराम लग गया था। परन्तु मेण्डेल द्वारा उपलब्ध कराए गये आधार पर उनके कार्य को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने का श्रेय आज टॉमस हंट मॉर्गन को दिया जाता है। उन्होंने अपने परीक्षणों को प्रयोगों के माध्यम से पुष्ट किया, यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी। इस तथ्य में कोई संदेह नहीं कि यदि मेण्डेल जीवित होते तो मॉर्गन के शोधों पर उन्हें भी गर्व होता। मॉर्गन नोबेल पुरस्कार पाने वाले सर्वप्रथम अमेरिकी आनुवंशिकीविद् थे और उन्हें यह पुरस्कार औषधिविज्ञान (मेडिसिन) एवं कार्यिकी (फ़िजियालॉजी) के क्षेत्र में प्रदान किया गया था।

टॉमस हंट मॉर्गन का जन्म उस समय हुआ था जब अमेरिकी राज्यों का आपसी युद्ध समाप्त हो गया था। परन्तु युद्ध में ध्वस्त जनजीवन में शिक्षा का वह महत्व और सम्मान नहीं रह गया था। मॉर्गन का जन्म सम्पन्न परिवार में हुआ इसलिए उन्हें कुछ विशेष सुविधायें प्राप्त थीं। माता–पिता दोनों की ओर से उन्हें कुलीन और शिक्षित वंशक्रम की विरासत मिली थी। उनकी माता एलेन की हॉवर्ड मॉर्गन और पिता चार्लटन हंट मॉर्गन ऐसे परिवारों से थे जिन्होंने पूर्व में अपार समृद्धि देखी थी, परन्तु मॉर्गन के जन्म के समय वह स्थिति नहीं रही थी। तथापि उनकी गिनती संभ्रान्त लोगों में होती थी।

लम्बे कद के मॉर्गन एक सुदर्शन व्यक्तित्व के स्वामी थे। उनकी नीली आँखें और

चमकदार काले बाल जहाँ उनके स्वरूप को एक आकर्षण देते थे वहीं उनके चेहरे पर छोटी दाढ़ी उनके व्यक्तित्व को एक गंभीरता और गरिमा प्रदान करती थी। कुल मिलाकर वे एक सैनिक अधिकारी की भाँति चुस्त और रोबदार दिखाई देते थे। अपने आभिजात्य के वशीभूत मॉर्गन घोड़े पर सवार होकर विद्यालय जाया करते थे। टॉमस हंट मॉर्गन सदैव एक सुसंस्कृत और शालीन व्यक्ति की भाँति धीमे स्वर में बोलते थे, परंतु टेनिस के मैदान में उनका फुर्तीलापन आश्चर्यचकित कर देता था।

टॉमस ने पुराने केंटुकी एग्रीकल्चरल एण्ड माइनिंग कॉलेज से शिक्षा प्राप्त की। केंटुकी का वह स्टेट कॉलेज आज यूनिवर्सिटी ऑफ़ केंटुकी के नाम से जाना जाता है। यहीं 1886 में बीस वर्ष की आयु में मॉर्गन को स्नातक की उपाधि प्राप्त हुई। अपने पूर्व के महान वैज्ञानिकों डार्विन और मेण्डेल आदि की भाँति मार्गन भी प्राकृतिक इतिहास (नेचुरल हिस्ट्री) के विषय में विशेष रुचि रखते थे। अपनी इसी विशेष अभिरुचि के कारण वे प्रतिवर्ष ग्रीष्मकाल में यू. एस. ए. के भूसर्वेक्षण विभाग में कार्य किया करते थे। एक वर्ष का ग्रीष्मकाल तो उन्होंने मैसाचूसेट्स स्थित एनिसक्वैम (Anisquam) के समुद्री जीव विज्ञान विद्यालय में बिताया। तत्पश्चात उन्होंने नवस्थापित जॉन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय से प्राणिविज्ञान विषय लेकर स्नातक की शिक्षा प्रारंभ की। सौभाग्य से यह विश्वविद्यालय शोध कार्यों को प्रोत्साहन देने वाला प्रथम संस्थान था। उन्होंने दो वर्षों तक आकारिकी वैज्ञानिक विलियम कीथ ब्रुक्स के साथ कार्य करके अनेक शोधपत्र प्रकाशित करवाये। अपने इसी प्रयास और प्रतिभा के फलस्वरूप 1888 में मॉर्गन को स्टेट कॉलेज ऑफ़ केंटुकी ने स्नातकोत्तर की उपाधि प्रदान की।

आगे की उच्च शिक्षा के लिए मॉर्गन की किसी अन्य कॉलेज में जाने की योजना थी पर उसके पूर्व ही केंटुकी कॉलेज के अधिकारियों ने उन्हें सहायक प्रोफेसर का पद प्रदान करना चाहा। अपने शोध का क्रम टूटने न पाये इस दृष्टि से मॉर्गन ने जॉन हॉपकिन्स में ही रुकने का निर्णय ले लिया। मॉर्गन का यह निर्णय बहुत उचित रहा क्योंकि कॉलेज ने उन्हें अपने शोध कार्यों के लिए एक बड़ी धनराशि भी प्रदान की। इस सुअवसर का लाभ उठाते हुए मॉर्गन ने अपने शोध कार्यों की प्रगति के लिए जमैका, बहामा और युरोप की यात्रायें कीं तथा शोध विषयक प्रचुर सामग्री और अनुभव अर्जित किए। यहीं ब्रुक्स के निर्देशन में मॉर्गन ने 1989– 90 के ग्रीष्मकाल में वुड्स होल (मैसाचूसेट्स) के समुद्री जीव विज्ञान से एकत्र की गई समुद्री मकड़ियों (सी स्पाइडर्स) के भ्रूण वैज्ञानिक अध्ययन पर अपना शोध प्रबंध प्रस्तुत

किया। इसमें उन्होंने समुद्री मकड़ियों का अन्य संधिपाद संघ (आर्थोपॉड) के कीटों के साथ जातिवृत्तीय (फाइलोजेनेटिक) संबंध सुनिश्चित करने का प्रयास किया। उनका निष्कर्ष था कि ये भ्रूण विज्ञान की दृष्टि से क्रस्टेशियन्स के अधिक निकट हैं। इसी विशेष कार्य के आधार पर उन्हें 1890 में जॉन हॉपकिन्स कॉलेज से प्राणि विज्ञान में शोध उपाधि (पी.एच.डी) प्राप्त हुई।

अपने शोध के लिए उनकी प्रतिबद्धता इतनी अधिक थी, कि वे लगभग हर वर्ष ग्रीष्मकाल में समुद्री जीव विज्ञान प्रयोगशाला की यात्रा किया करते थे और आगे चलकर तो उस संस्था से उनका इतना लगाव हो गया था कि लगभग 50 वर्षों (1897–1945) तक वे उसके न्यासी बने रहे।

1890 में जब मॉर्गन को जॉन हॉपकिन्स की सहयोगी संस्था ब्रायन मॉर कॉलेज (Bryan Mawr College) में नियुक्ति मिली तो वे वहां आकारिकी (Morphology) से संबंधित सभी उपशाखाओं का अध्ययन करते थे। कक्षा में अपने जीव वैज्ञानिक व्याख्यानों में मॉर्गन अपने शोध के प्रमुख बिन्दुओं को भी समाहित कर लिया करते थे। जहाँ अन्य अध्यापकगण अपने विषय विशेष तक सीमित रहते थे, वहाँ मॉर्गन नये नये शोध संबंधी विचारों के संबंध में परिकल्पना करते रहते थे। इन अर्थों में वे एक स्वप्नद्रष्टा शोधकर्मी थे। एक ऐसे शोधकर्मी जो अपने स्वप्नों को साकार करने की क्षमता भी रखते थे। वे अपने अध्यापन के दायित्व का निर्वाह पूरे उत्साह से करते थे पर उनका हृदय अपनी प्रयोगशाला में ही रमता था। अध्यापकीय जीवन के प्रारंभिक वर्षों में तो मॉर्गन ने 'सी एकॉर्न' एसिडियन वर्म्स तथा मेंढकों पर बड़े–बड़े काव्यात्मक निबंध भी तैयार किए।

1894 में मॉर्गन को नेपल्स की स्टैज़िआन जुलॉजिका प्रयोगशाला में शोध का अवसर प्राप्त हुआ। इस अवसर ने उन्हें प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक हैन्स ड्रीश (Hans Driesch) के साथ कार्य करने का एक दुर्लभ संयोग प्रदान किया। उन्हीं के विकास संबंधी कार्यों ने मॉर्गन के मस्तिष्क में उस विषय में विशेष कार्य करने की रुचि जगा दी। यहीं एक अन्य वैज्ञानिक जैक्स लोएब (Jacques Loeb) की सहायता से उनका सम्पर्क स्कूल ऑफ़ एक्सपेरीमेंटल बायोलॉजी से हो गया। यह विचारधारा पूर्ववर्ती नैचुरोफिलासोफी की पारंपारिक सोच से बिल्कुल अलग थी। इससे प्रभावित होकर अब मॉर्गन ने भी अपने शोध कार्यों की दिशा को पारंपारिक वर्णनात्मक आकारिकी के प्रचलित मार्ग की ओर से बदलकर प्रयोगात्मक

भ्रूणविज्ञान की ओर मोड़ दिया। आकारिकी के इस पक्ष में अंगों के विकास के भौतिक और रासायनिक व्याख्याओं की आवश्यकता होती है। 1895 में ब्रायन मॉर कॉलेज में वापस लौटने पर मॉर्गन को सहायक प्रोफेसर के पद से पदोन्नत करके प्रोफेसर बना दिया गया।

वास्तव में प्रारंभ में मॉर्गन डार्विन के विचारों से सहमत नहीं थे। उनका विचार था कि प्रजातियाँ सीधे (आउट राइट) ही बनती हैं। वे आनुवंशिकता पर भी विश्वास नहीं करते थे पर बीसवीं सदी के प्रारंभ में जब मेण्डेल के कार्यों पर पुनर्विचार होने लगा तो अपने विषय से संबंधित चर्चा होने के कारण मॉर्गन बलात् उधर आकर्षित हुए। एक दृष्टि से कहा जाए तो मॉर्गन जैसे आनुवंशिकीविद् के पैदा होने के लिए वह समय बहुत अनुकूल था।

बीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में जब धीरे धीरे मॉर्गन प्रौढ़ावस्था की ओर बढ़ रहे थे तो उस समय बड़ी जोरशोर से बहसें हो रही थीं कि आखिर एक भ्रूण विकसित किस तरह होता है। मॉर्गन का विचार था कि विकास उन पश्चजात कारकों (Epigenetic Factors) के कारण होता है जिसमें प्रोटोप्लास्ट और अंडाणु के न्यूक्लिअस के मध्य अंतरक्रियायें होती है। उनकी यह भी मान्यता थी कि वातावरण विकास को प्रभावित कर सकता है। ड्रीश के सहयोग से किया गया उनका यह कार्य यह दिखाने में सक्षम था कि सी–अर्चिन (Sea urchin) से विलगित किए गए ब्लास्टोमीयर्स (blastomeres) को टीनोफ़ोर नामक अंडाणु एक संम्पूर्ण लार्वा में विकसित कर सकतें हैं। मॉर्गन ने यह भी प्रदर्शित किया कि सी–अर्चिन के अंडाणु बिना निषेचन के मैग्नेशियम क्लोराइड नामक रसायन के द्वारा भी विभाजन कर सकते हैं। उनके मिस्र लोएब ने इस नवीनतम जानकारी का प्रयोग करके पितृविहीन मेंढकों के निर्माण में सफलता पाई और अपार ख्याति अर्जित की।

अब तक मॉर्गन के शोध कार्य की मुख्य धारा पुनर्जनन तथा लार्वा के विकास की ओर मुड़ चली थी। उन्हीं दिनों उनकी पुस्तक 'डेवलेपमेंट ऑफ़ द फ्रॉग्स एग' (1897) प्रकाशित हुई। उनका शोध कार्य मुख्य रूप से विभिन्न जीवों की पुनर्जनन क्षमता के संबंध में था। 1901 में उन्होंने अपना शोधकार्य 'रीजेनरेशन' (पुनर्जनन) के नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित करवाया।

सन् 1900 से ही मॉर्गन ने लिंग निर्धारण पर विचार करना शुरू कर दिया था। परन्तु

साथ ही साथ विकासवादी समस्याओं पर भी उनका कार्य समान्तर रूप से चल रहा था। क्योंकि प्रारंभ से ही उनका ध्यान उधर ही केन्द्रित रहा था।

अपने शोधकार्यों की इन सारी व्यस्तताओं के मध्य ही मॉर्गन ने 1904 में अपनी एक शिष्या मिस लिलियन सैम्पसन से विवाह किया। इस वैवाहिक संयोग से उन्हें पत्नी के साथ–साथ एक अत्यंत समर्पित और कुशल शोध सहायक भी प्राप्त हुई। उनकी पत्नी ने प्रारंभिक कुछ वर्षों को छोड़कर (जब वे अपने चार बच्चों के लालन–पालन में अधिक व्यस्त रहीं) बड़ी निष्ठापूर्वक अपने पति का प्रयोगशाला के शोधकार्यों में साथ दिया।

1904 में उनके विवाह वाले वर्ष ही मॉर्गन अपने मित्र ई. वी. विलसन के आमंत्रण पर कोलम्बिया विश्वविद्यालय में स्थानांतरित हो गए। इस स्थान परिवर्तन ने मॉर्गन को अपनी इच्छानुसार शोध कार्य करने की पूरी स्वतंत्रता दे दी।

इस समय मॉर्गन वंशानुक्रम और विकास की प्रक्रिया की समस्या पर विशेष रूप से कार्य कर रहे थे। इस कार्य की परिणति थी उनकी पुस्तक 'इवोल्यूशन एण्ड ऐडप्टेशन'।

मॉर्गन को विकासवाद की अवधारणा में तो विश्वास था पर डार्विन द्वारा स्थापित प्राकृतिक चयन के सिद्धान्त के वे विरुद्ध थे। परन्तु उस पर विश्वास न होते हुए भी मेण्डेल के प्रभाव से मॉर्गन के वंशानुक्रम और विभिन्नता के सिद्धान्तों में परिवर्तन हो रहे थे। मॉर्गन ने डार्विन और लामार्क दोनों के सिद्धान्तों को नकारते हुए डी व्रीज के उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) के सिद्धान्त को अपने वंशानुक्रम संबंधी शोध का आधार बनाया। उस समय तक यह स्थापित हो गया था कि आनुवंशिक लक्षणों को एक पीढ़ी से दुसरी पीढ़ी में ले जाने का कार्य गुणसूत्र (क्रोमोसोम) करते है।

वैज्ञानिक इतिहास की दृष्टि से देखें तो यह विज्ञान के विकास का वह समय था जब बौद्धिक परिवेश में नए विचार, रुचि और नई तकनीकों की आवश्यकता थी।

मॉर्गन ने अपने शोधकार्य के लिए जिस प्राणी का चुनाव किया वह थी फलमक्खी (फ्रूट फ्लाई) जिसे विज्ञान जगत ड्रोसोफिला मेलैनोगास्टर के नाम से जानता है। वस्तुतः इस

मक्खी की प्रजनन दर मनुष्यों की अपेक्षा आठ सौ गुना तेज़ होती है। 1908 में मॉर्गन ने फरनेन्डस पेन (Fernandus Paayne) के साथ मिलकर उस विषय पर शोध कार्य आरंभ कर दिया। मॉर्गन और पेन के संयुक्त प्रयास ने रासायनिक, भौतिक प्रभावों और विकिरण की सहायता से ड्रोसोफिला में उत्परिवर्तन पैदा करने में सफलता पाई। वंशागत उत्परिवर्तन (इनहेरिटेड म्यूटेशन) प्राप्त करने के लिए उन्होंने संकरणों (क्रासेज) के प्रयोग प्रारंभ किए किंतु प्रारंभिक दो वर्षों तक उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। आगे चलकर 1909 में शनैः शनैः अनेक वंशागत उत्परिवर्तन दिखाई देने लगे। मॉर्गन ने जिस फलमक्खी का चुनाव अपने शोध के लिए किया वह एक भूरी, लाल आँखों, काले पेट तथा केले पर चलने वाली छोटी मक्खी थी। जहाँ इस मक्खी की प्रजनन दर मनुष्यों की अपेक्षा आठ गुना अधिक थी वहीं गणना से ज्ञात हुआ कि इस फलमक्खी के गुणसूत्र में केवल 14,380 जीन थे। विशेष बात यह थी कि फलमक्खियों के ये गुणसूत्र मनुष्यों के गुणसूत्रों की तुलना में बहुत बड़े होते है जिससे शोधकर्ताओं का कार्य अपेक्षाकृत सरल हो जाता है। 1910 में प्रथम बार मॉर्गन को लाल रंग की आँखों वाली जंगली प्रजाति में एक सफेद आँखों वाली नर मक्खी देखने को मिली। अब इस सफेद आँखों वाली मक्खी का लाल आँखों वाली मक्खीयों के साथ प्रजनन कराने पर उनकी सभी संताने लाल रंग की आँखों वाली पैदा हुई जो एक लिंग सहलग्नी (सेक्सलिंक्ड) अप्रभावी लक्षण (Sex linked recessive character) था। मॉर्गन ने इस जीन का नामकरण किया 'व्हाइट'। वस्तुतः इस फलमक्खी का महत्व मॉर्गन के लिए वैसा ही सिद्ध हुआ जैसा मेण्डेल के लिए स्वीट पी का था। इन ड्रोसोफिला मक्खियों की लार ग्रंथियों में उनके गुणसूत्रों को आसानी से देखा जा सकता था। लार ग्रंथियों के इन गुणसूत्रों में 500 क्रमबद्ध और व्यवस्थित जीन पाये गये। मॉर्गन ने इनका मानचित्रण करने में बड़ी सफलता पाई।

मॉर्गन ने एक गुलाबी रंग के उत्परिवर्ती (म्यूटेंट) को भी ढूँढ़ा जो वंशानुक्रम का एक भिन्न तरीका प्रस्तुत कर रहा था। 'साइंस' नामक प्रख्यात शोध पत्रिका में प्रकाशित अपने शोधपत्र में मॉर्गन ने अपने द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को इस प्रकार प्रदर्शित किया –

1. कुछ लक्षण लिंग सहलग्नी थे।
2. यह लक्षण संभवतः किसी लिंग के गुणसूत्रों द्वारा वहन किए जाते हैं।
3. अन्य जीन कुछ अन्य विशिष्ट गुणसूत्रों द्वारा वहन किए जाते हैं।

इस प्रकार मॉर्गन ने यह सिद्ध कर दिया कि फलमक्खी में वंशानुक्रम या उत्तराधिकार

से प्राप्त अनेक लक्षणों में परिवर्तन, जीनों के पुनर्विन्यास से जुड़े होते हैं। उन्होंने यह भी दिखा दिया कि फल मक्खी की सामान्य लाल आँखों को बैंगनी या भूरे रंग की आखों में बदला जा सकता है। साथ ही यह कि उनके पंखों के आकार और रंग भी परिवर्तित किए जा सकते हैं। अत्यधिक संख्या में फल मक्खियों के प्रजनन से मॉर्गन ने बहुसंख्यक जीनों को उसी प्रकार मिश्रित किया जिस प्रकार एक गणितज्ञ संकेतों (सिम्बल्स) और अक्षरों को जोड़कर भिन्न अर्थ उत्पन्न करता है। मॉर्गन के द्वारा इस कार्य के आधार पर कुछ नियमों की स्थापना की गई। ये नियम यह तय करते हैं कि जीन किस तरह से जुड़ेंगे, किस कड़ी में जुड़ेंगे या अलग होंगे। मॉर्गन का यह कार्य इतना उपयोगी था कि बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में उसी के आधार पर आधुनिक आनुवंशिकी (जेनेटिक्स) की सुदृढ़ नींव का निर्माण हुआ। आनुवंशिक विज्ञान को बेतरतीबी से निकाल कर गणितीय व्यवस्था प्रदान करने का श्रेय मॉर्गन को जाता है।

1915 में मॉर्गन, स्टर्टवेन्ट (Sturtevant), कैल्विन ब्रिजेज़ (Calvin Bridges) और एच. जे. मुलर (H. J. Muller) ने 'द मेकेनिज्म ऑफ़ मेंडेलियन हेरेडिटी' नामक सारगर्भित पुस्तक लिखी जो आधुनिक आनुवंशिकी का मूलाधार है।

1916 में प्रकाशित अपने एक लेख (शोधपत्र) 'ए क्रिटिक ऑफ़ थ्योरी ऑफ़ इव्योल्यूशन' में मॉर्गन ने संस्करण सिद्धांत की व्याख्या की। मॉर्गन और उनके शिष्यों ने उत्परिवर्तित फलमक्खियों पर जारी अपने शोध में अनेक उत्परिवर्तियों की खोज की। इनका उपयोग उन्होंने जटिल वंशानुगत पैटर्न का अध्ययन करने के लिए किया।

तत्कालीन एक अन्य वैज्ञानिक सी. एच. वैडिन्गटन (C. H. Waddington) ने मॉर्गन के गूणसूत्रों के सिद्धान्त की तुलना मानव सभ्यता के इतिहास में न्यूटन और गैलीलियो की उस क्रान्तिकारी छलाँग से की है जिसने पूरे बौद्धिक जगत् का परिदृश्य ही बदल कर रख दिया।

मॉर्गन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) से संबंधित है। उत्परिवर्तन का अर्थ है गुणसूत्र अथवा जीन में परिवर्तन। म्यूटेशन (Mutation) शब्द सर्वप्रथम ह्यूगो डी व्रीज के द्वारा गढ़ा गया था। वस्तुतः उत्परिवर्तन को प्रकृति में स्वाभाविक

रूप से प्रकट होने में लंबा समय लगता है। कृत्रिम रूप से प्रेरित किया गया उत्परिवर्तन अपेक्षाकृत कम समय में प्रकट हो जाता है। उत्परिवर्तन आनुवंशिकता में बदलाव ला सकता है इसीलिए प्रजातियों (स्पीशीज़) पर इनका निर्णायक प्रभाव पड़ता है। मॉर्गन के साथ ही उनके शिष्य मुलर भी उत्परिवर्तन पर कार्य कर रहे थे और उन्होंने एक्स–रे (X-ray) की भारी मात्रा (एक घंटे तक) देकर बहुत कम समय में ही फलमक्खी में कुछ परिवर्तन प्राप्त कर लिए जिन्हें स्वाभाविक प्राकृतिक गति से प्राप्त करने में कम से कम 100 गुना अधिक समय लगता। इस प्रयोग ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि उत्परिवर्तन एक्स–रे की दी जा रही मात्रा का समानुपाती था। मॉर्गन के शोधों से यह भी ज्ञात हो गया था कि एक्स–रे जनित पर्यावरण का गुणसूत्रों और उनके जीनों पर क्या प्रभाव पड़ता है। एक आशा जन्म ले चुकी थी कि यदि ड्रोसोफिला की लाल आँखों को सफेद किया जा सकता है तो मनुष्यों में भी यह परिवर्तन लाना संभव है। मॉर्गन ने लामार्क की जो विवादित अवधारणा थी कि अर्जित (एक्वायर्ड) लक्षण उत्तराधिकार में प्राप्त किए जा सकते हैं उसका खण्डन किया।

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है मॉर्गन प्रारंभ में डार्विनवाद के विरोधी थे और जब उनकी 'इवोल्यूशन एण्ड एडेप्टेशन' (विकास एवं अनुकूलन) नामक पुस्तक प्रकाशित हुई तो उन्होंने डार्विन का विरोधी पक्ष लेकर यह स्थापित करने का प्रयास किया कि छोटे छोटे गुणों के प्राकृतिक चयन से कभी एक पूर्णतः नई प्रजाति नहीं उत्पन्न हो सकती। डार्विन के लैंगिक चयन के सिद्धान्त के साथ साथ उन्होंने नव लामार्कवाद द्वारा स्थापित किए जाने वाले अर्जित गुणों की वंशागति (इनहेरिटेंस) के सिद्धान्त को भी नकार दिया। जब मॉर्गन ने अपने शोधों के दौरान यह देखा कि ड्रोसोफिला में कुछ छोटे छोटे स्थाई उत्परिवर्तन प्राप्त हुए तब शनैः शनैः उनका मत बदलने लगा।

विकास के संबंध में उत्परिवर्तन की प्रासंगिकता यह है कि केवल वही गुण जो वंशागति से प्राप्त होते हैं, ही विकास को प्रभावित कर सकते हैं। अपने शोधों ने मॉर्गन को उस विशेष बिन्दु पर पहुँचा दिया था कि वे डार्विन के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कर सकें। आगे चलकर मेण्डेल के आनुवंशिकता के सिद्धान्त और गुणसूत्रों के आधार पर मॉर्गन ने यह निष्कर्ष निकाला कि इस बात के पर्याप्त साक्ष्य हैं कि जैसा मेण्डेल का नियम कहता है– वन्य प्राणियों और पौधों तथा घरेलू जीवों और पौधों दोनों में ही गुण वंशानुक्रम से अगली पीढ़ी में स्थानान्तरित होते हैं। उनकी यह स्थापना थी कि विकास के क्रम में जातियों में उन्हीं

उत्परिवर्तनों का समावेश होता है जो जातियों के जीवन और प्रजनन के लिए लाभकारी होते हैं। इस प्रकार शनैः शनैः विकासवाद को पूर्णतः नकारने के स्थान पर मॉर्गन ने वंशानुक्रम विज्ञान की नींव रखी। वस्तुतः मॉर्गन ने विकास की प्रक्रिया अथवा प्राकृतिक चयन (नेचुरल सिलेक्शन) के हेतु एक सैद्धान्तिक आधार प्रस्तुत करने का महान कार्य किया था।

मॉर्गन के प्राकृतिक चयन के सिद्धान्त को सिद्ध करने के लिए वंशानुक्रम विज्ञान ने एक आधार स्तम्भ का कार्य किया। डार्विन अपने समय में वंशानुक्रमण की सैद्धान्तिक रूपरेखा नहीं प्रस्तुत कर सके थे और दुर्भाग्य से डार्विनवाद आनुवंशिकी के बिना प्रगति नहीं कर सकता था। मॉर्गन ने 'नवडार्विनवाद' (नियोडार्विनिज्म) को बड़ा सुदृढ़ आधार प्रस्तुत करने का अभूतपूर्व कार्य किया, जबकि आरंभ में वे स्वयं डार्विनवाद के विरोधी रह चुके थे।

बाद के वर्षों में मॉर्गन ड्रोसोफिला पर हो रहे शोधकार्य को अपने छात्रों को सौंपकर स्वयं भ्रूण विज्ञान की ओर लौट गए। 1927 में कोलम्बिया में अपने जीवन के 25 वर्ष बिता कर सेवानिवृत्ति के निकट पहुँचे मॉर्गन ने एक नया आमंत्रण स्वीकार करके कैलिफोर्निया स्थित कैल्टेक नामक संस्थान में जाने का निर्णय ले लिया। यहाँ 1928 में उन्होंने 'कैलिफोर्निया इन्स्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलोजी' में एक जीव विज्ञान विभाग की स्थापना की और उसके प्रमुख के पद पर प्रतिष्ठित किए गए। शोधकार्य को आगे बढ़ाने और उसके लिए सर्वोत्तम सहयोगियों को चुनने के क्रम में उन्होंने ब्रिजेज़, स्टर्टवेन्ट, जैक शुल्ट्ज और एलबर्ट टाइलर जैसे अपने पुराने सहयोगियों को कैलिफोर्निया बुला लिया। थियोडोरियस डॉबजान्स्फी, जार्ज बीडेल, लाइनस पॉलिंग और सिडनी फॉक्स जैसे अन्य कुछ प्रख्यात शोधकर्मी भी मॉर्गन की उस नई प्रयोगशाला से जुड़ गए।

अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप मॉर्गन ने अमेरिकी संस्थानों में अनेक सम्मानजनक पदों को सुशोभित किया। 1927 से 1937 तक वे 'नेशनल एकेडमी ऑफ़ साइंस' के अध्यक्ष बनाए गए तथा 1930 में उन्हें 'अमेरिकन एसोसिएशन फॉर द डेवलेपमेंट ऑफ़ साइंस' के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित किया गया। पुनः 1932 में उन्हें 'इण्टरनेशनल कांग्रेस ऑफ़ जेनेटिक्स' (इथाका) का अध्यक्ष मनोनीत किया गया। सम्मानों के सर्वोच्च शिखर पर मॉर्गन 1933 में पहुँचे जब उन्हें गुणसूत्रों (यूजिनिक फंक्शन्स) पर किए गए अपने कार्य पर विश्व का उच्चतम 'नोबेल पुरस्कार' प्रदान किया गया। इससे पूर्व 1919 और 1930 में भी उनका

नाम 'नोबेल पुरस्कार' की सूची में मनोनीत किया गया था पर उस बार सहमति नहीं बन सकी थी।

इस अवसर पर मॉर्गन ने यह सिद्ध कर दिया कि वे एक श्रेष्ठ वैज्ञानिक के साथ साथ एक श्रेष्ठ मानव भी थे। उन्होंने बड़ी सदाशयता से यह स्वीकार किया कि उनका कार्य अकेले का नहीं बल्कि पूरे सहयोगी दल की सहायता से संभव हुआ था और उन्होंने पुरस्कार की सम्पूर्ण धनराशि ब्रिजेज़, स्टर्टवेन्ट और स्वयं अपनी संतानों के मध्य बाँट दी। 1939 में उन्हें 'रॉयल सोसाइटी' ने कांपल (Comple) पदक से भी अलंकृत किया।

पद पर बने रहने के अनेक आग्रहों के बाद भी अंततः मॉर्गन ने 1942 में सेवानिवृत्ति ले ली। सेवानिवृत्ति के बाद वे संस्थान के चेयरमैन और प्रोफेसर एमिरिटस बने रहे।

औपचारिक सेवा निवृत्ति के बाद भी मॉर्गन ने कार्य से अवकाश नहीं लिया था। वे निरंतर लिंग निर्धारण, पुनर्जनन और भ्रूण विज्ञान की नई नई समस्याओं पर कार्य करते रहे। अत्यंत कार्यव्यस्तता के कारण मॉर्गन को जीवनभर आंत्र व्रण (पेट के अल्सर) के कष्ट से जूझना पड़ा था। 79 वर्ष की आयु में 4 दिसम्बर 1945 को एक कठिन हृदयाघात ने उनके प्राण ले लिए।

मॉर्गन ने अपने जीवन में 22 पुस्तकें और 370 शोधपत्र प्रकाशित करवाये। उनके कार्यों के ही फलस्वरूप ड्रोसोफिला आनुवंशिकी के अध्ययन का एक प्रमुख आधार बन गई उनके द्वारा 'कैलिफोर्निया इन्स्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलोजी' में स्थापित किए गए जीव विज्ञान विभाग ने कालांतर में 7 'नोबेल पुरस्कार' विजेताओं को जन्म दिया।

मॉर्गन के जीवन के प्रारंभिक वर्षों से संबंध रखने वाली संस्था जॉन हॉपकिन्स द्वारा मॉर्गन को एल.एल.डी. की मानद उपाधि से तथा केन्टुकी विश्वविद्यालय द्वारा मानद पीएच.डी की उपाधि से अलंकृत किया गया। 'रॉयल सोसाइटी' ने उन्हें अपनी संस्था के एक विदेशी सदस्य के रूप में सम्मान दिया। 1924 में मॉर्गन को 'डार्विन पदक' भी प्रदान किया गया था।

HBCSE

मॉर्गन के सम्मानार्थ केन्टुकी विश्वविद्यालय ने अपने जीव विज्ञान विभाग का नामकरण 'टॉमस हंट मॉर्गन स्कूल ऑफ़ बायोलोजिकल साइन्सेज' के रूप में किया। अमेरिका स्थित 'जेनेटिक्स सोसाइटी ऑफ़ अमेरिका' उनकी स्मृति में प्रतिवर्ष टॉमस हंट मॉर्गन नामक पदक प्रदान करता है। अभी ढाई दशक पूर्व स्वीडेन ने उनकी स्मृति में एक डाक टिकट जारी किया जिसमें मॉर्गन कुछ अन्य 'नोबेल पुरस्कार' विजेता आनुवंशिकीविदों के साथ दर्शाये गए हैं।

एक आनुवंशिकीविद् के रूप में मॉर्गन ने जीवविज्ञान के क्षेत्र में आविष्कारों का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। जीव विज्ञान के क्षेत्र में उनके कार्यों का महत्व परमाणुवीय भौतिक विज्ञान के समकक्ष ही माना गया है। उनकी मृत्यु पर 'न्यूयॉर्क टाइम्स' ने लिखा था– "उनका जीवन इस तथ्य का उदाहरण है कि 'प्रयोग और निरीक्षण' से किस कोटि की उपलब्धि प्राप्त की जा सकती है।"

➢ 'अनुकम्पा', वाई 2 सी
115/6, त्रिवेणीपुरम्, झूँसी
इलाहाबाद – 211 019, उ. प्र.
मो. – 09451051033

HBCSE

कोलॉइड : संरचना एवं अनुप्रयोग

■ डॉ. मनु सिकरवार

थॉमस ग्राहम (1861) ने पदार्थों के विसरित होने की क्षमता के आधार पर निम्न दो वर्ग बनाए :-

1. क्रिस्टलाभ
2. कोलॉइड

क्रिस्टलाभ

जिन पदार्थों के जलीय विलयन जातंव झिल्ली अथवा पार्चमेंट पत्र में से शीघ्रता से विसरित हो जाते है, उन्हें क्रिस्टलाभ कहते हैं।

उदाहरण- शक्कर, युरिया, सोडियम क्लोराइड, क्षार आदि के जलीय विलयन। इन पदार्थ को क्रिस्टलाभ इसीलिए कहा गया क्योंकि ये पदार्थ ठोस अवस्था में प्रायः क्रिस्टलीय रूप में होते हैं।

कोलॉइडी विलयन

जिन पदार्थों के जलीय विलयन जातंव झिल्ली अथवा पार्चमेंट पत्र में से नहीं हो सकते अथवा धीरे-धीरे विसरित होते हैं, उन्हें कोलॉइडी विलयन कहते हैं।

उदाहरण- स्टार्च, जिलेटिन, गोंद आदि।

प्रेक्षणों से ज्ञात हुआ कि यह वर्गीकरण उचित नहीं है क्योंकि अलग-अलग प्रायोगिक परिस्थितियों में एक ही पदार्थ क्रिस्टलाभ और कोलॉइड दोनों के समान व्यवहार प्रदर्शित कर सकता है। उदाहरण के लिए सोडियम क्लोराइड जल में हो तो क्रिस्टलाभ है परन्तु ऐल्कोहोल या बेन्जीन में घोलने पर कोलॉइड की भाँति व्यवहार करता है। प्रयोगों से स्पष्ट है कि उचित प्रायोगिक परिस्थितियों में सभी पदार्थों के कोलॉइडी विलयन बनाए जा सकते हैं। इस प्रकार एक ही पदार्थ के लिए दोनों अवस्थाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। अतः क्रिस्टलाभ तथा कोलॉइड दो विभिन्न अवस्थाएँ हैं, तथा वर्तमान समय में कोलॉइड के स्थान पर कोलॉइडी अवस्था का प्रयोग किया जा सकता है।

कणों के व्यास के आधार पर विलयनों को निम्न तीन भागों में विभाजित किया गया है :

(1) **वास्तविक विलयन** :- समांग विलयन में विलायक तथा विलेय पदार्थों के कणों का व्यास लगभग समान होता है। विलेय पदार्थ के कणों का आकार लगभग 10^{-7} से.मी. से कम होता है। इन्हें अल्ट्रा सूक्ष्मदर्शी द्वारा भी नहीं देखा जा सकता। ये कण आयन अथवा अणु के रूप में उपस्थित रहते हैं। ये शीघ्रता से विसरित हो सकते हैं। ये टिन्डल प्रभाव प्रदर्शित नहीं करते हैं।

(2) **निलम्बन** :- जब किसी विलयन में उपस्थित विलेय पदार्थ के कणों का आकार लगभग 10^{-5} से.मी. से अधिक होता है तो इतना बड़ा आकार होने के कारण उन्हें आंखों से देखा जाना संभव है एवं गुरूत्वाकर्षण के कारण ये कण पात्र के पेंदे में बैठ जाते हैं। ऐसे निलम्बन की प्रकृति विषमांग होती है। ये साधारण फिल्टर पत्रों के छिद्रों में से बाहर नहीं निकल पाते हैं। ये टिन्डल प्रभाव प्रदर्शित नहीं करते हैं।

(3) **कोलॉइडी विलयन** :- यह एक विषमांगी विलयन होता है जिसमें विलेय पदार्थ के कणों का आकार (व्यास) 10^{-5} से.मी. से कम अथवा 10^{-7} से.मी. से अधिक होता है। इनके कणों का आकार दोनों (वास्तविक एवं निलंबन) के मध्यवर्ती होता है। इन कणों को आंखों से देखा जाना संभव नहीं होता परन्तु अल्ट्रा सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखा जा सकता है। चूँकि इनका आकार न तो बहुत अधिक होता है एवं न ही अत्यंत कम, अतः इनका आकार कम होने के कारण गुरूत्वाकर्षण के कारण ये कण पात्र के पेंदे पर एकत्रित नहीं होते व वास्तविक विलयनों के आकार से बड़े होने के कारण शीघ्रता से विसरित नहीं हो पाते हैं। ये टिन्डल प्रभाव प्रदर्शित करते हैं।

कोलॉइडी तंत्र

वास्तविक विलयन व निलम्बन की मध्य स्थिती को कोलॉइडी विलयन या कोलॉइडी निकाय कहते हैं। कोलॉइडी विलयन दो प्रावस्थाओं के विषमांग मिश्रण होते हैं, जिन्हें परिक्षित प्रावस्था एवं परिक्षेपण माध्यम कहते हैं।

उदाहरण : स्वर्ण (गोल्ड) के कोलॉइडी विलयन में स्वर्ण (गोल्ड) के कोलॉइडी कण परिक्षिप्त प्रावस्था तथा जल परिक्षेपण माध्यम के रूप में उपस्थित रहता है।

सारणी प्रथम – कोलॉइडी विलयनों के निकाय

परिक्षिप्त प्रावस्था	परिक्षेपण माध्यम	कोलॉइडी तंत्र	उदाहरण
गैस	द्रव	झाग या फेन	साबुण का झाग, फेनित–क्रीम, शेविंग क्रीम।
गैस	ठोस	ठोस फेन	झाँवा पत्थर, रबर, स्टाइरीन फोम, ब्रेड, कॉर्क, केक, सूखे समुद्री झाग।
द्रव	गैस	द्रव ऐरोसॉल	बादल, कुहरा, कुहासा, कीटनाशक दवा का छिड़काव।
द्रव	द्रव	पॉयस या इमल्शन	दूध, पॉयसीकृत तेल (जल तेल मिश्रण), बालों की क्रीम।
द्रव	ठोस	जैल या ठोस पॉयस	जैली, पनीर, मक्खन, दही, बूट पॉलिश, मलहम।
ठोस	गैस	ठोस ऐरोसॉल	धूआं, धूल आँधी, हवा में फायर।
ठोस	द्रव	सॉल	गोल्ड सॉल, फेरिक हायड्रॉक्साइड सॉल, आर्सेनियस सल्फाइड सॉल, पेन्ट, स्याही, कीचड़, गोंद, स्टार्च आदि के विलयन।
ठोस	ठोस	ठोस–सॉल	रूबी काँच, मोती, खनिज, रत्न, दूधियाँ पत्थर, मिश्र धातुएँ।

HBCSE

विभिन्न प्रकार के कोलॉइड

बहुआण्विक, वृहद् आण्विक तथा संगुणित कोलॉइड

(1) **बहुआण्विक कोलॉइड** :– ऐसे कण जिनका आकार 1mμ से कम हो, इस प्रकार के कोलॉइडी विलयनों में कोलॉइड कण जैसे परमाणुओं या अणुओं का पुँज होता है, बहुआण्विक कोलॉइड कहलाते हैं।

उदाहरणार्थ– स्वर्ण सॉल में कोलॉइडी कण स्वर्ण परमाणुओं के विभिन्न आकार के गुच्छ होते हैं।

(2) **वृहद् आण्विक कोलॉइड :–** ऐसे कण जिनका अणुभार उच्च होता है एवं कोलॉइडी विलयनों में कोलॉइडी कण स्वयं ही कोलॉइडी साइज के अणु होते हैं, वृहद् आण्विक कोलॉइड कहलाते हैं।

उदाहरणार्थ – प्राकृतिक वृहद् अणु स्टार्च, प्रोटीन एवं सैल्युलोस आदि।

(3) **संगुणित कोलॉइड :–** कुछ पदार्थों के कम सान्द्रता के विलयन सामान्य विद्युत अपघट्य की भाँति व्यवहार करते हैं। इन संगुणित कणों को मिसेल कहा जाता है।

उदाहरण– साबुण एवं अपमार्जक के इकट्ठा हुए अणुओं को मिसेल की श्रेणी में रखा जा सकता है। ये प्रबल विद्युत अपघट्य होते हैं जो जल में विलय करने पर आयनित हो जाते हैं। इनका एक सिरा ध्रुवीय होता है जो कि जल में विलय होता है जबकि दूसरा सिरा (लम्बा हाइड्रो कार्बन भाग) अध्रुवीय होता है जो कि जल में अविलेय होता है। मिसेल संरचना की उपस्थिती के कारण गंदगी एवं चिकनाई को आसानी से दूर किया जा सकता है। साबुण एवं अपमार्जक का ध्रुवीय भाग जल की ओर एवं अध्रुवीय भाग चिकनाई की तरफ रहता है। जिसको जल से धोने पर दूर किया जा सकता है।

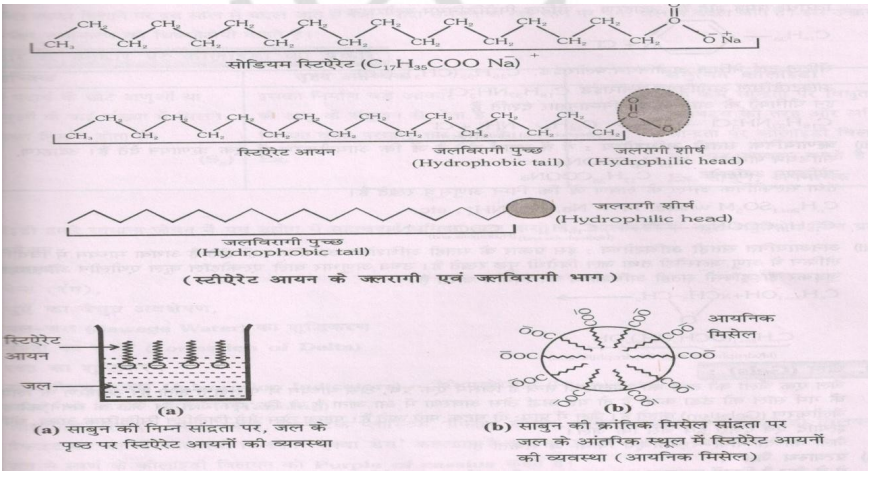

(a) साबुन की निम्न सांद्रता पर, जल के पृष्ठ पर स्टिऐरेट आयनों की व्यवस्था

(b) साबुन की क्रांतिक मिसेल सांद्रता पर जल के आंतरिक स्थूल में स्टिऐरेट आयनों की व्यवस्था (आयनिक मिसेल)

जैल

जैल को भी कोलॉइडी निकाय के श्रेणी में रखा जा सकता है जिसमें परिक्षेपण माध्यम एवं परिक्षित अवस्था द्रव होती है। जब जिलेटिन के गर्म सॉल को ठंडा करते हैं तो यह अर्ध ठोस अवस्था (जैली) में रुपान्तरित हो जाता है। जैल को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा

सकता है –

1. **प्रत्यास्थ जैल**

वे जैल जिन पर बल आरोपित करने के कारण आकार में परिवर्तन हो जाता है।

उदाहरण– साबुण, स्टार्च, जिलेटिन आदि।

2. अप्रत्यास्थ जैल

वे जेल जिनकी दृढ़ एवं मजबूत संरचना होती है, अप्रत्यास्थ जैल कहलाते हैं।

उदाहरण– सिलिका जैल को सोडियम सिलिकेट विलयन को सान्द्र हाईड्रोक्लोरिक अम्ल में मिलाकार प्राप्त करते हैं।

जैलो में जलयोजन, फूलना, प्रस्त्रवण (जल के निकलने पर सिकुड़ना) एवं थिक्सोट्रिपी (उत्क्रमण सॉल जैल रूपांतरण) आदि गुण होते हैं।

सारणी द्वितीय – द्रव विरोधी और द्रवस्नेही कोलॉइड की तुलना

क्र.सं	गुण	द्रवस्नेही कोलॉइड	द्रव विरोधी कोलॉइड
1.	बनाने की विधि	इन्हें परिक्षेपण माध्यम (विलायक) में विलेय को सीधे मिलाकर प्राप्त किया जाता है।	इन्हें परिक्षेपण माध्यम में विलेय को सीधे मिलाने से प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इन्हें विशिष्ट विधियों द्वारा बनाया जाता है।
2.	कणों का आकार	इनके अणु का आकार कोलॉइडी कणों के बराबर होता है	इसके कण कई अणुओं के मिलने से बनते हैं।
3.	विलायक संकरता	कण विलायक संकरित हो जाते हैं।	इसके कण कई अणुओं के मिलने पर बनते हैं।
4.	कोलॉइडी विलयन की प्रकृति	ये कोलॉइड उत्क्रमणीय प्रकृति के हैं।	ये कोलॉइड अनुत्क्रमणीय प्रकृति के हैं।
5.	स्थायित्व	इनमें स्थायित्व अधिक होता है।	इनमें अस्थायित्व होता है।

HBCSE

सारणी द्वितीय – द्रव विरोधी और द्रवस्नेही कोलॉइड की तुलना

क्र.सं	गुण	द्रवस्नेही कोलॉइड	द्रव विरोधी कोलॉइड
6.	विद्युत अपघट्यों का प्रभाव	विद्युत अपघट्य की मात्रा मिलाने पर अवक्षेपण हो जाता है।	विद्युत अपघट्य की थोड़ी–सी मात्रा मिलाने पर ही अवक्षेपण होता है।
7.	कणों का आवेश	इनमें कणों पर कोई आवेश नहीं होता या आवेश की बहुत कम मात्रा होती है।	कणों पर धन या ऋण आवेश होता है।
8.	विद्युत क्षेत्र में अधिगमन	कण कैथोड या ऐनोड की तरफ अभिगमन कर सकते हैं अथवा बिलकुल अभिगमन नहीं कर पाते हैं।	कणों की ऐनोड अथवा कैथोड की तरफ अभिगमन करने की प्रकृति होती है।
9.	श्यानता	इनकी श्यानता परिक्षेपण माध्यम की श्यानता से अधिक होती है।	इनकी श्यानता परिक्षेपण माध्यम की श्यानता से लगभग बराबर होती है।
10.	पृष्ठ तनाव	इनके पृष्ठ तनाव का मान परिक्षेपण माध्यम के पृष्ठ तनाव से कम होता है।	इनका पृष्ठ तनाव परिक्षेपण माध्यम के लगभग समान होता है।
11.	अणुसंख्य गुण	परासरणदाब–उच्च हिमांक में अवनमन–उच्च, वाष्प दाब में अवनमन–उच्च होता है।	परासरणदाब–निम्न, हिमांक में अवनमन–निम्न वाष्प दाब अवनमन–निम्न होता है।
12.	दृश्यता	कणों को अतिसूक्ष्मदर्शी द्वारा नहीं देखा जा सकता है।	कणों को अतिसूक्ष्मदर्शी द्वारा देखा जा सकता है।
13.	उदाहरण	द्रवस्नेही कोलॉइड जिलेटिन , गोंद, स्टार्च, ग्लू आदि।	द्रव विरोधी कोलॉइड धातुएँ, धातु सल्फाइड, धातु हाइड्रॉक्साइड, सॉल आदि।

HBCSE

कोलॉइडी विलयनों का शुद्धिकरण

कोलॉइडी विलयनों में कुछ विद्युत अपघट्य पदार्थ तथा विलेय की अशुद्धियाँ रहती हैं। इन्हें पृथक करने के लिए निम्न विधियाँ प्रयुक्त करते हैं –

i. **अपोहन** – किसी क्रिस्टलाभ को झिल्ली अथवा चर्म पत्र से विसरण द्वारा कोलॉइड से पृथक करने के प्रक्रम को ग्राहम ने अपोहन नाम दिया। इसमें अशुद्ध कोलॉइडी विलयन को जांतव झिल्ली वाले थैले में भरकर जल से भरे पात्र में डूबा दिया जाता है। आयनिक अशुद्धियाँ धीरे–धीरे जल में विसरित हो जाती है।

ii. विद्युत अपोहन – इस प्रक्रिया में विद्युत क्षेत्र के प्रभाव में अपोहन करते हैं। जल के पात्र में पारगम्य झिल्ली वाले थैले के दोनों ओर दो इलेक्ट्रोड ऋणाग्र तथा धनाग्र लगा देते हैं। जब दोनों इलेक्ट्रोडों के बीच विभवान्तर लगाते हैं तो थैले में भरे हुए कोलॉइडी विलयन में उपस्थित आयन विपरीत आवेशित इलेक्ट्रोडों की ओर तेजी से अभिगमन करते हैं और उनके विसरण की गति बढ़ जाती है। इस प्रक्रिया को विद्युत अपोहन कहते हैं।

कोलॉइडी विलयनों के गुणधर्म

(1) **स्थायित्व** – सामान्यतया कोलॉइडी विलयन की विषमांग प्रकृति होती है। इनके कण अनिश्चित काल तक विलयन में निलम्बित रहते है और पैंदे में एकत्रित नहीं होते हैं।

(2) **विषमांग प्रकृति** – कोलॉइडी विलयन विषमांग प्रकृति के होते हैं जिनमें दो प्रावस्थाओं का अस्तित्व होता है। चूंकि परिक्षेपण माध्यम में परिक्षिप्त प्रावस्था के कण निलम्बित रहते हैं, अतः कोलॉइडी विलयन द्वि–प्रावस्था तंत्र है।

(3) **निस्पंदनता** – कोलॉइड कण फिल्टर पत्र में से तो निकल जाते हैं परन्तु चर्म पत्र या जांतव झिल्ली से नहीं निकल पाते हैं।

(4) **संख्यात्मक गुण** – कोलॉइडी कणों का मध्य अणुभार उच्च होने के कारण इनका परासरण दाब बहुत कम होता है।

HBCSE

(5) **गतिकीय गुण (ब्राउनी गति)** – रॉबर्ट ब्राउन ने अतिसूक्ष्मदर्शी द्वारा देखने पर यह पाया कि परिक्षिप्त कोलॉइडी कण परिक्षेपण माध्यम में लगातार अनियमित रूप में टेढ़े–मेढ़े मार्ग में चलते रहते हैं। यह अनियमित गति ब्राउनी गति कहलाती है। यह गुण प्रत्येक कोलॉइडी विलयन का गुण है। इससे कोलॉइडी कणों का पथ परिवर्तित होता जाता है और वे बेतरतीब (Zig–zag) ढ़ंग से गति करते जाते हैं।

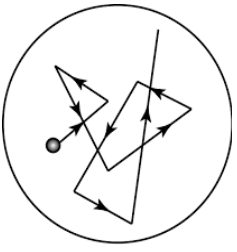

ब्राउनी गति

उदाहरणार्थ – सिनेमा हॉल में प्रकाश की पुंज में धूल के कण बेतरतीब रूप से घूमते रहते हैं।

(6) **प्रकाशिक गुण (टिन्डल प्रभाव) –** सन् 1968 में टिन्डल ने पाया कि यदि एक तीव्र प्रकाश पुंज को किसी कोलॉइडी विलयन में से गुजारा जाए तो प्रकाश पुंज का मार्ग उसी प्रकार दीप्तिमान होकर चमकने लगता है, जैसे किसी अँधेरे कमरे में किसी छिद्र से आते प्रकाश में धूल के कण चमकते हैं। यह प्रेक्षण टिन्डल प्रभाव कहलाता है तथा कोलॉइडी विलयनों को वास्तविक विलयन से विभेद करने में उपयोगी है। टिन्डल प्रभाव की व्याख्या कोलॉइडी कणों द्वारा प्रकाश में प्रकीर्णन से की जाती है। प्रकाश का प्रकीर्णन परिक्षिप्त प्रावस्था तथा परिक्षेपण माध्यम के अपवर्तनांक (Refractive Index) के अन्तर के कारण होता है। द्रव विरोधी कोलॉइडी विलयनों के लिए इस अन्तर का मान बहुत अधिक होता है। अतः टिन्डल प्रभाव भी अधिक होता है। द्रव स्नेही सॉलो में यह अन्तर बहुत कम होने के कारण टिन्डल प्रभाव नगण्य होता है।

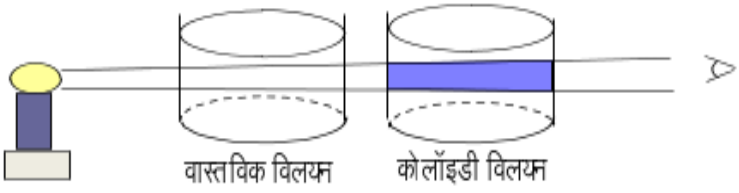

टिन्डल प्रभाव

(7) **वैद्युत गुण (वैद्युत कण संचलन प्रभाव) –** कोलॉइडी कण विद्युत आवेशित कण

होते हैं। विद्युत क्षेत्र में ये कण विपरित आवेशित इलेक्ट्रोडों की ओर अभिगमन करते हैं। विद्युत क्षेत्र के प्रभाव के कारण कोलॉइडी कणों के एक इलेक्ट्रोड की ओर गमन को वैद्युत कण संचलन कहते हैं।

उदाहरणार्थ– स्वर्ण तथा सिल्वर के ऋणआवेशित सॉल में विद्युत प्रवाह से कोलॉइडी कण ऐनोड की ओर एकत्रित होते हैं। विद्युत धारा के प्रवाह से धनावेशित कणों का कैथोड की ओर संचलन धन कण संचलन कहलाता है।

(8) **वैद्युत परासरण** – यदि वैद्युत कण संचलन प्रयोग में कोलॉइड विलयन से विद्युत धारा प्रवाहित करते समय चर्मपत्र या जांतव झिल्ली रखकर कोलॉइडी कणों को विपरित आवेशित इलेक्ट्रोड पर जाने से रोक दिया जाये तो परिक्षेपण माध्यम (कण) झिल्ली पार करके उपयुक्त दिशा में अभिगमन करने लगते हैं। परिक्षेपण माध्यम के अभिगमन की दिशा कोलॉइडी कणों के संचलन की दिशा से विपरीत होती है। यह क्रिया वैद्युत परासरण कहलाती है।

पॉयस या द्रव–द्रव सॉल

पॉयस ऐसे कोलॉइडी विलयनों (Sol) को कहते हैं जिनमें परिक्षिप्त प्रावस्था व परिक्षेपण माध्यम दोनों ही द्रव हो। अर्थात् द्रव–द्रव या द्रव–द्रव कोलॉइडी विलयन को ही पॉयस (Emulsion) कहते हैं।

उदाहरणार्थ – दूध एक ऐसा पॉयस है जिसमें द्रव व सायें जल में वितरित रहती हैं।

पॉयसों का वर्गीकरण –

प्रायः पॉयस दो प्रकार के होते हैं।

(1) **तेल में जल पॉयस –** इस प्रकार के पॉयस में जल की बूँदे परिक्षिप्त प्रावस्था में तथा तेल परिक्षेपण माध्यम में होता है।

उदाहरणार्थ – मक्खन, कोल्ड क्रीम, क्रीम आदि। इनको तेलीय पॉयस कहते हैं।

(2) **जल में तेल पॉयस –** इसमें तेल की बूँदे परिक्षिप्त प्रावस्था में तथा जल परिक्षेपण माध्यम में होता है।

उदाहरणार्थ – दूध, वैनिशिंग क्रीम आदि।

पॉयस बनाने की विधि –

सामान्यतया पॉयस अस्थायी प्रकृति के होते हैं तथा ये दो अलग–अलग परतों में पृथक हो जाते हैं। इन पॉयसों को स्थायी करने के लिए तीसरे पदार्थ की अल्प मात्रा में आवश्यकता होती है अर्थात् स्थायीकरण के लिए कुछ पदार्थों का प्रयोग करते हैं जिन्हें पॉयसीकारक कहा जाता है।

सामान्य पॉयसीकारक के रूप में साबुन, अपमार्जक, प्रोटीन, गम, ऐगार–ऐगार आदि का उदाहरण लिया जा सकता है। साबुण तथा अपमार्जकों में पॉयसीकारक गुण के कारण ही इनका उपयोग बर्तन एवं कपड़े धोने के रूप में करते हैं।

पॉयसीकारक के कार्य करने की विधि

यह पॉयस के दोनों द्रवों के बीच के अन्तरपृष्ठीय तनाव को कम करता है जिससे परिक्षिप्त प्रावस्था की बूँदों के चारों ओर एक पतली झिल्ली या तह बन जाती है जिसके कारण दोनों द्रव पास नहीं आ पाते हैं।

रक्षण – द्रव विरोधी सॉल में कम मात्रा में विद्युत अपघट्य मिलाने पर ये आसानी से अवक्षेपित हो जाते हैं परन्तु इन्हें द्रव–स्नेही सॉल मिलाकर स्थायी किया जा सकता है। "द्रव–स्नेही सॉलो का, द्रव विरोधी सॉलों को अवक्षेपित होने से रोकने का गुण रक्षण कहलाता है।"

स्कंदन या अवक्षेपण – हम जानते हैं कि द्रव विरोधी सॉल का स्थायित्व, परिक्षिप्त कणों द्वारा धन या ऋण आयनों के अधिशोषण के कारण होता है। आवेशित कणों के मध्य उपस्थित परस्पर प्रतिकर्षण बल इन्हें नीचे बैठने से रोक देता है। यदि किसी प्रकार ये आवेश हटा दिया जाए तो कोई भी बल कणों को एक दूसरे से अलग नहीं रख पायेगा। इस प्रकार की स्थिति में ये कण संयोजित (Aggregate) या उर्णित (Flocculate) हो जाते हैं एवं नीचे बैठ जाते हैं (गुरूत्वीय बल के कारण)। निरावेशित कणों का नीचे जमना या बैठना सॉल का स्कंदन (Coagulation) या अवक्षेपण (Precipitation) या ऊर्णन (Flocculation) कहलाता है।

हार्डी शुल्ज का नियम (Hardy Schulze Rule) :– किसी वैद्युत अपघट्य की स्कंदन शक्ति स्कंदन आयन की संयोजकता पर निर्भर करती है। स्कंदन आयन की जितनी

अधिक संयोजकता होती है उतनी ही अधिक उसकी स्कंदन शक्ति भी होती है। इस प्रकार As_2S_3 सॉल (–ve सॉल) के अवक्षेपण के लिए Al^{+3}, Ba^{+2} एवं Na^{+} आयनों की स्कंदन क्षमता का क्रम होगा।

$$\mathbf{Al^{+3} > Ba^{+2} > Na^{+}}$$

इसी प्रकार $Fe(OH)_3$ सॉल (+ve सॉल) के अवक्षेपण के लिए ऋणात्मक आयन $[Fe(CN)_6]^{3-}$, SO_4^{2-}, Cl^- की क्षमता का क्रम होगा।

$$\mathbf{[Fe(CN)_6]^{3-} > SO_4^{2-} > Cl^-}$$

द्रव स्नेही सॉल जो कि द्रव–विरोधी सॉल को अवक्षेपण से रोकता है, रक्षण कोलॉइडी कहलाता है। द्रव स्नेही सॉल, सॉल में मिलाए गए वैद्युत अपघट्य द्वारा दिए गए आयनों अथवा द्रव विरोधी सॉल के कणों पर एक पतली परत चढ़ा देते हैं। इस प्रकार ये कण/आयन स्कंदन में भाग नहीं ले सकते हैं। जिलेटिन, बबूल का गोंद, एल्बूमिन, आलू का स्टार्च इत्यादि कुछ रक्षक कोलॉइडी के उदाहरण हैं।

स्वर्ण संख्या – द्रव स्नेही कोलॉइडी विलयनों की रक्षण क्षमता "गोल्ड संख्या" द्वारा आंकी जाती है। इसकी कल्पना ज़िगमोण्डी (Zsigmondy) ने की थी। किसी रक्षी कोलॉइड की मिली ग्राम में वह मात्रा जो कि 10 मिली गोल्ड (स्वर्ण) के कोलॉइड को 1 मिली, 10% NaCl विलयन में मिलाने पर अवक्षेपण या स्कंदन से रोकती है, रक्षी कोलॉइड की स्वर्ण संख्या कहलाती है।

कोलॉइडो के सामान्य अनुप्रयोग के उदाहरण निम्न प्रकार हैं :

(1) **कोलॉइडी औषधियाँ** – कोलॉइडी औषधियों का आसानी से स्वांगीकरण, अधिशोषण हो जाने के कारण कोलॉइडी औषधियां अधिक प्रभाव उत्पन्न करती हैं।

i. कोलॉइडी गंधक तीव्र कीटाणुनाशी होता है।
ii. कोलॉइडी एन्टिमनी काला आजार रोग के उपचार में उपयोगी होता है।
iii. कोलॉइडी कैल्शियम ग्राइप वाटर बच्चों में सूखे रोग में लाभकारी होता है।

HBCSE

(2) हमारे दैनिक खाद्य पदार्थ जैसे मक्खन, पनीर, दूध, रोटी आदि कोलॉइडी पदार्थ हैं।

(3) साबुन तथा अपमार्जकों का सफाई में उपयोग – साबुन को जल में विलय करने पर झाग उत्पन्न होते हैं जिनकी कोलॉइडी प्रकृति होती है। इन झागों पर चिकने पदार्थ व गन्दगी के अन्य कणों का अधिशोषण हो जाता है, जिससे चिकने पदार्थ जैसे पदार्थ कपड़ों से अलग हो जाते हैं और जल के प्रवाह के साथ बह जाते हैं तथा कपड़ों से गन्दगी दूर हो जाती है।

(4) चर्म का शोधन – जानवरों की खाल तथा चमड़ा दोनों की जेल संरचनाएँ होती हैं। इनमें उपस्थित प्रोटीन कोलॉइडी अवस्था में होता है। जब चमड़े को टैनिन मे भिगोते है तब चमड़ें में उपस्थित धन आवेशित कणों तथा टैनिन के ऋणावेशित कणों का आपस में स्कंदन हो जाता है। परिणामस्वरूप चमड़ा कठोर हो जाता है। यह प्रक्रिया चर्म शोधन कहलाती है।

(5) धुएँ का अवक्षेपण – धुवाँ कार्बन कणों का वायु में कोलॉइडी परिक्षेपण होता है। इन कार्बन कणों को धुएँ से पृथक करने के लिए विपरित आवेशित धात्विक प्लेटों के सीधे सम्पर्क में लाते हैं जिससे ये अवक्षेपित हो जाते हैं।

(6) जल का शोधन – फिटकरी में उपस्थित एल्युमिनियम आयन जल में उपस्थित मिट्टी, जिस पर ऋण आवेश होता है, को अशुद्धियों के रूप में उदासीन करके अवक्षेपित कर देते हैं। स्वच्छ जल को निथार कर अलग कर लिया जाता है।

(7) नदियों में डेल्टा की उत्पत्ति – नदी के जल में बालू कण तथा अन्य कण निलम्बित अवस्था में उपस्थित होते हैं। इन कोलॉइडी कणों पर ऋण आवेश होता है। जब नदियों का जल समुद्री पानी के साथ मिलता है तो उसके कोलॉइडी कणों का स्कंदन हो जाता है क्योंकि समुद्र के पानी में कई धनावेशित आयन वाले वैद्युत अपघट्य जैसे– सोडियम क्लोराइड, सल्फेट, नाइट्रेट लवण आदि उपस्थित होते हैं। स्कंदित कण गुरूत्वाकर्षण बल के कारण तल में इकट्ठे होकर डेल्टा का रूप ग्रहण कर लेते हैं।

HBCSE

(8) आसमान का नीला रंग – वायुमण्डल में असंख्य धूल व जल के कण उपस्थित होते हैं। धूल के कण कोलॉइडी कण होते हैं। ये कण नीले प्रकाश का प्रकीर्णन करते हैं। प्रकाश का केवल नीला भाग ही प्रकीर्णित होता है और शेष भाग अवशोषित हो जाता है। इस कारण से आकाश नीला दिखाई देता है।

(9) रबर उद्योग में – रबर के पौधों से प्राप्त दूध में कोलॉइडी कण उपस्थित होता है, जिन पर ऋण आवेश उपस्थित होता है। इस दूध में जिस वस्तु का निर्माण करना हो उसका साँचा बना कर डाल देते हैं। सांचे को ऐनोड बनाने पर रबर के ऋण आवेशित कणों का स्कन्दन हो जाता है तथा उस वस्तु का सांचे के अनुसार निर्माण हो जाता है।

➢ राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
टोंक (राजस्थान)

HBCSE

पादपोपचार – धातु निस्तारण की एक बेहतर तकनीक

■ डॉ. दिनेश मणि

आजकल अनेक भारी धातुएँ प्रदूषण के संदर्भ में बहुचर्चित हैं। इनमें से कुछ तो अत्यंत घातक हैं। यहाँ तक कि यदि दस लाख भाग में इसका एक भाग भी विद्यमान रहे तो ये जानलेवा बन जाती हैं। इन धातुओं में से कुछ धातुएं उद्योग के काम आती हैं, अतः इन धातुओं का प्रचुर अंश विषरुप में पर्यावरण में मिलता रहता है। उद्योगों में काम करने वाले व्यक्ति धातुओं के धुंए, उनके ऑक्साइड तथा उनके बाष्पशील यौगिकों के सम्पर्क में आते है। इन धातुओं का मृदा, जल, पौधों, जीव–जन्तुओं यहाँ तक कि मनुष्यों में अनावश्यक रुप से संचय होता रहता है। निरंतर सम्पर्क में आते रहने से मनुष्यों के स्वाथ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

पौधों में धातु संचय करने तथा प्रतिरोध करने की क्षमता होती है। पौधों द्वारा प्रदूषकों का अवशोषण तथा निस्तारण पादप उपचार (फायटोरेमिडियेशन) कहलाता है। विभिन्न भारी धातुओं के उपचार के लिए यह एक विश्वसनीय तकनीक है। कुछ पौधे विभिन्न प्रदूषकों तथा धातुओं को अवशोषित करने की क्षमता रखते हैं। अधिक मात्रा में प्रदूषकों को अवशोषित करने वाले पौधों को मेटेलोफाइट या हायपरएकुमुलेटर कहते हैं। ये पौधे भारी धातुओं को जड़ो द्वारा अवशोषित करके अपने अनुपयोगी ऊतकों में संचयित करते हैं। कुछ अध्ययनों से पता चला है कि पौधों की जड़े मिट्टी में कार्बनिक प्रदूषकों की जैविक अपघटन क्रिया को तेज कर देती है। मिट्टी तथा पानी में भारी धातुओं की मात्रा के मॉनीटरन और प्रदूषण निवारण के लिए ऐसे अनेक प्रकार के पौधों का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जा रहा है।

पौधे विभिन्न धातुओं को घुलनशील ऑक्सीकरण (Soluble Oxidation) अवस्था से अघुलनशील ऑक्सीकरण (Insoluble Oxidation state) अवस्था में परिवर्तित करके धातु निक्षालन को रोकते हैं। साथ ही उन्हें उद्ग्रहण, अवक्षेपण और अपचयन के माध्यम से निश्चल किया जा सकता है। पौधे अपनी जड़ों की सतह में उपस्थित सूक्ष्मजीवों की विघटनकारी प्रक्रिया के द्वारा कार्बनिक यौगिकों को तोड़कर सरलीकृत कर देते हैं और इसे आसानी से ग्रहण कर लेते हैं। इन उपचारित पौधों को प्रदूषित स्थल से दूर ले जाकर विभिन्न

विधियों द्वारा संचयित तत्वों को इनसे अलग कर लिया जाता है। जैव प्रौद्योगिकी की सहायता से इस समय ऐसी विधियां विकसित कर ली गई हैं जिनके द्वारा चुने हुए तथा विशेष रुप से निर्मित सूक्ष्मजीवों के प्रयोग से पौधों द्वारा धातुओं का अवशोषण बढ़ाकर मृदा पुनः कृषि योग्य बनाई जा सकती है। दूसरी ओर पारंपारिक विधियों की अपेक्षा कम लागत से अधिक धातु प्राप्त करने का प्रयास जारी है। सर्वप्रथम अमेरिका के सूक्ष्मजीवी वैज्ञानिकों ने सन् 1947 में थायोबैसिलस फैरोऑक्सिडेन्स नामक जीवाणु की सहायता से तांबे को कच्ची धातु से प्राप्त किया था। ये जीवाणु पूरी तरह से सल्फाइड पर जीवन यापन करते हैं और अम्लीय वातावरण में तेजी से बढ़ते हैं।

सूक्ष्म जीव जैव उत्प्रेरक (Biocatalyst) की तरह कार्य करते हैं तथा प्रदूषकों के सहारे बढ़ते हैं इसीलिए जैव–उपचार की गति स्वाभाविक रूप से तेज होती है। सूक्ष्म जीवों में जैविक यौगिकों के अपघटन की स्वाभाविक क्षमता अधिक होती है। आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा सूक्ष्मजीवों की इस क्षमता में और भी वृद्धि की जा सकती है।

पौधे प्रदूषित पदार्थों के लिए एक जैविक छनन–यंत्र का कार्य करते हैं। पौधे प्रदूषणकारी पदार्थों की सांद्रता को अपनी बाहरी या भीतरी सतह पर सोखकर इनको कम विषैले पदार्थों में परिवर्तित कर, स्वयं में एकत्रित कर व चयापचय द्वारा उनकी मात्रा को कम कर देते हैं।

धात्विक प्रदूषण को कम करने हेतु यद्यपि कई तकनीकें विकसित की जा चुकी हैं, तथापि अत्यधिक महंगी तथा कभी–कभी प्रायोगिक रुप से उपयोगी न होने के कारण इनको प्रत्येक स्थान पर प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है। ऐसी परिस्थिती में पौधों के प्रयोग द्वारा इन धातुओं का निस्तारण करना एक सरल, सस्ती और आसान प्रक्रिया सिद्ध हो सकती है। विशेषकर पर्यावरणीय दृष्टिकोण से यह एक अनुकूल विधि है। इसमें अतिरिक्त हानिकारक उत्पादों की संभावना काफी कम होती है।

पादपोपचार आधारित निस्तारण के लिए सबसे पहली आवश्यकता प्रदूषणकारी भारी धातुओं को पहचानने की है। इसके लिए जैव–सूचकों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ – फ़ेस्चुका रूब्रा तथा लिगुस्टम वुलगेरी की पत्तियाँ कैडमियम, जिंक, लेड और

HBCSE

निकेल के लिए, डाइक्रेनम पॉलिसेटम तथा स्फैगनम प्रजातियां कैडमियम, कॉपर, आयरन, मर्क्यरी, निकेल, लेड तथा जिंक के लिए प्रयुक्त होती है। सूचक पौधे भारी धातुओं की अधिक मात्रा अवशोषित करते हैं लेकिन इनकी प्रतिरोधक क्षमता कम होती हैं जिसके कारण रन्ध्र, क्यूटिकल, ट्राइकोम आदि में परिलक्षित होने वाले परिवर्तन बाहर से स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते हैं। कुछ शैवाल जैसे क्लेडोफोरा स्टीमिआलोनियम का प्रयोग जल में भारी धातु प्रदूषण के सूचक के रूप में होता है। भारी धातु प्रदूषण की उपस्थिति में क्लेडोफोरा पूर्णतया उस स्थान से समाप्त होने लगता है।

प्रदूषण की पहचान हो जाने के पश्चात ऐसे पौधों का चुनाव किया जाता है जो इनके निस्तारण की क्षमता रखते हैं। निस्तारण की यह सफलता पौधों की जाति तथा मृदा सुधार की विधि पर काफी सीमा तक निर्भर करती है। कुछ पौधों के ऊतकों में काफी अधिक मात्रा में भारी धातुओं को संचित करने की शक्ति होती है और इन्हीं पौधों का उपयोग मृदा धातुओं का अवशोषण करने में किया जाता है। यह निस्तारण कई अन्य कारकों पर भी निर्भर करता है जैसे – पौधों की अधिक से अधिक मात्रा में भारी धातुओं को एकत्रित करने की क्षमता, पर्याप्त मात्रा में जैव–भार का उत्पादन, रोपाई तथा कटाई की सरलता इत्यादि।

पादप उपचार की ऐतिहासिकी पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि सर्वप्रथम इटली के शोधकर्ता ने 1948 में यह पाया कि एलाइसम वेस्टोलिनी नामक पौधा निकेल धातु की अधिक मात्रा संचयित करने की क्षमता रखता है किन्तु उनका यह शोध कार्य अधिक ख्याति प्राप्त नहीं कर सका। पुनः 1977 में मैसी विश्वविद्यालय न्यूज़ीलैंड के शोधकर्ता राबर्ट कुक ने इसी तरह की खोज की जानकारी दी। इस बार उनकी रिपोर्ट को इंग्लैंड के वैज्ञानिकों ने गंभीरता से लिया। 1980 में अमेरिका के वैज्ञानिक चैनी ने धातुओं का उच्च संचयन करने वाले पौधों का उपयोग टॉक्सिक–साइट–क्लीनर्स के रूप में करने का सुझाव दिया।

तीव्र गति से बढ़ते हुए औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप रसायन, चमड़ा, कपड़ा, औषधि, रंग आदि उद्योगों में धातुओं का बड़ी मात्रा में प्रयोग हो रहा है। इन उद्योगों से निकलने वाले जलीय, वाष्पीय तथा व्यर्थ ठोस पदार्थों के साथ इन धातुओं की काफी मात्रा पर्यावरणीय प्रदूषण का कारण बन रही है। ये भारी धातुएं प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से खाद्य श्रृंखला के माध्यम से शरीर में पहुँचकर हानि पहुँचाति है।

जड़ो द्वारा अवशोषित होकर ये धातुएं पौधों मे उपस्थित आवश्यक रसायनों से संकुलित होकर उसके विभिन्न भागों में स्थिर हो जाते हैं तथा कुछ अंततः अवक्षेपित हो जाते हैं। कुछ अन्य मुख्य रूप से पत्तियों में जाकर एकत्रित हो जाते हैं।

एल्पाइन पेनीक्रेस (थ्लास्पी सेरूलेसेन्स) अन्य पौधों की अपेक्षा 10 से 100 गुना अधिक जिंक अवशोषित कर सकता है। वस्तुतः सूखे पौधे के प्रति किलोग्राम भार के अनुपात में यह 25 ग्राम जिंक का अवशोषण कर सकता है और इसीलिए इसकी सहायता से अमेरिका में पामरटन नामक स्थान में बंद हो गए जिंक स्मेलटरों के आसपास की भूमि को उर्वरा बनाने में आशातीत सफलता मिली है। इतना ही नहीं, यह पौधा इसी अनुपात में लगभग 16 ग्राम निकेल तथा अच्छी मात्रा में कैडमियम का भी अवशोषण कर सकता है। ये दोनों ही प्रदूषक तत्व भी जिंक स्मेलटरों की ही देन हैं।

सेबोर्टिया अकुमिनाटा एवं एलियम लेस्बिएकम नामक पौधे भी निकेल की भारी मात्रा को अवशोषित करने में सक्षम है। ब्रेसिका नेपस, सेलीनियम के आधिक्य वाली मिट्टी को सामान्य बना सकता है। यह कैडमियम और बोरोन को भी भारी मात्रा में अवशोषित करने की क्षमता रखता है।

लेड आधारित उद्योगों एवं आटोमोबाइल्स से लेड मृदा में इतनी अधिक मात्रा में संचित हो जाता है कि यह विषाक्त बन जाता है। लेखक द्वारा शीलाधर मृदा विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में किए गए शोध कार्य से पता चला है कि लेड प्रदूषित मृदा को कृषि योग्य बनाने में भारतीय पीली सरसों (ब्रेसिका जन्सिया) तथा कैडमियम प्रदूषित मृदा में सूरजमुखी (हैलिएन्थस एन्नस) बहुत लाभकारी है।

सूरजमुखी (हैलिएन्थस एन्नस)

सरसों (ब्रेसिका जन्सिया)

धातुओं को जड़ से तने में लाने के लिए वाष्पोत्सर्जन की प्रक्रिया भी एक प्रमुख भूमिका निभाती है। लेड के लिए सबसे प्रमुख वनस्पतीय निस्तारक थ्लास्पी रोटंडीफोलियम है। इसके अतिरिक्त ब्रेसिका जन्सिया भी इसका उत्कृष्ट उदाहरण है जिसमें लेड, कैडमियम को अवशोषित करने की आनुवंशिक शक्ति पाई जाती है। जई और जौ में भी कॉपर, कैडमियम और जिंक के निस्तारण की क्षमता पाई जाती है। मृदा में सीसे की अवशोषण क्षमता को सरसों के पौधे में बढ़ाने के लिए 'कीलेटर' यौगिकों का भी परिक्षण किया जा रहा है। इतना ही नहीं, इन 'कीलेटर' यौगिकों के मृदा में प्रयोग से अन्य धातुएँ जैसे कैडमियम, कॉपर, निकेल तथा जस्त जैसी धातुओं की सरसों के तनों में एकत्रित करने की क्षमता को भी बढ़ता हुआ पाया गया है। आजकल आनुवंशिकी अभियांत्रिकी की सहायता से ऐसे ट्रांसजेनिक पौधों का निर्माण किया जा रहा है, जो विशिष्ट रूप से प्रदूषित मृदा का उपचार करने में सक्षम हों। परम्परागत फसलों में अत्यधिक संचय की प्रवृत्ति उत्पन्न करने के प्रयास किये जा रहे हैं। ये प्रयोग ब्रेसिका के पौधों पर किए जा रहे हैं जिनकी जड़ों में भारी धातुओं के संचयन की क्षमता पायी गई है। पाइसम सटाइवम (Pisum sativum) की एक उत्परिवर्तित प्रजाति तैयार की गई है जो पाइसम की जंगली जाति की तुलना में 10–100 गुना अधिक आयरन का संचय करती है।

जैव प्रौद्योगिकी की सहायता से पौधों की ऐसी प्रजातियाँ विकसित करने की आवश्यकता है जो अधिक से अधिक मात्रा में भारी धातुओं का संचय कर सके। इसके लिए मृदा रसायनज्ञ, जैव प्रौद्योगिकीविद् परिस्थितिविद्, पर्यावरणविद्, जल–अभियांत्रिकी विशेषज्ञ, कृषि वैज्ञानिक सभी को एक साथ मिल कर बैठकर ऐसी रणनीतियां तैयार करने की आवश्यकता है जिससे इस तकनीक का सफल कार्यान्वयन हो सके और पर्यावरण के विभिन्न घटकों यथा–मृदा, जल तथा वायु से प्रदूषकों की मात्रा को कम किया जा सके। इस दिशा में धातु–उद्ग्रहण, संचयन स्थानान्तरण, कीलेटीकरण एवं जड़ अवक्षेपण पर शोधकार्य की आवश्यकता है। पर्यावरण अभियांत्रिकी, मृदा सूक्ष्म जीवविज्ञान जैसे क्षेत्रों का एक संयुक्त अनुसंधान इस विधा को अधिक कारगर बनाने के लिए आवश्यक है।

➢ 35/3, जवाहरलाल नेहरू रोड
जार्जटाउन, इलाहाबाद 211 002 उ. प्र.
ई–मेल : dineshmanidsc@gmail.com

जीवों के अवशेषी अंगों से जैव विकास के प्रमाण

■ मनीष मोहन गोरे

भूमिका

पृथ्वी पर मौजूद जैव विविधता (10 लाख से अधिक जन्तु और 5 लाख से अधिक पेड़-पौधे) का जन्म प्रकृति के किस नियम के कारण हुआ, इसे जानने के क्रम में ही जैव विकास का मूल विचार प्रकट हुआ था। विशिष्ट सृष्टिवाद और स्वतः जननवाद जैसे निर्मूल और अवैज्ञानिक विचारों से आरम्भ करते हुए अनेक आधारों पर जैव विकास की अवधारणा को बल मिला। सामान्यतः हमें अपने चारों ओर का वातावरण विविध प्रकार की निर्जीव वस्तुओं और जीवों के अव्यवस्थित कबाड़खाने जैसा लगता है। मगर वास्तव में इसमें एक निश्चित व्यवस्था विद्यमान होती है। प्रकृति के मौजूद इसी अनवरत चलने वाली प्रक्रिया (जैव विकास) की व्याख्या अरस्तू, लैमार्क, चार्ल्स डार्विन और ह्यूगो डी व्रीज ने की थी। इनमें से डार्विन के सिद्धांत प्रकृति में जैव विकास की लगभग सटीक व्याख्या प्रकट करते हैं।

जैव विकास हुआ है तो पृथ्वी पर जीवन के प्रारम्भ से लेकर आज तक की जीव-जातियों की रचना, कार्यिकी, भ्रूणीय विकास, वितरण और अवशेषी अंगों आदि में कुछ-न-कुछ सम्बन्ध और क्रम होना आवश्यक है। वैज्ञानिकों ने जैव विकास को लेकर अपनी अवधारणाओं को सिद्ध करने के लिए इन्हीं सम्बन्धों और क्रम को दर्शाने वाले प्रमाण प्रस्तुत किये थे। इस शोध आलेख में जीवों के अवशेषी अंगों से जैव विकास के प्रमाण के बारे में बताया गया है और यह व्याख्या दी गयी है कि वर्तमान समय में क्यों वे अंग अवशेषी बन गए हैं जिनका जीव शरीर में अब कोई उपयोग नहीं रहा परन्तु उन जीवों की पूर्वज जातियों में वे उपयोगी थे।

प्रस्तावना

प्रकृति अजीव और सजीव घटकों का अव्यवस्थित कबाड़खाना नहीं बल्कि एक विशाल क्रमबद्ध, जटिल परन्तु सुव्यवस्थित स्वरूप है जिसे पारितंत्र (Ecosystem) कहते हैं। यहीं से कैरोलस लिनियस (1707-1778) को जंतुओं और पादपों को छोटे-बड़े क्रमबद्ध समूहों में वर्गीकृत करने की प्रेरणा मिली।

'परिवर्तन के साथ अवतरण (Descent with change or modification)' जैव विकास का मूल विचार होता है। प्रकृति में चल रहे जैव विकास के अंतर्गत हर एक जीव–जाति के लक्षणों में, पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्राकृतिक आवश्यकताओं के अनुसार कुछ परिवर्तन होते रहते हैं। हजारों लाखों वर्षों में यही परिवर्तन इस जाति से नई, अधिक सुव्यवस्थित और जटिल जातियों के विकास का कारण बनते हैं। अर्थात् प्रत्येक वर्तमान जीव–जाति का विकास किसी अपेक्षाकृत निम्न कोटि की पूर्वज जाति से हुआ है। आरंभिक निम्न कोटि के जीवों से, क्रमिक परिवर्तनों के द्वारा अत्यधिक जटिल जीवों की उत्पत्ति को ही जैव विकास कहते हैं।

जैव विकास के सिद्धातों का संक्षिप्त इतिहास :

• अरस्तू का विचार

जैव विकास को लेकर संभवतः प्रारंभिक विचार ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में अरस्तू ने दिया था। उन्होंने अपनी कृति "हिस्ट्री ऑफ एनिमल्स" में छछूंदर की अवशेषी आंखों के बारे में लिखा था कि वातावरण की दशाओं से सामंजस्य बैठाने के लिए इनकी आंखों का विकास रूक गया है।

• लैमार्कवाद (1744–1829)

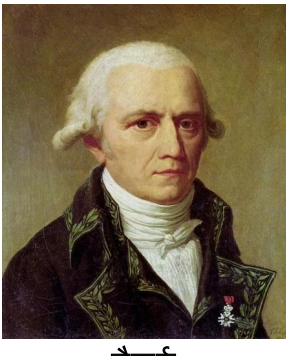
लैमार्क

जैव विकास से जुड़ा पहला तर्कसंगत सिद्धांत फ्रान्सिसी जीव वैज्ञानिक लैमार्क ने दिया था। लैमार्क ने अपने सिद्धांत में कहा था कि जंतुओं के विकास में उसके आस–पास के वातावरण का सीधा प्रभाव पड़ता है। उनके द्वारा अंगों के कम या अधिक प्रयोग के फलस्वरुप जो भी परिवर्तन उनके शरीर में आते है, उन्हें उपार्जित लक्षण कहते हैं। लैमार्क ने ये बताया कि जंतुओं में ये उपार्जित लक्षण वंशागत होते हैं अर्थात् एक से दूसरी पीढ़ी में पहुंचते है। लम्बे कालखंड के बाद संतानें अपने पूर्वजों से काफी भिन्न होकर नई–नई जातियों में बदल जाती है। लैमार्क के इस सिद्धांत को उपार्जित लक्षणों की वंशागति (Inheritance of acquired characters) कहते हैं।

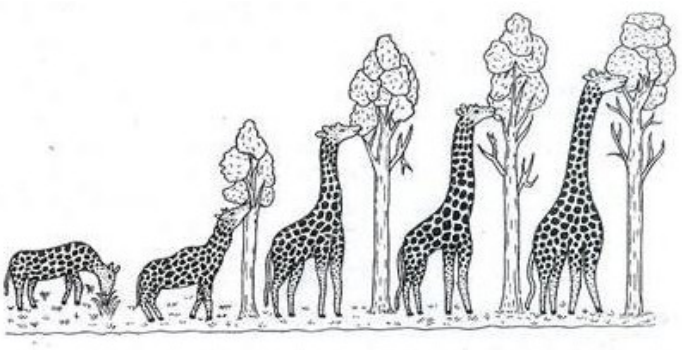

लैमार्क ने सिद्धांत की व्याख्या अफ्रीकी जिराफ के माध्यम से दी

लैमार्क ने अपने सिद्धांत की व्याख्या अफ्रीकी जिराफ के माध्यम से दी जिसके अनुसार जिराफों के पूर्वजों की अगली टांगें और गर्दन सामान्य थीं, क्योंकि उस समय अफ्रीका में घास के मैदान पर्याप्त थे। बाद में इस प्रदेश की जलवायु बदली, घास के मैदान समाप्त हो गए, पेड़ ऊँचे होने लगे और रेगिस्तान बनने लगा। इस बदलते जलवायु के कारण अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए जिराफ ने पेड़ों के पत्तियों तक पहुँचने के लिए अगली टांगों और गर्दन को अधिक से अधिक उचकाया। इनके अधिक प्रयोग से इनकी अगली टांगें और गर्दन ऊँची हो गई तथा पीढ़ी–दर–पीढ़ी वंशागत होकर यह लक्षण जिराफ के वर्तमान स्वरुप का स्थायी लक्षण बन गया।

लैमार्कवाद की आलोचना

वैज्ञानिकों ने लैमार्क के जैव विकास सिद्धांत की आलोचना की और कहा कि मनुष्य जीवन भर मूंछ और दाढ़ी बनाता है फिर भी इनकी संतान में आगे चलकर मूंछ और दाढ़ी आते हैं। पहलवान का बच्चा पहलवान नहीं होता। चीन में लड़कियों के पैरों को छोटा, सुन्दर और सुडौल बनाए रखने के लिए बचपन से उनके पैरों में लोहे के जूते पहना दिए जाते हैं मगर इसके बावजूद उनकी संतानों के पैर सामान्य आकार वाले होते हैं। वीजमान (Weismann) (1834–1914) नामक वैज्ञानिक लगभग 20 पीढ़ियों तक चुहों की पूंछ छाटते रहे, फिर भी उनकी संतानों में पूंछ विकसित होती रही। उन्होंने वर्ष 1886 में 'जनन द्रव्य की निरंतरता सिद्धांत (Theory of

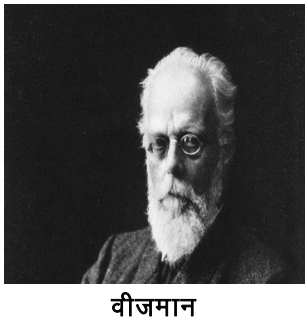

वीजमान

continuity of germplasm)' में बताया कि माता–पिता के केवल वे ही लक्षण संतानों में जाते हैं, जो उनके जनन द्रव्य यानी युग्मकों के गुणसूत्रों पर स्थित जीन पर मौजूद होते हैं। उनके अनुसार कायद्रव्य (somatoplasm) का कोई परिवर्तन संतान में नहीं जा सकता।

- **डार्विनवाद (1809–1882)**

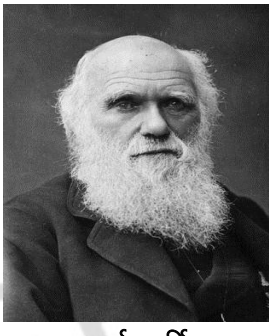
चार्ल्स डार्विन

जैव विकास के सिद्धांत में डार्विन का सिद्धांत या डार्विनवाद सबसे प्रसिद्ध रहा है। चार्ल्स डार्विन बचपन से ही प्रकृति और जीव–जंतुओं में दिलचस्पी रखते थे। वे कीटकों को एकत्रित करके उनका अध्ययन करते थे। वर्ष 1831 में 21 वर्ष की आयु में इन्हें ब्रिटिश सरकार ने अपने बीगल नामक सर्वेक्षण जहाज पर प्रकृति निरीक्षण का काम सौंपा। पांच वर्ष लम्बे इस समुद्री सर्वेक्षण के दौरान डार्विन ने अनेक द्वीपों, महाद्वीपों, जंतुओं, जीवाश्मों और चट्टानों का अध्ययन किया तथा बाद में उन पर अनेक पुस्तकें लिखीं।

डार्विनवाद के अनुसार प्रकृति के अंदर जीवों में भिन्नता पाई जाती है। सीमित प्राकृतिक संसाधनों को प्राप्त करने के लिए इन जीवों में आपसी संघर्ष होता है। इस संघर्ष के फलस्वरूप वे जीव संसाधनों को हासिल कर अपना अस्तित्व कायम रख पाते हैं जो योग्य और समर्थ होते हैं। डार्विन ने इसे प्राकृतिक चयन (Natural Selection) का नाम दिया था जिसका आशय यह है कि प्रकृति अपने भीतर केवल उन्हीं जीवों का अस्तित्व बनाए रखने के लिए सिफारिश करती है, जो जीवन के संघर्ष में स्वयं को योग्य साबित कर पाते हैं।

- **ह्यूगो डी व्रीज का उत्परिवर्तनवाद (1848–1935)**

ह्यूगो डी व्रीज

डार्विन और इनसे पूर्व के कुछ वैज्ञानिकों ने जीवों में ऐसे लक्षण देखे थे जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी क्रमिक विकास द्वारा नहीं परन्तु अकस्मात ही पूर्ण विकसित अवस्था में प्रकट हो जाते हैं। ये लक्षण अगली पीढ़ी में वंशागत भी होते हैं। डार्विन ने इन्हें अभिनव प्रकटीकरण कहा था।

वनस्पति वैज्ञानिक ह्यूगो डी व्रीज ने जीवों में अकस्मात होने वाले इन वंशागत परिवर्तनों को उत्परिवर्तन (Mutation) का नाम दिया। ह्यूगो डी व्रीज के इस उत्परिवर्तनवाद के अनुसार जीव जाति का पहला सदस्य जिसमें उत्परिवर्तित लक्षण प्रकट होता है, उत्परिवर्तक (Mutant) कहलाता है। उत्परिवर्तन अनिश्चित होते हैं, ये किसी एक अंग विशेष में या एक साथ एकाधिक अंगों में हो सकते हैं। ये उत्परिवर्तन लाभदायक, उपयोगी, निरर्थक या हानिकारक हो सकते हैं। सभी जीव जातियों में उत्परिवर्तन की प्राकृतिक प्रवृत्ति होती है। जो कभी बहुत कम, बहुत अधिक और कभी एकदम सुप्त होती है। जीव जाति के विभिन्न सदस्यों में विभिन्न प्रकार के उत्परिवर्तन हो सकते हैं। अतः एक जनक या पूर्वज जाति से एक ही साथ कई नई मिलती–जुलती जातियों की उत्पत्ति हो जाती है।

अवशेषी अंग : जैव विकास के प्रमाण

बड़े जंतुओं में अक्सर कुछ स्पष्ट मगर अल्पविकसित और निष्क्रिय अंग या अंगों के हिस्से पाए जाते हैं। ये अंग या उनके हिस्से उस जंतु विशेष के शरीर में अनावश्यक और अनुपयोगी होते हैं। इन्हें अवशेषी अंग (Vestigial Organs) कहते हैं। अब यह सवाल उठता है कि अनावश्यक होते हुए भी ये क्यों पाए जाते हैं। ऐसा देखा गया है कि कुछ समानार्थी जातियों में ये अंग पूर्णतः विकसित और सक्रिय होते हैं। एक उदाहरण देखिये, मनुष्यों की पूंछ नहीं होती, परन्तु इसके अवशेष होते हैं, जबकि बन्दरों में सक्रिय पूंछ पाई जाती है।

मनुष्य में पूंछ की हड्डी के अवशेष मौजूद होने के पीछे एक अहम् कारण ये समझ में आता है कि मानव का विकास बंदरों जैसे पूंछयुक्त आदि पूर्वजों से हुआ है। मनुष्यों के पूर्वजों में यह पूंछ विकसित और सक्रिय रही होंगी, परन्तु वातावरणीय दशाओं के बदल जाने से, इनकी उपयोगिता समाप्त हो जाने के कारण विकास के क्रम में इनका लोप हो गया और आज ये महज अवशेषी अंग के रूप में हमारे शरीर में मौजूद रह गयी हैं। भविष्य में इनका पूर्णतः समापन भी हो सकता है।

व्हेल और साँपों के पश्चपाद नहीं होते, फिर भी व्हेल, अजगर तथा बोआ श्रेणि के साँपों में पश्चपाद और इनसे सम्बन्धित श्रोणि मेखलाओं (Pelvic girdles) के अवशेष पाए जाते हैं। ये अवशेषी अंग इस बात को प्रमाणित करते हैं कि साँपों का विकास पादयुक्त सरीसृप पूर्वजों से हुआ है। रेंगने की आदत के कारण इनमें पादों का उपयोग समाप्त हो गया और ये

अवशेषी अंगों में परिवर्तित हो गए।

पक्षियों में पंख उड़ने के लिए होते हैं। कुछ पक्षियों के शरीर बड़े और भारी हो गये इसीलिए इन्होंने उड़ने के स्थान पर तेज दौड़ने की आदत डाली। इसके फलस्वरूप इनके पंख अवशेषी हो गए। न्यूजीलैंड के कीवी (Apteryx), ऑस्ट्रेलिया और अरब देशों के शुतुरमुर्ग (Struthio camelus) ऐसे ही कुछ पक्षियों के उदाहरण हैं। सत्रहवी सदी में ऐसा ही एक न उड़ने वाला पक्षी डोडो विलुप्त हो गया। घोड़ों के पाद खुरदार होते हैं। प्रत्येक पाद में केवल तीसरी अंगुली विकसित होती है। खूर इसीपर मौजूद होता है। पहली और पांचवी अंगुलियाँ वर्तमान में बिल्कुल समाप्त हो चुकी हैं। दूसरी और चौथी अंगुलियों के अवशेष छोटी–छोटी खपच्चीनुमा अवशेषी हड्डियों के रूप में उपस्थित हैं।

मनुष्यों के शरीर में अवशेषी अंग

विभिन्न जंतुओं के अलावा हम मनुष्यों के शरीर में भी अनेक (100 से भी अधिक) अवशेषी अंग पाए जाते हैं जो समय के साथ अनुपयोगी हो गए हैं इसीलिए ये अनावश्यक अंग या हिस्से के रूप में पाए जाते हैं। मनुष्य के शरीर में इतने सारे अवशेषी अंगों के मौजूद होने को लेकर एक जंतु वैज्ञानिक होराशियों नयूमैन ने एक बार कहा था कि मनुष्य पुरातनता का एक चलता–फिरता संग्रहालय है। इनमें से कुछ अवशेषी अंगों की यहाँ पर चर्चा की जा रही है।

i. त्वचा पर बाल :

पृथ्वी पर अनेक जंतुओं जैसे बंदर, घोड़े, खरगोश, भालू आदि स्तनियों के शरीर पर घने बाल होते हैं। ये बाल इन जंतुओं के शरीर में ताप नियंत्रण में सहायक होते हैं। मनुष्यों में बालों का यह कार्य अस्तित्व में नहीं रहा, परन्तु फिर भी हमारे शरीर पर कुछ बाल पाए जाते हैं।

ii. निमीलक छद :

हमारे प्रत्येक आँख के भीतरी कोण पर एक छोटी, लाल और अर्धचंद्राकार झिल्ली पायी जाती है, जिसे निमीलक छद (Plica semilunaris) कहते हैं। यह रचना अवशेषी अंग के रूप में हमारे आँखों में पायी जाती है, जबकि मेंढक, मछली, पक्षियों, बिल्ली, खरगोश आदि जंतुओं में यह रचना सक्रिय होती है। ये जंतु अपनी आँखों के सामने कोई वस्तु या धूल के आने पर इस रचना को फैलाकर अपनी आँखों की रक्षा कर लेते हैं। मनुष्यों में क्रियाशील पलक के विकास के कारण इनकी उपयोगिता समाप्त हो गई है। मगर मछलियों और पक्षियों में

इनकी आवश्यकता आज भी है इसीलिए उनमें यह रचना अनुपयोगी नहीं हुई है।

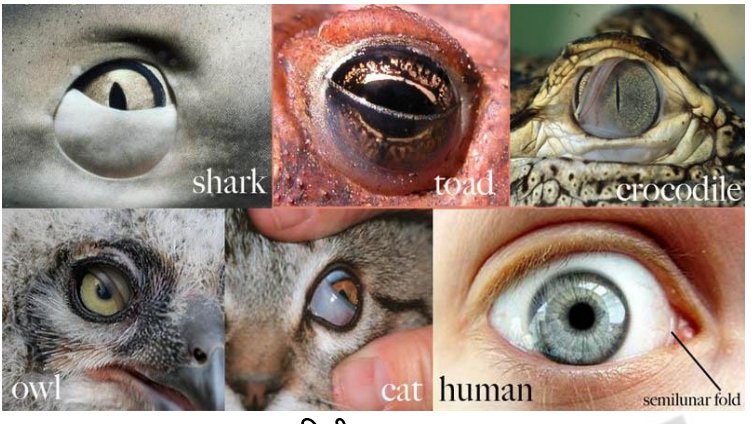

निमीलक छद

iii. कर्ण पल्लव की पेशियाँ :

हमारे कर्ण पल्लव और नासिका से कुछ अनावश्यक पेशियाँ लगी होती हैं। घोड़े गधे, हाथी, भैंस, गाय, बन्दर आदि में ये पेशियाँ अधिक विकसित होती हैं और नासिका तथा कर्ण पल्लवों को हिलाने में सहायक होती हैं। मनुष्य में ये अंग अचल हो गए। अचल होने के पीछे कारण यह रहा कि इनका प्रयोग नहीं किया गया। इस कारण मनुष्य में ये पेशियाँ अवशेषी हो गईं।

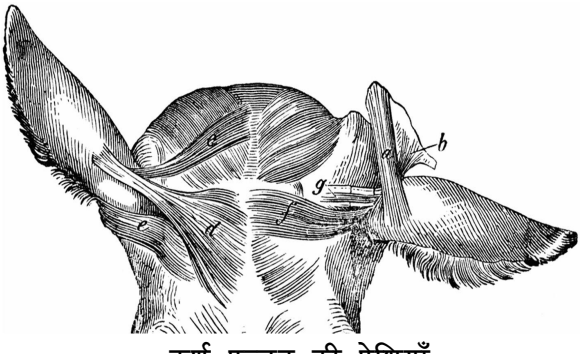

कर्ण पल्लव की पेशियाँ

iv. पूंछ की कशेरुका :

मनुष्य में पूंछ नहीं होती है। फिर भी कशेरुकदण्ड के अंत में 3 से 5 तक (प्रायः 4) अर्धविकसित पुच्छ कशेरुकाएं पाई जाती हैं। ये कशेरुकाएं एकजुट होकर हड्डी का एक ही टुकड़ा बनाती हैं, जिसे कोक्सिक्स (Coccyx) कहते हैं। मनुष्य में इस अंग का पाया जाना इस बात को प्रमाणित करता है कि हमारा विकास ऐसे जंतु पूर्वजों से हुआ है जिनकी सुविकसित पूंछ हुआ करती थी। वर्तमान में इनकी उपयोगिता नहीं होने के कारण ये अवशेषी अंग हो गए।

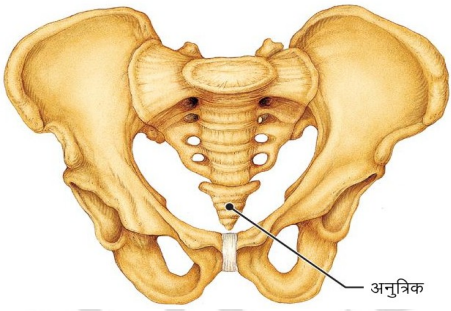

पूंछ की कशेरुका

v. अकिलदाढ़ :

तीसरा मोलर दन्त मूलतः प्राइमेट स्तनियों में सामान्य तौर पर पाया जाता है। हम मनुष्यों (होमो सैपिएंस) में इस दन्त का कोई उपयोग नहीं है इसीलिए हमारे मुंह में ये देर से निकलता है और प्रायः अर्धविकसित ही रहता है। अनुपयोगी होने के कारण इसमें रोग लगने का जोखिम हमेशा बना रहता है।

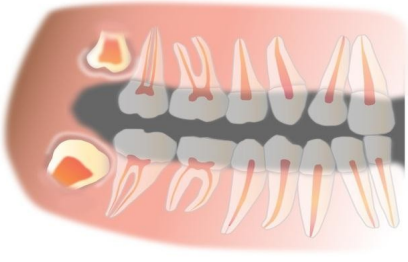

अकिलदाढ़

vi. कृमिरूप परिशेषिका :

कृमिरूप परिशेषिका (Vermiform Appendix) छोटी और बड़ी आतों के मिलन बिंदु पर स्थित एक अंग होता है जो प्रायः गाय, भैंस, खरगोश, बन्दर जैसे शाकाहारी जंतुओं में पाया जाता है। इस अंग का मुख्य कार्य सेलूलोज़ का पाचन करना होता है। मनुष्य एक सर्वाहारी प्राणी है इसीलिए इसकी उपयोगिता नाममात्र की रह गयी है। फलस्वरूप अब केवल अवशेषी अंग के रुप में यह हमारे शरीर में मौजूद रहता है और इसमें अनेक प्रकार के रोग लग जाते हैं।

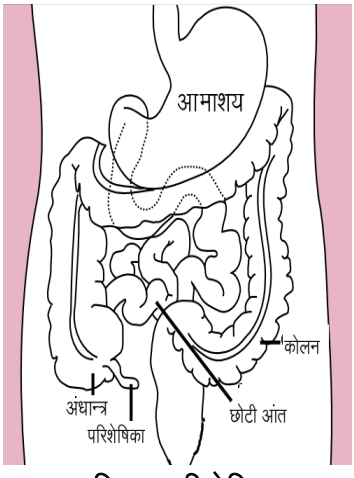

कृमिरूप परिशेषिका

अवशेषी अंगों के परिप्रेक्ष्य में जैव विकास की विवेचना

पृथ्वी के वातावरण में परिवर्तन के फलस्वरूप जीवों ने अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए संघर्ष किया और समर्थ जीव जातियों ने अपने वंश को आगे बढ़ाया। वातावरण में परिवर्तन के अनुकूल और उसके लिए उपयुक्त शरीर की बनावट में क्रमिक रूप से विभिन्न काल खंडों में जो बदलाव आए, उन्हें हम जैव विकास का प्रकटीकरण कह सकते हैं। जैव विकास की यात्रा में जीवों के शरीर में अनेक अंग बदलते वातावरणीय जरुरतों के दबाव में अनुपयोगी होकर निष्क्रिय बन गए, जिन्हें हम अवशेषी अंग (Vestigial organ) कहते हैं। वातावरण में परिवर्तन और/या जीव जाति के जीवन के ढ़ंग में परिवर्तन के संदर्भ में अवशेषी अंगों के अस्तित्व की व्याख्या की जा सकती है। वे अंग पूर्वत जातियों में क्रियाशील रहे थे, मगर वर्तमान में वे अक्रियाशील हो गये हैं या पुनः लक्षित।

व्हेल की श्रोणिमेखलाएं, मक्खी व मच्छर के पश्च पंख, शुतुरमुर्ग के पंख, कुछ मरुद्भिद पौधों (जैसे नागफनी) और परजीवी पौधों की पत्तियां अवशेषी अंगों के कुछ उदाहरण हैं। हालांकि जीवों में अवशेषी रचनाएं अपने मूल कार्य के स्थान पर किसी दूसरे काम हेतु भी ढ़ल गई हो सकती हैं, जैसे शुतुरमुर्ग के पंख उड़ान के स्थान पर ताप नियंत्रण और संसर्ग में सहायक होते हैं।

जीवों में अवशेषी अंगों को लेकर जो सर्वथा तर्कसंगत निष्कर्ष निकाला जा सकता

है, वह ये है कि आज के जीव उन जीवों से अवतरित हुए है जिनमें ये अंग क्रियाशील थें। इस तथ्य से यह संकेत मिलता है कि अधिकांश (अथवा सभी) जीव समान पूर्वजों से उत्पन्न हुए हैं (नटन स्लिफकिन)।

जीवों में अवशेषी लक्षण अनेक रूपों में पाए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए व्यवहार के पैटर्न, शारिरीक संरचना या जैव रासायनिक प्रक्रिया के रूप में हो सकते हैं। जीवों में अधिकांश दूसरे शारिरीक लक्षणों की तरह किसी जीव जाति में अवशेषी लक्षण उसके जीवन–चक्र के विभिन्न चरणों के अंतर्गत (भ्रूण विकास से लेकर वयस्क होने तक) क्रमिक रूप से प्रकट व विकसित होकर बने रह सकते हैं या लुप्त भी हो सकते हैं। यह जरूरी नहीं है कि अवशेषी लक्षण पूरी तरह व्यर्थ हों। मनुष्य में पाया जाने वाला एक अवशेषी अंग 'कृमिरूप परिशेषिका' (Vermiform Appendix) इस बात का अच्छा उदारहण है। इस अंग का हमारे पाचन क्रिया में कोई महत्व नहीं होता है, परंतु फिर भी इसकी हमारे प्रतिरक्षा प्रणाली में भूमिका होती है और आहार नाल में पाए जाने वाले लाभदायक सूक्ष्मजीवों को बनाए रखने में ये बेहद उपयोगी होते हैं।

इसी तरह की समानता जीवों के आणविक स्तर पर भी देखने को मिलती है – यूकैरियोटिक जीनोमों में कुछ न्यूक्लिक अम्ल के अनुक्रम के कोई जैविक कार्य ज्ञात नहीं होते। इन्हें 'कबाड़ डीएनए' की संज्ञा दी जा सकती है, परंतु यह दर्शाना कठिन है कि जीनोम एक खास हिस्से में कोई अनुक्रम सचमुच अक्रियाशील है। जैविक रूप से यह एक सामान्य तथ्य है कि नॉन– कोडिंग डीएनए से उनका अक्रियाशील होना साबित नहीं होता है।

उपसंहार

अवशेषी रचनाएं जीवों के शरीर में न्यून क्रिया संपादन कर सकती हैं या वे वर्तमान आबादियों में नई भूमिका के लिए उपयोजित हो सकती हैं। पेंग्विन के उदाहरण से इस बात को समझ सकते हैं। इन चिड़ियों के पंख उड़ने के मूल कार्य के स्थान पर पानी के भीतर गति के नए उद्देश्य को पूरा करने के लिए उपयोगी हो गए हैं। इन अंगों को अवशेषी अंग कह सकते हैं क्योंकि इन अंगों ने अपने मूल काम (उड़ने) को छोड़ दिया है इसी तरह एमू चिड़िया के पंख अवशेषी होते हैं, क्योंकि ये पंख उनके दौड़ने के समय संतुलन बनाने का काम करते हैं।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर संक्षेप में हम कह सकते हैं कि विभिन्न स्वरुपों में अवशेषी लक्षण जैव विकास के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

➢ विज्ञान प्रसार
ए–50, इंस्टीट्यूशनल एरिया,
सेक्टर – 62
नोएडा – 201 309 (उत्तर प्रदेश)

HBCSE

भारतीय ज्ञानपरम्परा में अंकों का शाब्दिक विश्लेषण

■ डॉ. रेखा रॉय

समग्र विश्व की यह अवधारणा है कि अधिकांश गणितीय ज्ञान का उद्भव भारत में हुआ। भारतीयों का गणितीय ज्ञान वैदिक काल से ही देखने को मिलता है। अंकगणित, ज्यामिति और त्रिकोणमिति के क्षेत्र में बहुत सारे आविष्कार प्राचीन भारतीयों के द्वारा किये गये।

"यथा शिखा मयूराणां नागाणां मणयो यथा।
तव्देव्देदाङ्शास्त्राणां गणितं मूर्ध्नि संस्थितम्।।"

वेदांग ज्योतिष का यह श्लोक बताता है कि जिस प्रकार मयूरों में शिखायें तथा सर्पों में मणियाँ सर्वोच्च स्थान शीर्ष पर रहते हैं, उसी प्रकार वेदांग शास्त्रों में गणित का स्थान सर्वोपरि है।

भारतवर्ष में गणित की परम्परा वैदिककाल से ही दिखाई देती है। वैदिक साहित्य में विशेष रूप से ब्राम्हणों एवं शुल्बसूत्रों में गणित की पर्याप्त चर्चा की गई है। भारतीय संस्कृत वाङ्मय में परम्परया अंकों को शाब्दिक कूट में लिखा जाता रहा है। गणितिय ग्रन्थों के अतिरिक्त कालगणना का आधार अङ्क न होकर शाब्दिक कूट ही रहा है।

संहितायें कल्पसूत्र और वेदांग उस समय के गणितीय ज्ञान के बारे में पर्याप्त जानकारी देते हैं। यजुर्वेद के शुल्बसूत्रों (या शुल्वसूत्रों) में गणना अंकगणितीय प्रक्रिया, सरल (ऋजु) रेखीय आकृति, रेखागणितीय प्रमेय और बीजगणितीय प्रमेय–इन के सम्बन्ध में जानकारीयों का अगाध संग्रह है। अत्यन्त अमूल्य शुल्वसूत्रों के नाम से यह ज्ञान होता है कि आपस्तम्ब कात्यायन और मानव उस काल के गणितज्ञ ऋषि थें।

वैदिक काल के विद्वानों की यह परम्परा बाद के काल में भी चली आयी जिससे विख्यात गणितज्ञों की सृष्टि हुई और जिनका योगदान गणितविद्या के विस्तार, गहराई और गुणवत्ता की दृष्टि से उत्कृष्ट था।

उद्देश्य

यहाँ इस प्रस्तुतीकरण का उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी भी यह जानें कि भारतीय परम्परा में अंकों के लेखन का आधार क्या था तथा आंकिक गणनायें श्रुत परम्परा में किस प्रकार से जीवित रहीं।

अलबेरूनी के अनुसार विश्व की सभी जातियाँ इस विषय में एक मत हैं कि गणित में संख्याओं के सभी अनुक्रमों का दस के साथ एक विशेष संबंध होता है और प्रत्येक अनुक्रम अपने से पिछले का दसवां भाग और अपने से पहले से दस गुना होता है। अलबेरूनी लिखता है कि मैं विभिन्न देशों के संख्याओं को जानता हूँ। वे भारतीयों से बहुत पीछे हैं। अरबी लोग भी सहस्त्र पर जाकर रूक जाते हैं, किन्तु भारतीय ही ऐसे हैं जिनकी गिनती का क्रम परार्ध तक जाता है। भारतीय लोग गणित में संख्या वाचक चिह्नों का प्रयोग अरबी के समान ही करते हैं। किन्तु कुछ लोग अपनी संख्याओं को शब्दों के द्वारा भी प्रकट कर देते है। जैसे शून्य के लिए आकाश, एक के लिए चन्द्रमा, 2 के लिए आँख, 3 के लिए गुण, 4 के लिए वेद, 5 के लिए बाण या इन्द्रिय, 6 के लिए रस या ऋतु, 7 के लिए पर्वत या मुनि, 8 के लिए वसु, 9 के लिए नन्द तथा 10 के लिए दिशा का प्रयोग करते हैं। अलबेरूनी कहता है कि भारतीयों की भाषा में मौलिक और व्युत्पन्न दोनों प्रकार के शब्दों का बहुत बड़ा भण्डार है। भारतीय एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ कर देते हैं। एक सूर्य के लिए ही उनके यहाँ हजार नाम हैं। हो सकता है प्रत्येक ग्रह के लिए उनके यहाँ एक-एक हजार नाम हों। भारतीयों का इससे कम में काम ही नहीं चल पाता।

अंकों को शब्दों के रूप में लिखने की तीन प्रणालियाँ

1. शाब्दिक प्रणाली
2. वर्णाक प्रणाली
3. कटपयादिमान प्रणाली

1. शाब्दिक प्रणाली :

शाब्दिक प्रणाली वह है जहाँ वस्तुशब्दों की पौराणिक, वैदिक या ऐतिहासिक दृष्टि से एक निश्चित संख्या होती है। जैसे "रस" शब्द – सृष्टि में छह प्रकार के रस मधुर-अम्ल-कषाय-तिक्त-कटु-लवण रूप में पाये जाते हैं। अतः 'रस' शब्द का संख्यात्मक मान 'छह' होगा। इन

मानों को आधार मानते हुए साहित्य, पाण्डुलिपियों एवं संस्कृत की समस्त शाखाओं में इस प्रकार का प्रयोग हुआ है।

2. वर्णांक प्रणाली :

आर्यभट्ट प्रथम ने अपने ग्रन्थ आर्यभट्टीय के प्रथम प्रकरण–दशगीतिकापाद के एक श्लोक में बड़ी–बड़ी संख्याओं को लिखने के लिए वर्णमाला के अक्षरों के उपयोग कर एक सर्वथा मौलिक विधि–वर्णांक प्रणाली का प्रतिपादन किया।

वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गे वर्गाक्षराणि कात् ङमौ यः।
खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा।।

इसके अनुसार वर्णमाला के अक्षरों को आर्यभट्ट ने अधोलिखित मान प्रदान किये–

क	ख	ग	घ	ङ
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
च	छ	ज	झ	ञ
(6)	(7)	(8)	(9)	(10)
ट	ठ	ड	ढ	ण
(11)	(12)	(13)	(14)	(15)
त	थ	द	ध	न
(16)	(17)	(18)	(19)	(20)
प	फ	ब	भ	म
(21)	(22)	(23)	(24)	(25)

य	र	ल	व	श	ष	स	ह
(30)	(40)	(50)	(60)	(70)	(80)	(90)	(100)

अ	इ	उ	ऋ	ऌ	ए	ऐ
10^{15}	10^{2}	10^{4}	10^{6}	10^{8}	10^{10}	10^{12}

ओ	औ
10^{14}	10^{16}

HBCSE

3. कटपयादि मान प्रणाली :

इस प्रणाली में व्यंजनों को निश्चित अंकित मान प्रदान किया गया है। यह प्रणाली मुख्य रूप से ज्योतिषीय गणनाओं में उपयोग में लायी जाती रही है।

शाब्दिक प्रणाली के उदाहरण

भास्कराचार्य के ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में यह परम्परा अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची है। भास्कराचार्य अपने जन्म का उल्लेख करते हुए कहते हैं–

"रसगुणपूर्णमही समशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्ति"

यहाँ रस–6, गुण–3, पूर्ण–0, मही (पृथ्वी)–1, इनको उल्टे क्रम में लिखा जाता है अतः 1036 शक संवत् वर्ष होता है, जिसमें 78 जोड़ देने से ईसवीय सन् आता है अर्थात् 1114 ईसवी में भास्कराचार्य का जन्म हुआ था।

भास्कराचार्य ने नभ की कक्षा का व्यास परिगणित किया है जो आइन्सटाइन–प्रतिपादित व्यास से कुछ न्यून है।

भास्कराचार्य के अनुसार –

"कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्कनखभूभूभृद्भुजङ्गेन्दुभि–
र्ज्योतिः शास्त्रविदो वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः।।"

यहाँ शाब्दिक कूट को अंकों में लिखने पर –

(कोटिघ्नैः + नख–20) – 200000000, नन्द–9, षट्क–6, नख–20, भू–1, भूभृद्–7, भुजङ्ग–8, इन्दु–1, इनको उल्टे क्रम में लिखने पर–18712069200000000 योजन, नभ की कक्षा का व्यास है।

भास्कराचार्य के अनुसार पृथ्वी की आयु –

" गोऽद्रीन्द्वद्रिकृताङ्कदस्रनगगोचन्द्राः शकान्विताः "

अर्थात् – गो (इस शब्द के नव अर्थ माने गए हैं)–9, अद्रि–7, इन्दु–1, अद्रि–7,

कृत (युग)–4, अङक–9, दस्र (अश्विनीकुमार)–2, नग (पर्वत)–7, गो–9, चन्द्र–1, तदनुसार शक संवत् के पूर्व 1972947179 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

पृथ्वी की परिधि, व्यास एवं पृष्ठ क्षेत्रफल

भास्कराचार्य के अनुसार पृथ्वी की परिधि, व्यास और पृष्ठ–क्षेत्रफल की परिगणना इस प्रकार है–

परिधि– "कुपारिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धयः"

कु–पृथ्वी, सप्त–7, अङ्ग (वेदांङ्ग)–6, नन्द–9, अब्धि–4, अर्थात् पृथ्वी की **परिधि 4967 योजन** है। इसी प्रकार

व्यास– " कुभुजङ्गसायकभुवोऽथ "

कु (पृथ्वी)–1, भुजङ्ग–8, सायक–5, भू–1 अर्थात् पृथ्वी की **व्यास 1581 योजन** है। इसी प्रकार

पृष्ठ–क्षेत्रफल– " युगगुणत्रिंशच्छराष्टाद्रयो "

युग–4, गुण–3, त्रिंश–30, शर–5, अष्ट–8, अद्रि–7 अर्थात् पृथ्वी का **पृष्ठ–क्षेत्रफल 7853034 योजन** है।

वर्णांक प्रणाली के उदाहरण :

युगरविभगणाःख्युघृ शशिचयगियिङुशुछ्लृकृङिशिबुण्लृखृषृ।
प्राक्शनिद्युङिविघ्वगुरुखिच्युभ कुजभद्लिझुनुखृ भृगुबुधसौराः।

इस प्रणाली के अनुसार उन्होंनें 'ख्युघृ' अक्षरों के संयोजन से संख्या–4,32,000 को व्यक्त किया।

ख = 2, य = 30, उ = 10^4, घ = 4, ऋ = 10^6

अर्थात्– $(2+30) \times 10^4 + 4 \times 10^6$

= 32 x 10000 + 40,00,000 = 43,20,000

इसी प्रकार 57753336 संख्या को 'चयगियिनुसुचृलु' अक्षरों से व्यक्त किया।

$(6+30+3x10^2+30x10^2+5x10^4+70x10^4+7x10^6+5x10^8$
$= 57753336)$

इसका उच्चारण भी बहुत कठिन है और इसे स्मरण करना भी कठिन हुआ होगा प्रायः इस कारण ही यह वर्णांक प्रणाली प्रसिद्ध न हो सकी हो। परन्तु इसकी मौलिकता और नवीनता को तो स्वीकारना ही पड़ेगा।

वैदिक काल में गणितज्ञों का विश्व को सबसे बड़ा योगदान गणना और उसकी संख्याओं का आविष्कार तथा दशमान पद्धति है। उन्होंने 10 को गणना प्रणाली का आधार बनाया और दशमान पद्धति का आविष्कार किया। दशमान पद्धति में भी सबसे अधिक महत्व शून्य का है। विज्ञान की और विशेषतः संगणक क्षेत्र की जो प्रगति आज हो रही है उसकी कल्पना भी शून्य के बिना नितान्त असम्भव है।

श्लेगल (Schlegal) के अनुसार, भारतीयों द्वारा किये गये आविष्कारों में वर्णमाला के बाद 'दाशमिक स्थानमान पद्धति' का आविष्कार सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। दाशमिक स्थानमान पद्धति शून्य के प्रयोग पर आधारित है। यदि शून्य और दाशमिक स्थानमान पद्धति का आविष्कार न हुआ होता तो भारतीय अंक, अन्य अंकों से न तो श्रेष्ठ समझे जाते और न ही उनका सर्वत्र आदर होता।

यहाँ हमने विशेष रूप से शब्द और वर्णमान की चर्चा की है। भारतीय गणितज्ञ अंको को शाब्दिक कूट में क्यों लिखा करते थें?

इस शोधपत्र के आधार पर यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि भारतीय गणितज्ञ अपने ग्रन्थों की छन्दबद्ध रचना किया करते थे क्योंकि हमारे यहाँ श्रुतपरम्परा रही है अतः छन्दबद्ध रचना होने के कारण मनुष्य के स्मृतिपटल पर गणितीय अवधारणाएं अमिट हो जातीं थीं। जिनकी गेयपद्धति का गणितज्ञों पर ही नहीं प्रत्युत समाज पर भी दीर्घकालिक प्रभाव पड़ा है। वैदिक साहित्य की जो छन्दबद्ध गेयता है उसी का प्रभाव है जो ज्योतिष एवं गणित के ग्रन्थों में अंकों को शाब्दिक कूटों में लिखा गया जो वास्तव में भारतीय गणित की विशेष

योग्यता थी। सम्पूर्ण विश्व अपनी अज्ञानता के कारण उसे केवल काव्य ही समझता रहा जो कि विशुद्ध रूप से गणित का ही गीत था, जबकि विश्व उसे गड़रियों का गीत कहकर झूठी आत्ममुग्धता का शिकार होता गया।

संदर्भ सूची

1. या. जु. ज्योतिष श्लोक क्र. 4
2. पृ. 19 संस्कृत में विज्ञान, विद्याधर शर्मा 'गुलेरी' संस्कृत भारती
3. पृ. 235, संस्कृत साहित्य का वृहद् इतिहास (ज्योतिष खण्ड) उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान।
4. आर्यभट्टीयम् गीतिपाद
5. श्लो. सं 58 प्रश्ना. गोला. सिद्धान्तशिरोमणि
6. श्लो. सं 67 गो.भु. सिद्धान्तशिरोमणि
7. श्लो. सं 28 ग. का. सिद्धान्तशिरोमणि
8. श्लो. सं 1 ग. म. भू. सिद्धान्तशिरोमणि
9. श्लो. सं 1 ग. म. भू. सिद्धान्तशिरोमणि
10. श्लो. सं 1 ग. म. भू. सिद्धान्तशिरोमणि
11. 1.3 आर्यभट्टीय

➢ विभागाध्यक्ष/ समन्वयक
हिंदी, संस्कृत, पत्रकारिता, अनुवाद,
ललितकला एवं गर्भसंस्कार तपोवन केन्द्र,
अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय,
भोपाल
मोबाइल – 09826662492

HBCSE

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विज्ञान सीखने–सिखाने की प्रभावी विधाएं

■ डॉ. सुनील कुमार गौड़

स्कूलों में विज्ञान के पठन–पाठन में अनेक विधियाँ प्रयुक्त होती हैं। एक योग्य विज्ञान शिक्षक देश, काल तथा परिस्थितियों के अनुरूप उपयुक्त शिक्षण–अधिगम विधि का चयन करके सीखने और सिखाने की प्रक्रिया को प्रभावी बनाता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा–2005 क्रियाकलाप आधारित नवाचारी विज्ञान शिक्षण–अधिगम हेतु मार्गदर्शन तथा यथोचित निर्देश प्रदान करता है। इस दस्तावेज की संस्तुति के अनुसार विज्ञान अधिगम को प्रभावी बनाने के लिए अनुसंधान विधि, परियोजना विधि, समस्या–समाधान विधि तथा आगमन विधि उपयोगी होती हैं। विज्ञान के शिक्षण–अधिगम की इन विधियों से विद्यार्थी स्वयं ज्ञान का निर्माण करते हैं और उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है। शिक्षक इस प्रक्रिया में मार्गदर्शक तथा सुगमकर्ता की भूमिका निभाते हैं।

HBCSE

विज्ञान की समझ

विज्ञान में नवीन ज्ञान के सृजन करने की एक सुविकसित पद्धति और तरीका है। इसके लिए जो भी प्रक्रियाएं की जाती हैं, वे विज्ञान हैं। ज्ञान का सृजन करने के लिए विभिन्न प्रकार के कौशल विकसित करना भी विज्ञान है। विज्ञान प्रक्रिया एवं उत्पाद दोनों है। विज्ञान के नियम एवं सिद्धांत उत्पाद हैं जबकि इन्हें प्राप्त करने का तौर–तरीका प्रक्रिया में सम्मिलित है। विज्ञान में नवीन ज्ञान का सृजन मुख्यतः प्रक्रिया पर निर्भर करता है। विज्ञान की प्रक्रिया में सोचने–विचारने का तरीका भी सम्मिलित है। इसे वैज्ञानिक अभिवृत्ति कहा जाता है। इसका अर्थ है–जानने की जिज्ञासा, ईमानदारीपूर्ण संदेह, दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता और प्रमाण के आधार पर अपना निर्णय देना। विज्ञान सामाजिक रहन–सहन के स्तर को ऊंचा उठाने और व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय सुरक्षा में योगदान भी देता है। विज्ञान एक बौद्धिक प्रयास है। बच्चों को विज्ञान का विशेषज्ञ होना आवश्यक है। बच्चों के चारों ओर क्या हो रहा है, क्या समस्या है, वे इसे दूर करने में वैज्ञानिक नजरिए से क्या कार्य कर सकते हैं, यह निर्णय और निश्चय करना विज्ञान में शामिल है।

विज्ञान एवं समाज

विज्ञान हमारे सामाजिक जीवन को उन्नत बनाने का कार्य करता है। यह एक सामाजिक उद्यम है। विज्ञान का प्रभाव समाज पर पड़ता है और समाज का प्रभाव विज्ञान पर पड़ता है। विज्ञान केवल विषयमात्र न होकर छोटी, बड़ी सभी प्रकार की समस्याओं को हल करने की विशेष प्रणाली है। समस्याएं विद्यार्थियों के चारों ओर विद्यमान रहती हैं, आवश्यकता यह है कि विद्यार्थी इन परिवेशीय समस्याओं को समझें तथा उसके समाधान हेतु वैज्ञानिक ढ़ंग से कार्य करें। हमें विद्यार्थियों को वैज्ञानिक ज्ञान सृजन के लिए उकसाना होगा, उनके द्वारा किए गए वैज्ञानिक योगदान को उचित प्लेटफार्म पर लाकर उनकी सराहना करनी होगी। जिससे वे समाज को उन्नत बनाने में अपना और अधिक योगदान दे सकें।

चित्र 1 – भौतिक तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थी एवं विज्ञान शिक्षक की भूमिका

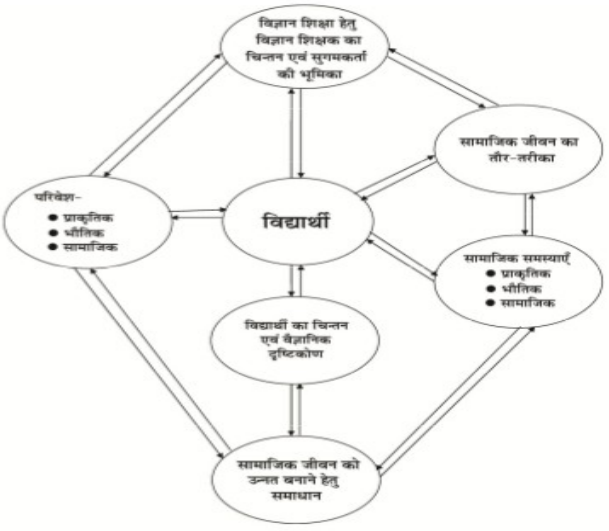

भारत का संविधान, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं विज्ञान शिक्षण–अधिगम की प्रक्रिया

भारतीय संविधान के भाग 4 क नागरिकों के मूल कर्तव्य, अनुच्छेद 51 क (ग) में वर्णित वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानवता और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें : सभी भारतीयों में जिज्ञासा की भावना, दुनिया भर में क्या हो रहा है उसके बारे में जानने और उससे

कुछ सीखने की उत्कण्ठा जाग्रत हो। भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण और जिज्ञासा की प्रवृत्ति को बढ़ावा दे ताकि हम द्रुत गति से बदलती हुई दुनिया के साथ चल सकें। भारतीय संविधान यह भी अपेक्षा करता है कि हम विज्ञान और प्रौद्योगिकी के साथ–साथ मानवता के दृष्टिकोण को अपनाए रखें क्योंकि अंततः विज्ञान के सभी क्रियाकलापों का उद्देश्य मानव का विकास तथा उसके जीवन और संबंधों में गुणात्मक सुधार लाना है।

इस लक्ष्य की संप्राप्ति विज्ञान की प्रभावी शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के माध्यम से ही संभव है। इस हेतु हमें और अधिक कार्य करने की आवश्यकता है। प्रक्रिया आधारित बालकेन्द्रित शिक्षण विधियों का उपयोग करके हम भारतीय नागरिकों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने का कार्य और अधिक प्रभावी तरीके से कर सकेंगे।

विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास

इस बात के बहुत प्रमाण हैं कि विद्यार्थी स्कूल जाने से पहले की अवस्था में ही विज्ञान के छोटे–छोटे सिद्धांत सीख लेते हैं। ये विज्ञान की प्रक्रिया का भी अच्छे ढ़ंग से प्रयोग करते हैं। विद्यालय में बच्चों को प्रारंभिक स्तर से ही विज्ञान सीखने को प्रवृत्त करना आवश्यक है। विज्ञान सीखने के लिए बच्चों को विज्ञान का उचित शैक्षिक वातावरण तथा प्रोत्साहन भी आवश्यक है (गौड, एस. के. 2011)। परंतु ऐसा भी देखा गया है कि विज्ञान शिक्षा रटने तथा सूचना पर आधरित है। विद्यार्थी विज्ञान के उत्पाद (नियमों एवं सिद्धांतों) को रटकर परिक्षा में अच्छे अंक प्राप्त कर लेते हैं। प्रतियोगी परिक्षाओं में चयन भी कर लिया जाता है, परंतु नवीन ज्ञान के सृजन की मात्रा कम है।

वैज्ञानिक प्रकाशनों की संख्या में वैश्विक रूप से भारत का 9 वां स्थान है। दर्ज किए गए पेटेंटों की संख्या में इसका 12 वां स्थान है। भारतीय प्रकाशनों की समग्र वार्षिक विकास दर (सीएजीआर) लगभग 12±1% है और भारत की हिस्सेदारी वर्ष 2001 में 1.8 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2011 में 3.5 प्रतिशत हो गई है। परन्तु शीर्ष 1 प्रतिशत प्रभावकारी जरनलों में भारतीय प्रकाशनों का प्रतिशत मात्र 2.5 प्रतिशत रहा है। वर्ष 2020 तक वर्तमान स्तर से प्रकाशनों के वैश्विक हिस्से को दोगुना तथा शीर्ष 1 प्रतिशत जरनलों में पत्रों की संख्या को अवश्य चौगुना करना चाहिए (एसटीआई 2013)।

हमें नवीन ज्ञान के सृजन की मात्रा को बढ़ाना होगा। विज्ञान प्रयोग तथा क्रियाकलापों के द्वारा करके सीखने का विषय है। विद्यालयी विज्ञान शिक्षा में विज्ञान की शिक्षण–अधिगम के ऐसे तौर–तरीके अपनाने होंगे जो बाल केंद्रित तथा प्रक्रिया आधारित हों। विद्यालयों को विज्ञान के नवीन ज्ञान सृजन के कारखाने बनाने होंगे। विद्यार्थी विज्ञान के नवीन ज्ञान की रचना करें, वैज्ञानिक तथा अन्वेषक की भाँति कार्य करें, विद्यार्थियों के उच्चस्तरीय शोधपत्र प्रकाशित हों, ऐसे विज्ञान शिक्षा की आवश्यकता है।

विज्ञान के शिक्षण–अधिगम की बालकेन्द्रित नवाचारी विधियाँ

विद्यार्थियों के चहुमुखी विकास हेतु विद्यालयों में विज्ञान के शिक्षण–अधिगम के लिए अनेक विधियां प्रयुक्त की जाती हैं। एक कुशल विज्ञान शिक्षक देश–काल–परिस्थिती के अनुरूप विज्ञान शिक्षण–अधिगम की उपयुक्त विधियों का चयन करके सीखने और सिखाने की प्रक्रिया को प्रभावी बनाता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 क्रियाकलाप आधारित नवाचारी विज्ञान शिक्षण–अधिगम किए जाने के लिए दार्शनिक तथा कार्यकारी दिशा प्रदान करता है। इस दस्तावेज में वर्णित पाठ्यचर्या के मार्गदर्शक सिद्धांत, ज्ञान निर्माण के सिद्धांत एवं प्रक्रिया, ज्ञान के निर्माण में शिक्षक की भूमिका आदि महत्वपूर्ण तथ्यों के आलोक में विद्यालयों में ज्ञान सृजन के लिए यह आवश्यक है कि विज्ञान सीखने–सिखाने की प्रभावी विधियाँ प्रयुक्त की जायें। सतत एवं व्यापक आकलन की ऐसी पद्धति अपनानी होगी जो शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया तथा नवीन ज्ञान के सृजन का वास्तविक मूल्यांकन कर सके। विज्ञान के क्रियाकलाप पर आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के साथ–साथ व्यापक एवं सतत मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है। प्रभावी शिक्षण–अधिगम के लिए विद्यार्थियों को सतत रूप से प्रोत्साहित करते रहना होगा तथा आवश्यकता पड़ने पर 'अतिरिक्त शिक्षण' भी देना होगा (शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009)।

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में विज्ञान सीखने की प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के लिए विज्ञान शिक्षण–अधिगम की निम्नवत बाल केन्द्रित विधियों–अनुसंधान विधि (ह्यूरिस्टिक विधि), परियोजना विधि, समस्या–समाधान विधि, आगमन विधि का उपयोग किया जाना उचित होगा; क्योंकि ये सभी विधियाँ क्रियात्मक तथा प्रयोग आधारित हैं। इनमें रटने का कोई स्थान नहीं है। माध्यमिक स्तर पर विज्ञान के कई संबोध/उपसंबोध ऐसे हैं जिनके शिक्षण–अधिगम के लिए ये विधियाँ उपयोगी हैं –

1. अनुसंधान विधि (Huristic Method) : इसमें विद्यार्थी स्वयं अन्वेषक के रूप में कार्य करते हैं। इसके द्वारा विद्यार्थियों में तार्किक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है तथा विद्यार्थी नवीन ज्ञान की खोज करते हैं।

अनुसंधान विधि के चरण

1. उद्देश्यों का निर्धारण
2. कार्ययोजना का निर्माण
   - निरीक्षण
   - वर्गीकरण
   - निष्कर्ष
   - प्रयोग
   - परिक्षण
3. कार्ययोजना का क्रियान्वयन
4. अभिलेखीकरण

अनुसंधान विधि द्वारा शिक्षण–अधिगम का उदाहरण –

कक्षा 12 – जीव विज्ञान हेतु एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यपुस्तक के **अध्याय 15 – जैवविविधता एवं संरक्षण (Biodiversity and Conservation)** का शिक्षण–अधिगम इस विधि से प्रभावी ढ़ंग से किया जा सकता है। इसके लिए निम्नवत चरण अपनाए जाने उचित होंगे–

चरण 1 – जैवविविधता एवं संरक्षण संबंधी नवीन ज्ञान के सृजन हेतु उद्देश्यों का निर्धारण कर लें।

चरण 2 – विद्यार्थी अपनी सुविधानुसार समूह बनाकर जिस परिवेश में कार्य करना चाहते हो उसका चयन करके नज़री नक्शा तथा विस्तृत कार्ययोजना तैयार कर लें।

चरण 3 – जैवविविधता का रजिस्टर बनाना – निर्धारित अध्ययन क्षेत्र (Catchment area) में पाए जाने वाले जंतुओं तथा पादपों के विशिष्ट लक्षण (Characteristic features) को नोट कर लें। जन्तु तथा पौधे का फोटोग्राफ ले लें, पौधों की हरबेरियम फाइल बना लें। वर्गीकरण विज्ञान (Taxonomy) के आधार पर पहचान करें।

HBCSE

चरण 4 – पहचान न होने की स्थिति में जन्तु अथवा पादप को इस हेतु पूर्ण विवरण सहित उच्च स्तरीय वैज्ञानिक संस्थान को प्रेषित करें, वहाँ से पहचान होकर आ जायेगी।

चरण 5 – अपने कार्य का अभिलेखीकरण करके शोध जरनल में प्रकाशित कराए।

अनुसंधान विधि से जैवविविधता का शिक्षण–अधिगम करते हुए सामान्यतः विद्यार्थियों को जाने पहचाने जंतु और पादप मिलेंगे, परंतु हो सकता है कि किसी जंतु या पादप की पहचान विद्यार्थी के माध्यम से हो जाए तो वह विद्यार्थी उस पादप या जंतु का खोजकर्ता बन जायेगा और उसका नाम होगा। ऐसे कार्य को विज्ञान सेमिनार या अन्य उच्च स्तर पर विद्यार्थियों के नाम प्रकाशित किया जाना आवश्यक है।

विद्यार्थियों हेतु प्रदत कार्य (Assignment) – विद्यार्थी जैवविविधता के संरक्षण हेतु स्वयं कार्ययोजना तैयार करके कार्य करेंगे। कृत कार्य का अभिलेखीकरण करके प्रकाशित कराएंगे।

HBCSE

2. परियोजना विधि (Project Method) –

इसके द्वारा विद्यार्थियों में सृजनात्मकता, वैज्ञानिक अभिवृत्ति (Scientific Attitude) तथा खोजपूर्ण दृष्टिकोण का विकास होता है। इसमें विद्यार्थियों को करके सीखने तथा अनुभवों द्वारा सीखने का अवसर मिलता है।

परियोजना विधि के चरण

1. उद्देश्य निर्धारण
2. परियोजना की तैयारी
3. परियोजना का क्रियान्वयन
4. परियोजना का अभिलेखीकरण

परियोजना विधि द्वारा शिक्षण–अधिगम का उदाहरण –

कक्षा 10 – विज्ञान हेतु एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यपुस्तक के **अध्याय 15 – हमारा पर्यावरण के अंतर्गत ठोस अपशिष्ट प्रबंधन (Solid Waste Management)** संबोध का शिक्षण–अधिगम इस विधि द्वारा प्रभावी ढ़ंग से किया जा सकता है। इसके लिए

निम्नवत चरण अपनाए जाने उचित होंगे –

- प्रोजेक्ट का नाम – जैविक अपशिष्ट पदार्थों के उपयोग से वर्मी कंपोस्ट बनाना।
- प्रोजेक्ट का क्षेत्र – विद्यालय परिसर एवं आसपास का क्षेत्र।

चरण 1. प्रोजेक्ट के उद्देश्य –

1. अपने आसपास के अपशिष्ट पदार्थों का निस्तारण एवं प्रबंधन करना।
2. परिवेशीय स्वच्छता के प्रति जागरूकता पैदा करना।
3. अनुपयोगी पदार्थों को उपयोगी पदार्थों में बदलकर उद्यमिता विकास की प्रवृत्ति विकसित करना।
4. समूह में कार्य करने की भावना का विकास करना।

चरण 2. प्रोजेक्ट हेतु आवश्यक सामग्री/तैयारी – विभिन्न अपशिष्ट पदार्थ, कुदाल, फावड़ा, दराती, जूट, बैग, केचुएं, रबर या प्लास्टिक के दस्ताने, कपड़ों के रूमाल, लकड़ी के खंभें आदि।

चरण 3. परियोजना का क्रियान्वयन – विद्यालय परिसर में मौजूद समस्त प्रकार का कूड़ा, घास–फूस, अनुपयोगी पेड़–पौधे, कागज एवं रसोई घर के अपशिष्ट को उचित स्थान पर एकत्र करें। एकत्र किए गए कूड़े में से जैविक एवं अजैविक अपशिष्टों को पृथक करें। अजैविक अपशिष्टों को पुनः उपयोग/पुनःचक्रण हेतु किसी कबाड़ी को बेच दें।

विद्यालय परिसर के किसी उपयुक्त कोने में गहरा कंपोस्ट गड्ढा तैयार करें। गड्ढे में लगभग 3 इंच मोटी गोबर की परत बिछा दें। अब एकत्र किए गए समस्त जैविक अपशिष्टों को इस गड्ढे में डालकर केंचुएं डाल दें। पूरी तरह भरे हुए कंपोस्ट गड्ढे में थोड़ा पानी डालकर उसे ऊपर से गीली मिट्टी की एक पतली परत से ढ़क दें। निश्चित अवधि के पश्चात कंपोस्ट गड्ढे को खोलें। अब गड्ढे में वर्मी कंपोस्ट खाद पूरी तरह से तैयार है। प्राप्त खाद को विद्यालय के उद्यान/फुलवारी में लगे पेड़–पौधों में डालें।

चरण 4. परियोजना का अभिलेखीकरण – विद्यार्थी समूह परियोजना रिपोर्ट का विस्तृत रूप से अभिलेखीकरण करके प्रकाशित करायेंगे।

HBCSE

इस प्रकार उम्र तथा कक्षा के अनुरूप विद्यार्थियों को थोड़े जटिल परियोजना कार्य भी दिए जाएं।

3. समस्या–समाधान विधि (**Problem Solving Method**) –

इसके अंतर्गत वैज्ञानिक तरीके से समस्या का समाधान ढूंढने हेतु योजनाबद्ध ढ़ंग से कार्य किया जाता है। इसमें मानसिक चिंतन तथा मानसिक निष्कर्षों पर बल दिया जाता है। इसके निम्नवत चरण हैं –

समस्या – समाधान विधि के चरण

1. समस्या का चयन करना
2. समस्या का प्रस्तुतीकरण
3. परिकल्पनाओं का निर्माण
4. आंकड़ों का संग्रहण एवं विश्लेषण
5. निष्कर्ष निकालना

समस्या – समाधान विधि द्वारा शिक्षण–अधिगम का उदाहरण –

कक्षा 10 – विज्ञान हेतु एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यपुस्तक के **अध्याय 16 – प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन (Management of Natural Resources) के अंतर्गत 'जल संग्रहण'** संबोध का शिक्षण – अधिगम समस्या– समाधान विधि द्वारा प्रभावी ढ़ंग से किया जा सकता है। इसके लिए निम्नवत चरण अपनाए जाने उचित होंगे–

चरण 1. समस्या – अपने निवास क्षेत्र के आसपास जल संग्रहण की परम्परागत पद्धति का पता लगाना।

चरण 2. समस्या का प्रस्तुतीकरण जल संग्रहण की परम्परागत पद्धति का पता लगाने संबंधी समस्या का पूर्ण विवरण तथा समाधान हेतु आंकड़ों के संग्रहण का तरीका प्रस्तुत किया जायेगा।

चरण 3. परिकल्पना निर्माण के अंतर्गत जल संग्रहण की परम्परागत पद्धति के संभावित स्थल एवं उपाय बताये जायेंगे।

HBCSE

चरण 4. आंकड़ों का संग्रह तथा विश्लेषण में समस्या से संबंधित आंकड़े संग्रहीत करके उनका विश्लेषण किया जायेगा।

चरण 5. आंकड़ों का विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाला जायेगा।

कृत कार्य का अभिलेखीकरण करके जरनल में प्रकाशित किया जायेगा। इसी प्रकार कक्षा 9 विज्ञान हेतु एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यपुस्तक के **अध्याय 14 – प्राकृतिक संपदा के अंतर्गत जल की उपलब्धता बढ़ाने के लिए जल संग्रहण की तकनीक** संबोध का भी समस्या–समाधान विधि द्वारा प्रभावी शिक्षण–अधिगम कराया जा सकता है।

4. आगमन विधि (**Inductive Method**) –

इस विधि में अनुभवों, प्रयोगों तथा उदाहरणों का विस्तृत अध्ययन करके नियम या सिद्धांतो का प्रतिपादन किया जाता है। इसमें बालक अपनी मानसिक शक्तियों तथा पूर्वज्ञान का प्रयोग करता है। यह 'इंक्वायरी पाठ्यचर्या, 'इंडक्टिविस्ट' (आगमनात्मक) सिद्धांत पर आधारित है, जिसमें बिना किसी मत या पूर्वग्रहों के अवलोकनों से सीधे परिणामों पर पहुँचा जाता है (एनसीएफ 2005)।

आगमन विधि के चरण

1. विशिष्ट उदाहरणों का प्रस्तुतीकरण
2. निरीक्षण करना
3. सामान्यीकरण
4. परीक्षण

आगमन विधि द्वारा शिक्षण – अधिगम का उदाहरण –

कक्षा 11 – जीव विज्ञान हेतु एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यपुस्तक के **अध्याय 5 – पुष्पी पादपों की आकारिकी के अन्तर्गत पत्ती** उपसंबोध का शिक्षण–अधिगम भली–भाँति किया जा सकता है। इसके लिए निम्नवत कार्य करें–

चरण 1. विशिष्ट उदाहरणों का प्रस्तुतीकरण – विद्यार्थियों के समूह बनाकर आस–पास के परिवेश से विभिन्न प्रकार के पौधों की पत्तियां एकत्र करें।

चरण 2. पत्तियों का निरीक्षण/अवलोकन करें।

चरण 3. सामान्यीकरण करके नियमों का प्रतिपादन करें, कि एक समान विशिष्ट लक्षणों की पत्तियों वाले पौधों की क्या–क्या विशेषताएं हैं।

चरण 4. प्रतिपादित नियम का परीक्षण करें।

चित्र 2 – विभिन्न प्रकार की पत्तियाँ

विज्ञान शिक्षण–अधिगम की उपयुक्त विधि का चयन –

वैसे तो विज्ञान शिक्षण की अनेक विधियाँ हैं लेकिन कौन सी शिक्षण विधि कब प्रयुक्त की जाए, इसके चयन में विज्ञान शिक्षक को पारंगत होना आवश्यक है। कुशल विज्ञान शिक्षक में एक ही प्रकरण को कई विधियों से सिखाने की क्षमता होनी चाहिए। बच्चों की उम्र, कक्षा, मनोविज्ञान, स्थानीय संसाधनों की उपलब्धता, बच्चों का स्थानीय परिवेश, समय की मांग, विज्ञान की प्रकृति, विज्ञान की पाठ्यचर्या की वैधता तथा अन्य परिस्थितियों को ध्यान में रखकर शिक्षण–अधिगम विधि का चयन किया जाना आवश्यक है। इसे संक्षेप में देश–काल–परिस्थिति के अनुरूप शिक्षण विधि का चयन कहा जा सकता है। कुशल विज्ञान शिक्षक वह है जो शिक्षण–अधिगम संसाधनों (Teaching Learning Resources) की कम उपलब्धता होते हुए भी प्रभावी शिक्षण–अधिगम करने में समर्थ हो। नवीनतम शोध तथा अनुभव बताते हैं कि विज्ञान के प्रभावी शिक्षण–अधिगम के लिए उपर्युक्त वर्णित नवाचारी बाल केन्द्रित शिक्षण विधियों का उपयोग किया जाना सनीचीन होगा।

विज्ञान के शिक्षण–अधिगम की इन विधियों से विद्यार्थी स्वयं ज्ञान का निर्माण करते हैं

और उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है। शिक्षक इस प्रक्रिया में मार्गदर्शक तथा सुगमकर्ता की भूमिका निभाते हैं। हमें इस प्रक्रिया को बढ़ावा देना है, इससे हमारे विद्यालय ज्ञान की रचना के केन्द्र बनेंगे। विद्यालयों में रचित ज्ञान को पेटेंट कराकर हम दुनिया भर में स्थापित कर सकेंगे।

विज्ञान की शिक्षण योजना –

समस्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रभावी शिक्षण–अधिगम के लिए शिक्षण से पूर्व शिक्षण योजना का निर्माण किया जाना आवश्यक है। शिक्षण की अनेक योजनाएं हैं, परंतु एन.सी.एफ. 2005 में बताए गए ज्ञान निर्माण के सिद्धातों को ध्यान में रखते हुए रचनावाद (Constructivism) पर आधारित 6 Es शिक्षण योजना उपयोगी है–

6 Es शिक्षण योजना

1. वातावरण निर्माण (Engage)
2. खोजपरक गतिविधियां (Explore)
3. व्याख्या (Explain)
4. विस्तारीकरण (Elaborate)
5. मूल्यांकन (Evaluate)
6. अर्जित ज्ञान को स्कूल के बाहरी जीवन से जोड़ना (Extend)

HBCSE

उत्तराखंड के चयनित विद्यालयों में इस प्रकार का नवाचारी विज्ञान शिक्षण–अधिगम गतिमान है। राज्य के प्रत्येक जनपद से विद्यालय चयनित किए गए हैं जिनकी उच्च प्राथमिक स्तर की कक्षाओं में एन.सी.एफ. 2005 की संस्तुतियों के अनुरूप विज्ञान शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को उन्नत करने का प्रयास गतिमान है। ऐसा करके हम एस. टी. आई. नीति 2013 में उल्लिखित लक्ष्य, वर्ष 2020 तक भारत को विश्व की शीर्ष पांच शक्तियों में स्थान दिलाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे।

➢ पाठ्यचर्या विभाग
राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद
देहरादून – 248 008
ई–मेल : gaursk9@gmail.com

सन्तुलित आहार

■ डॉ. उमेश कुमार शुक्ल

सन्तुलित आहार/भोजन को आज की भाषा में बैलेंस्ड डाइट (Balanced Diet) कहते हैं। सन्तुलित आहार जिसमें आहार–विज्ञान और मानव शरीर–विज्ञान के अनुसार वे सभी पोषक तत्व उचित मात्रा में मौजूद हो जो जीवन निर्वाह के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो भोजन विभिन्न रासायनिक पदार्थों के सम्मिश्रण से बना होता है। करीब 50 रासायनिक पदार्थ भोजन में उपस्थित रहते हैं जो कि शरीर के लिए आवश्यक होते हैं, जो शरीर के विविध क्रियाओं में भाग भी लेते हैं इन्हें पौष्टिक तत्व कहा जाता है। अलग–अलग भोज्य पदार्थों में इन पौष्टिक तत्वों का अनुपात अलग–अलग होता है यथा प्रोटीन व अमिनो एसिड, कार्बोहाइड्रेट, वसा व वसीय अम्ल, खनिज लवण, विटामिन्स एवं जल होते हैं।

आहार–विज्ञान का इतिहास केवल आहार तक ही सीमित नहीं है इसका क्षेत्र सम्पूर्ण विज्ञान में निहित है। यथा मानव क्रिया विज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, रसायनशास्त्र, समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान आदि। इन सभी विषयों के सहयोग से आहार विज्ञान निरंतर प्रगति पर है। स्वस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए और शरीर के समुचित विकास व वृद्धि के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि मनुष्य के जीवन में सन्तुलित आहार लेने के लिए वैज्ञानिक पद्धति की मदद ली जाए। सन्तुलित आहार में प्रोटीन, कार्बोज, वसा, खनिज लवण, जल तथा सभी प्रकार के विटामिन उचित मात्रा में होते हैं जिनसे शरीर की सभी आवश्यकतायें पूरी हो जाती है। यदि उपयुक्त खाद्य तत्वों में से किसी एक ही खाद्यतत्व का सेवन किया जाये तो स्वाभाविक है कि उससे शरीर की अनेक अन्य आवश्यकतायें पूरी न हो सकेंगी फलतः शरीर धीरे–धीरे गिरके नष्ट हो जायेगा।

क्या है सन्तुलित भोजन :

सामान्यतया एक मनुष्य प्रतिदिन कौन–कौन से पोषक तत्व और कितनी–कितनी मात्रा में खाए जिससे उसके सभी शारिरीक आवश्यकतायें पूरी हो जाए और वह रोग मुक्त होकर उत्तम स्वास्थ्य और लम्बी आयु को प्राप्त हो सके। यदि मनुष्य अल्प पोषण (Under Nutrition) में से अपर्याप्त (Inadequate) पोषक तत्व लेता है तो वह तरह–तरह के संक्रमण तथा रोग से

ग्रासित हो जाता है। यह संक्रमण न केवल पोषण स्तर में गिरावट लाते हैं वरन इनके रहते व्यक्ति अपने कार्य पर लगातार अनुपस्थित रहता है। परिणाम स्वरूप उसकी आयु में कटौती होने लगती है। किसी भी प्राणी का रक्त तभी शुद्ध समझा जाता है जब उसमें रासायनिक प्रक्रिया (Chemical Process) के फलस्वरूप 80 प्रतिशत क्षारीय तत्व तथा 20 प्रतिशत अम्लीय तत्व हो। यानी यदि हमारे प्रतिदिन के भोजन में एक भाग अम्लीय खाद्य पदार्थ हो तो उसमें उसका चार गुना क्षारीय खाद्य पदार्थ होना चाहिए तभी हमारे आरोग्य की रक्षा सम्भव हो सकती है अन्यथा नहीं।

जब शरीर के रक्त में अम्लीय एवं क्षारीय के इस 1:4 के अनुपात में कमी या अधिकता हो जाती है अथवा रूधिर में क्षार युक्त खाद्य पदार्थ के कम उपयोग के कारण क्षारत्व की कमी और अम्लत्व की अधिकता हो जाती है तो प्रकृति रूधिर और शरीर के अन्य तन्तुओं में से क्षारत्व खींचकर शरीर के पोषण के काम में लगाने के लिये बाध्य होती है। परिणाम यह होता है कि शरीर का रूधिर और अन्य तन्तु जिनसे क्षारत्व खींच लिया जाता है वो निःसत्व निर्बल और रोगी हो जाते हैं। स्नायु और मज्जा की रचना के लिए रक्त में अम्लत्व की बहुत थोड़ी मात्रा चाहिये। इससे अधिक अम्लत्व का रूधिर में होना तो उसका विषाक्त बनना और अत्यन्त भयावह है। यदि रक्त में क्षारीय तत्व का अभाव हो जाता है तो उस स्थिति में श्वेत कणों की हमारे उत्तम स्वास्थ्य के लिए काम करने की शक्ति क्षीण हो जाती है तथा शरीर यन्त्र को परिचालित करनेवाली सारी व्यवस्था ही नष्ट–भ्रष्ट हो जाती है। इसके विपरीत रूधिर में क्षारत्व वह वस्तु होती है जो छीजे हुये तन्तुओं की मरम्मत करती है। बीज कोषों (Cells) को नवजीवन प्रदान करती है तथा हमें रोगों से लड़ने की शक्ति देती है। एक वाक्य में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि शरीर में क्षारत्व के बिना हम एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते हैं।

मधुमेह, नेत्र रोग सभी प्रकार के ज्वर वातव्याधियाँ, पेट के रोग तथा हर प्रकार की पाचन खराबियां आदि सभी रोग केवल रक्त में क्षार की कमी हो जाने से उत्पन्न होते हैं। कुछ लोगों/Doctors का मत है कि अम्ल विष के शरीर द्वारा सोखे जाने का अंतिम परिणाम और क्षारत्व का शरीर में प्रभाव ही मृत्यू है। शरीर में जाकर भोजन क्षार या अम्ल जातीय पदार्थ में बदल जाता है। भोजन पहले ही आक्सीजन की अग्नि से पकता है तत्पश्चात जल का राख बनता है। उस राख में जो खनिज लवण विद्यमान होते हैं वे ही शरीर के भीतर गलकर अमलत्व अथवा क्षारत्व में वृद्धि करते हैं। कई प्रकार के खनिज खाद्य पदार्थों में पाये जाते हैं उनमें से

कुछ जैसे सोडियम, पोटैशियम, कैल्शियम तथा लोहा आदि शरीर में क्षारत्व उत्पन्न करते हैं।

किसी खाद्य पदार्थ के स्वाद में खटास मालुम करके ही उसे अम्ल जातीय खाद्य वस्तु या खटायी नहीं मान लेना चाहिये क्योंकि किसी भी खाद्य वस्तु की प्रक्रिया खाने के अमाशय में पहुँचकर सभी क्षारीय तत्व के रूप में बदल जाते हैं और उनका खट्टा अंश उसी में विलुप्त हो जाता है। क्षार धर्मी खाद्य पदार्थ में केवल तीन ही प्रकार की खटास पायी जाती है–

1. मैलिक एसिड
2. टारटेरिक एसिड
3. सिट्रिक एसिड

ये तीन ही शरीर के लिए अत्यन्त लाभप्रद है। अन्य सभी प्रकार की खटाइयाँ अम्ल कारक होती हैं और शरीर को हानि पहुँचाती हैं। नींबू जातीय सभी फल सिट्रिक एसिड के भंडार होते हैं। बेदाना, काली किशमिश तथा टमाटर में भी यह एसिड पाया जाता है। नाशपाती, सेब, अंगूर और टमाटर में मैलिक एसिड की प्रचुरता होती है तथा अंगूर में स्थित टारटरिक एसिड के कारण एक गुणकारी एवं क्षार धर्मी खाद्य पदार्थ पाया जाता है।

उपयोगी क्षारीय खाद्य पदार्थ	उपयोगी अम्लीय खाद्य पदार्थ
सभी ताज़े पके और खट्टे फल	पनीर
दूध	अंडा
मट्ठा	गेहूँ, चावल, मक्का आदि अनाज
हरे साग	छोलें
हरी तरकारियाँ	उबला हुआ दूध
हरी मटर	रोटी
आलू छिलका समेत	डिब्बों में बंद भोजन
मूली पत्ती समेत	मसाले
शहद	सूखा मेवा
गुड़	सफेद चीनी, मिश्री आदि
मक्खन	खीर
कच्ची गरी	चाय, कॉफी
किशमिश	चटपटे
दही मीठा	मुरब्बे, अचार, चटनी, खटाई, सिरका आदि
गन्ना	मिठाइयाँ
गाजर	तली हुयी चीजें
सलाद	मांस
हरा चना	मछली, नमक तेल

HBCSE

● **मोटे हिसाब से सन्तुलित भोजन में** कार्बोज 2/3 भाग, वसा 1/6 भाग तथा प्रोटीन व खनिज लवण एवं विटामिन 1/6 भाग रहते हैं तो यह एक साधारण मनुष्य के लिये सन्तुलित भोजन हो सकता है परन्तु मनुष्य की आयु, डीलडौल, पेशा, मौसम एवं देश और

स्थान के विचार से इस प्रकार के भोजन में कमी या अधिकता की जा सकती है।

● **सस्ता एवं सन्तुलित भोजन लेना चाहें तो** प्रतिदिन के भोजन में कार्बोज 400 ग्राम, वसा 74 ग्राम, प्रोटीन 74 ग्राम, कैल्शियम 2.02 ग्राम, फास्फरस 1.47 ग्राम, लोहा 30.4 मि. ग्रा., विटामिन ए 7000 मि. ग्रा., विटामिन बी$_1$ 400 मि. ग्रा., विटामिन बी$_2$ पर्याप्त मात्रा तथा विटामिन सी 170 मि. ग्रा. होना चाहिये।

● **एक जवान एवं ज्यादा काम करने वाले मनुष्य के भोजन में** प्रतिदिन 90 ग्राम प्रोटीन, 475 ग्राम कार्बोज वसा तथा पर्याप्त मात्रा में विटामिन और खनिज लवणों की आवश्यकता होती है जो विभिन्न पोषक तत्वों से प्राप्त होती है। यथा प्रोटीन (दाल या मांस) 120 ग्राम, वसा (घी, मक्खन) 30 ग्राम, कार्बोज (आटा, चावल) 500 ग्राम, दूध (दही, मट्ठा) 500 ग्राम, साग–सब्जी 420 ग्राम, गुड़ 30 ग्राम देना श्रेयकर रहता है।

● **एक प्रौढ़ व्यक्ति के लिए सन्तुलित भोजन में** रोटी या भात 350 ग्राम, दाल 75 ग्राम, हरेपत्ती दार 100 ग्राम, कंद सब्जियाँ 75 ग्राम, अन्य तरकारियाँ 75 ग्राम, फल 75 ग्राम, गुड़ 50 ग्राम, घी तेल या मक्खन 50 ग्राम, मछली, मांस 75 ग्राम, अंडा या मट्ठा दही

75 ग्राम, दूध 250 ग्राम देना उचित रहता है।

आहार सम्बन्धित कुछ निर्देश

- पोषण प्राप्त करना जीवित रहने की मूलभूत आवश्यकता है।
- खाद्य पदार्थों में विविधता होना न केवल जीवन को मजेदार बनाता है अपितु पोषण और स्वाथ्य के लिए भी अत्यावश्यक है।
- खाद्य पदार्थों के अनेक वर्गों से युक्त आहार में सभी आवश्यक पोषक तत्व समुचित मात्रा में उपलब्ध होते हैं।
- अधिकांश पोषक तत्वों के मुख्य स्रोत अनाज, ज्वार, बाजरा तथा दालें होती हैं।
- अच्छी गुणवत्ता युक्त प्रोटीन और अधिक मात्रा में कैल्शियम होने के कारण दूध एक पौष्टिक आहार माना जाता है। शिशुओं, बालकों एवं महिलाओं के लिए दूध एक उत्तम आहार है।
- तैल तथा गिरि युक्त फल प्रचुर मात्रा में कैलोरी देने वाले खाद्य पदार्थ होते हैं तथा कार्य शक्ति की सघनता (मात्रा) बढ़ाने में उपयोगी होते हैं।
- आहार में अंडे आमिष खाद्य तथा मछलियों का समावेश करने से आहार की गुणवत्ता–वृद्धि होती है। परन्तु निरामिश व्यक्ति अनाज, दाल, दूध आधारित आहार से प्रायः वे सभी पोषक तत्व प्राप्त कर सकते हैं।
- फलों तथा शाक सब्जियों से विटामिन खनिज तत्व जैसे संरक्षक पदार्थ प्राप्त होते हैं।

पोषण की दृष्टि से विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों का केवल पर्याप्त आहार खाना चाहिये।

- पोषण की दृष्टि से विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों में से बुद्धिमत्तापूर्ण चयन करके पर्याप्त आहार खाना चाहिये।
- गर्भवती तथा पयस्विनी माताओं को अतिरिक्त भोजन तथा विशेष देखभाल करने की आवश्यकता होती है।
- शिशु को प्रथम 4–6 महीनों में केवल स्तन्य आहार ही करवाना चाहिये। बच्चे को दो वर्ष की आयु तक स्तन्य आहार ही जारी रखा जा सकता है।
- 4–6 माह की आयु होते होते शिशुओं को सम्पूरक खाद्य पदार्थ खिलाना प्रारम्भ

करना चाहिये।

- स्वस्थ और अस्वस्थ दोनों ही स्थितियों में बालकों और किशोरों को पर्याप्त मात्रा में समुचित भोजन करना चाहिये।
- फली पत्तीदार साग–सब्जियों तथा अन्य फल और तरकारियों का भरपूर मात्रा में उपयोग करना चाहिये।
- पाक तैलो तथा सामिष खाद्य पदार्थों का नियंत्रित और संयमित मात्रा में तथा वनस्पति घी, मक्खन का केवल अल्प मात्रा में उपयोग करना चाहिये।
- शारिरीक अतिभार तथा मोटापे को रोकने के लिये अतिभोजन करने से बचना चाहिये वांछनीय शारिरीक भार बनाये रखने के लिये शरीर को सही ढ़ंग से सक्रिय रखना अनिवार्य है।
- नमक का उपयोग संयम के साथ करना चाहिये।
- खाये गये सभी खाद्य पदार्थ पूर्णतया स्वच्छ तथा निरापद होने चाहिये।
- स्वास्थ्य कर, सुस्पष्ट आहारी संकल्पनायें तथा पाक क्रियायें अपनायी जानी चाहिये।
- पर्याप्त मात्रा में पानी पीना चाहिये तथा मादक पेय का केवल संयमित मात्रा में ही सेवन करें।
- संसाधित तथा बने बनाये खाद्य पदार्थ उसके सम्मत ढ़ंग से उपयोग किये जाने चाहिये। शक्कर का उपयोग केवल अल्प मात्रा में ही किया जाना चाहिये।
- सदैव चुस्त दुरूस्त तथा सक्रिय बने रहने के लिये वयोवृद्धजन को प्रचुर पोषक तत्वों वाला आहार करना चाहिये।

लौह पदार्थ को प्रचुर मात्रा में खाएं

- हीमोग्लोबेन का संश्लेषण, मस्तिष्क का प्रकार्य तथा शारिरीक प्रतिरक्षा करने के लिये लोहे की आवश्यकता होती है।
- लोहे की अपर्याप्तता से अल्परक्तता हो जाती है।
- लोहे की अपर्याप्तता विशेषकर जननीय आयु की महिलाओं तथा बालकों में हो जाना सामान्य है।
- गर्भकाल में लोहे की अपर्याप्तता होने से माताओं की मृत्युदर तथा अल्पभार वाले शिशुओं का जन्म अधिक होता है।

- लोहे की अपर्याप्तता से बालकों में संक्रमण की गुंजाइश बढ़ जाती है तथा उनकी विद्या ग्रहण करने की क्षमता में अधिक क्षति होती है।
- वानस्पतिक मूल के खाद्य पदार्थों जैसे फलियों, सूखे मेवे, पत्तेदार तथा शाक–सब्जियों में लोहा विद्यमान होता है।
- लोहा मांस, मछली तथा कुक्कुट–उत्पादकों के द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है।
- लोहे की जैव प्रापता वानस्पतिक खाद्य पदार्थों से अपर्याप्त होती है किन्तु पशुमूल के खाद्य पदार्थों से ही यह अच्छी होती है।
- चाय जैसे पेय आहारी लोहे को बाँधकर अप्राप्त कर देते हैं।
- गर्भ तथा दूध पिलाने की अवधि में अधिक भोजन करें।

- अनाज के समूचे दाने, अंकुरित चनें तथा किण्वित खाद्य पदार्थ अधिक मात्रा में खाएं।
- दूध पिये और मांस, अंडे खाए।
- अंधविश्वासों तथा खाद्य पदार्थ संबंधी निषेधों तथा वर्जनाओं से बचे।
- मद्य तथा तंबाकू का उपयोग न करें। औषधियाँ केवल तभी खायें जब उन्हें निर्देशित किया गया हो।

- गर्भ ठहरने के 14–16 सप्ताह के पश्चात लोहा, फोलेट एवं कैल्शियम के संपूरक नियमित रूप से खायें तथा दूध पिलाने की अवधि में उन्हीं को जारी रखें।

फल हरी पत्तेदार तथा शाक–सब्जियों का भरपूर मात्रा में उपयोग करना चाहिये

- सामान्य आहार को पौष्टिक तथा सुस्वाद बनाने के लिये उसमें ताजी शाक सब्जियों तथा फलों को सम्मिलित करें।
- ताजी शाक सब्जियाँ तथा फल सूक्ष्म पोषक के प्रचुर स्रोत होते हैं।
- फल और शाक सब्जियाँ जीवन प्रद महत्व के अनेक रेशे तथा पादक रसायन जैसे अपोषणज कारक भी प्रदान करते हैं।
- ताजी हरी तरकारियाँ सब्जियों (पीली, नारंगी रंग की) तथा फल सूक्ष्म पोषकों के अभाव से उत्पन्न कुपोषण तथा कुछ दीर्घ कालिक रोगों को रोकने में सहायक होते हैं।

विटामिन ए को प्रचुर खाद्य पदार्थ के रूप में खायें

- सामान्य दृष्टि के लिए विटामिन ए आवश्यक होता है।
- विटामिन ए की अपर्याप्तता रतौंधी तथा नेत्र में बदलाव की ओर ले जाती है।
- छोटे बच्चों में विटामिन ए की गम्भीर कमी अंधता की ओर ले जाती है।
- बाल्य काल में होने वाले अतिसार, खसरा तथा श्वसन–संक्रमण तथा परजीवी ग्रसन जैसे संक्रमण आंत्र द्वारा विटामिन ए के अवशेष को कम कर देते हैं।
- दूध, अण्डे, यकृत तथा मांस संरचना पूर्व विटामिन ए के उत्तम स्रोत होते हैं।
- बीटा कैरोटीन के रूप में विटामिन ए पौधे मूल में खाद्य पदार्थों से प्राप्त किया जा सकता है।
- शरीर में बीटा कैरोटीन विटामिन ए के रूप में परिवर्तित हो जाता है।
- पत्तीदार हरी शाक–सब्जियां, फल, पीले तथा नारंगी रंग वाली तरकारियां बीटा कैरोटीन के प्रचुर स्रोत हैं।
- सहजन की पत्तियां, चौराई, मेथी, पालक जैसी गहरी हरी पत्तीदार, शाक सब्जियां, तथा गाजर, पीला कुम्हड़ा, आम तथा पपीते जैसे फल तथा सब्जियां बीटा कैरोटीन प्रचुर खाद्य पदार्थों के उदाहरण हैं।

वनस्पति/मक्खन का केवल अल्प मात्रा में प्रयोग करना चाहिए

- वसा तेलों में अत्यधिक ऊर्जा मान होता है तथा वे संतृप्ति प्रदान करते हैं।
- वसा से आवश्यक वसीय अम्ल प्राप्त होता है तथा वसा घुलनशील विटामिनों के अवशोषण को बढ़ावा देते हैं।
- वसा शरीर में जैविक रूप से सक्रिय आमिश्रों के अग्रदूत होते हैं।
- अधिक मात्रा में कैलोरी, वसा तथा कोलेस्ट्रॉल देनेवाले आहार रक्त में वसा (कोलेस्ट्रॉल तथा ट्राइग्लिसराइड) बढ़ाते हैं।
- आहार में अधिक मात्रा में वसा होने से मोटापा, हृदयरोग तथा कैन्सर का जोखिम बढ़ जाता है।
- आहार में अधिक मात्रा में वसा होने के कुप्रभाव बचपन से ही प्रारम्भ हो जाते हैं।

शारिरीक अतिभार तथा मोटापा रोकने के लिए अति भोजन करने से बचना चाहिए

- मोटापे को शरीर पर बहुत अधिक चर्बी बढ़ जाने के रूप में परिभाषित करते हैं।
- मोटापे से स्वास्थ्य पर अनेक कुप्रभाव पड़ते हैं तथा यह समय पूर्व ही मृत्यु की ओर भी ले जा सकता है।
- यह उच्च रक्तदाब, रूधिर में अधिक मात्रा में कोलेस्ट्रॉल तथा ट्राइग्लिसराइडों, हृदयरोग, मधुमेह, पित्ताश्मरी तथा विशेष प्रकार के कैन्सर का जोखिम बढ़ा देता है।
- इसके मनोसामाजिक परिणाम महत्वपूर्ण होते हैं।

पर्याप्त मात्रा में आयोडीन युक्त पदार्थ खायें

- अवटु हार्मोन की संरचना के लिए आयोडीन की आवश्यकता होती है।
- शरीर की बढ़त तथा विकास के लिए अवटु हार्मोन आवश्यक होते हैं।
- आयोडीन की अपर्याप्तता से उत्पन्न रोगों (विकार) का मुख्य कारण आहार तथा जल में आयोडीन का अभाव होता है।
- गर्भावस्था की अवधि में आयोडीन की अपर्याप्तता होने के फलस्वरूप मृत प्रसव, गर्भपात तथा अवटुवामनता होती है।
- आयोडीन युक्त लवण का उपयोग पर्याप्त आयोडीन अंतर्ग्रहण सुनिश्चित करता है।

खाये गये सभी खाद्य पदार्थ पूर्णतया स्वच्छ तथा निरापद होने चाहिए

- उत्तम स्वास्थ्य रखने के लिए निरापद तथा उत्तम गुणवत्ता युक्त खाद्य पदार्थ खाना महत्वपूर्ण है।
- खाद्य–पदार्थों में प्रकृती में पाये जाने वाले आविष वातावरणीय संदूषक तथा अपमिश्रणीय वस्तुओं का विद्यमान होना स्वास्थ्य के लिए खतरनाक होता है।
- असंरक्षित खाद्य पदार्थ खाना आहार द्वारा वाहित रोगों की ओर ले जाता है।

स्वास्थ्य तथा सुस्वास्थ्य आहारीय संकल्पनायें तथा पाक क्रियायें अपनायी जानी चाहिये

- आहारी रिवाजों में सांस्कृतिक कारकों की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
- आहार संबंधी दोष पूर्ण विश्वासों, सन्क और कट्टरता से पोषण तथा स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।
- पाक क्रियाएं भोजन को स्वादिष्ट बनाती हैं तथा आसानी से पचाने में सहायक होती हैं।
- पाक क्रियाओं से हानिकारक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।
- दोषपूर्ण पाक क्रियाएं अपनाने की आदतें पोषकों को हानि की ओर ले जाती हैं।
- उच्च तापमान पर खाना पकाना पोषकों को विनाश की ओर ले जाता है तथा खाने में हानिकारक पदार्थ पैदा करता है।

पर्याप्त मात्रा में जल पीना चाहिए

- जल मानव शरीर का बहुत बड़ा घटक है।
- पेय प्यास को शांत करने में उपयोगी होते हैं तथा शरीर में तरल द्रव की मांग को पूर्ण करते हैं।
- कुछ पेय पोषकों की पूर्ति करते हैं जबकि अन्य उद्दीपक के रूप में कार्य करते हैं।
- सभी आयु वर्गों के लिए दूध एक उत्कृष्ट पेय है क्योंकि यह पोषकों का एक भरपूर स्रोत है।
- प्रतिदिन की तरलता आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए निरापद तथा स्वास्थ्यकर जल यथेष्ट मात्रा में पियें।
- जब जल का निरापद होना संदिग्ध हो तो जल उबाल कर पियें।

- प्रतिदिन कम से कम 250 मिली लीटर उबाला हुआ अथवा पाश्चरीकृत दूध पियें।
- कार्बोनेटीकृत पेयों के स्थान पर प्राकृतिक तथा ताजे फलों का रस पियें।
- कॉफी की अपेक्षा चाय पीना अधिक पसंद करें।
- मद्यपान करने से बचें। जो लोग पीते हों उन्हें इसका सेवन सीमित करना चाहिए।

वयोवृद्धजन को सदैव स्वस्थ और सक्रिय बने रहने के लिए पोषक प्रचुर आहार खाना चाहिए

- वृद्धजन को कैलोरी की आवश्यकता कम ही होती है।
- भोजन, शारिरीक सक्रियता तथा संक्रमण प्रतिरोध क्षमता कम हो जाने के कारण वयोवृद्धजन में रोग होने की प्रवृत्ति अधिक होती है।
- आहार संबंधी अच्छी आदतें होने तथा नियमित व्यायाम करने से वृद्धावस्था के कुप्रभाव कम हो जाते हैं।
- वयोवृद्धजन से संबंधित रोगों का निवारण करने के लिए कैल्शियम, लोह, विटामिन ए तथा प्रतिऑक्सीकारकों की आवश्यकता अधिक होती है।
- स्वस्थ रहने के लिए विविध प्रकार के पोषक प्रचुर पदार्थ खायें।
- अपने भोजन को शारिरीक सक्रियता के अनुरूप बनायें।
- दिनभर में भोजन को अनेक भागों में बांट कर खायें।
- तले हुये नमकीन तथा मसालेदार खाद्य पदार्थ खाने से बचें।
- नियमित रूप से व्यायाम करें।

जीवन की विभिन्न अवस्थाओं की अभिरूचि में आहार का महत्व

बुढ़ापे में :– शारिरीक रूप से सक्रिय तथा स्वस्थ बने रहने के लिए पोषक तत्वों से भरपूर और कम चिकनाईयुक्त भोजन।

गर्भावस्था में :– स्वास्थ उत्पादकता बनाये रखने तथा आहार सम्बन्धी रोगों की रोकथाम करने तथा गर्भवती महिलाओं को बल प्रदान करने के लिए, शिशु का जनन/पालन करने के लिए अतिरिक्त आहार के साथ–साथ पोषण की दृष्टि में पर्याप्त मात्रा में आहार।

किशोरावस्था :– में तीव्र गति से शारिरीक विकास करने, परिपक्व होने तथा अस्थियों का

विकास करने के लिये शरीर का गठन तथा संरक्षण करने वाले आहार।

बाल्यकाल में :– शारिरीक वृद्धि विकास तथा संक्रमण का मुकाबला करने के लिये शक्ति, शारिरीक गठन तथा संरक्षण प्रदान करने वाले आहार।

शैशवावस्था में :– शारिरीक विकास करने तथा निरन्तर प्रगति करने के लिये– माँ का दूध और शक्ति से भरपूर आहार।

यदि प्रोटीन, कार्बोज, वसा, विटामिन, खनिज, लवण तथा जल आदि सन्तुलित आहार तथा आवश्यकतानुसार प्रतिदिन भोजन के रूप में लिया जाये तो इससे कई तरह की तकलीफों से निजात मिल जाती है। विटामिन–ए की अपर्याप्तता रतौंधी का कारण बन जाता है। मधुमेह, नेत्ररोग सभी प्रकार के ज्वर वातव्याधियाँ, पेट के रोग तथा हर प्रकार की पाचन खराबियां आदि असन्तुलित आहार का परिचायक है।

उत्तम स्वास्थ्य बनाए रखने के लिये निरापत तथा उत्तम गुणवत्ता युक्त खाद्य पदार्थ खाना महत्वपूर्ण है तथा प्रतिदिन की तरलता आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये निरापद तथा स्वास्थ्यकर जल उचित मात्रा में पीना चाहिये। उत्तम स्वास्थ्य के लिये पाक विधियों पर भी विशेष ध्यान देना चाहिये। यदि इनमें से कुछ ही बातों पर मानव बुद्धिमत्तापूर्ण विचार करके भोजन करता है तो निश्चय ही उसका जीवन स्वस्थ, सुखमय एवं आनन्दमय होना चाहिये।

➢ असिस्टेन्ट प्रोफेसर
पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान, कृषि संकाय,
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय,
चित्रकूट सतना (म. प्र.)
ई–मेल : umeshdr 2006@rediffmail.com

डी एन ए संरचना की खोज

■ डॉ. अर्चना पांडेय

25 अप्रैल 1953 को विश्वविख्यात जरनल "नेचर" में दो शोध पत्र एक साथ प्रकाशित हुये जिसके बाद जैवरसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, कृषि, औषधि व आनुवंशिकी जैसे विज्ञान की शाखाओं को एक नया आयाम मिला। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के केवेन्डिश प्रयोगशाला में काम करनेवाले जेम्स डी. वॉटसन व फ्रान्सिस क्रिक का सम्मिलित शोध पत्र तथा किंग्ज कॉलेज, लंदन में शोध करनेवाले मॉरिस विलिकन्स का शोधपत्र जो डी एन ए संरचना की खोज से सम्बन्धित था एक साथ प्रकाशित हुये। इन तीनों ही वैज्ञानिकों ने डी एन ए की दोहरी कुण्डलीनुमा संरचना को खोज निकाला था। यह विज्ञान के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी मोड़ था। इसके बाद ही वंशागति की प्रक्रिया समझ में आयी और जीवन को कृत्रिम रूप से नियन्त्रित करने का मार्ग भी प्रशस्त हुआ।

सही मायने में डी एन ए की कहानी 1869 से प्रारम्भ हुयी जब फ्रेडरिक माइशर ने श्वेत रक्त कणिकाओं से **न्यूक्लिन** को निकाला। इसके लिए माइशर रोज पास की एक स्थानीय क्लिनिक में जाते और गन्दी बैन्डेज उठा लाते जिसमें पस लगा होता था। ये पस श्वेत रक्त कणिकाओं से भरा होता था। माइशर इसमें एल्कली मिलाते थे जिससे कोशिकाओं का केन्द्रक फट जाता था और केन्द्रक में उपस्थित सारा पदार्थ बाहर निकल आता। वास्तव में माइशर डी एन ए ही निकालते थे जिसे प्रारम्भ में उन्होंने न्यूक्लिन कहा। वे न्यूक्लिन का रासायनिक संघटन जानना चाहते थे। उन्होंने विश्लेषण द्वारा पता किया कि यह एक अम्ल है जिसमें फास्फोरस भी है। यह कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन से अलग है। इसका सूत्र $C_{29}H_{49}O_{22}N_9P_3$ है। उनके अनुसार यह एक लम्बा अणु है जो छोटे–छोटे टुकड़ों में टूट जाता है।

उस समय इस खोज को बहुत महत्व नहीं दिया गया। इसी समय सूक्ष्मदर्शी का आविष्कार हुआ और जर्मनी के जीव विज्ञानी **वालथर फ्लेमिंग** (Walther Flemning) ने केन्द्रक में क्रोमोसोम की खोज की, जिसे उन्होंने **क्रोमेटिन** कहा। इसके अलावा कोशिका विभाजन से क्रोमोसोम के डाटर सेल में जाने से आनुवंशिकी में इनकी भूमिका का संकेत

मिला।

जर्मनी के वैज्ञानिक **ऑस्कर हर्टविग** ने "न्यूक्लिन" को वंशागति का कारण बताया (जो वास्तव में डी एन ए थे) परन्तु अन्य वैज्ञानिकों का मानना था कि क्रोमोसोम में प्रोटीन होता है और वही आनुवंशिकता के लिये जिम्मेदार हैं।

सन् 1900 तक यह समझ में आ चुका था कि डी एन ए क्रोमोसोम में होते हैं और ये फास्फेट, शुगर व चार हेटरोसाइक्लिक बेस से बने होते हैं। इन चारों बेसों में 2 प्यूरीन (एडिनिन व ग्वानिन) तथा 2 पिरीमिडीन (साइटोसिन व थाइमिन) होते हैं।

न्यूयार्क के रॉकफेलर इन्स्टीट्यूट में काम करनेवाले फोबस लीविन (Phoebus Levin) ने सर्वप्रथम यह सिद्ध किया कि डी एन ए में फास्फेट–शुगर–बेस एक दूसरे से इसी क्रम में जुड़े होते हैं। इन तीनों के सम्मिलित इकाई को उन्होंने **न्यूक्लिओटाइड** कहा और कहा कि डी एन ए न्यूक्लिओटाइड यूनिट से मिलकर बनी हुयी एक धागेनुमा संरचना होती है। एक आश्चर्य जनक तथ्य जिससे वैज्ञानिक अभी तक अनभिज्ञ थे वह था **डी एन ए की असाधारण लम्बाई**।

यदि हमारे शरीर की एक कोशिका का डी एन ए निकालकर खींचकर लम्बा कर दिया जाये तो उसकी लम्बाई लगभग 2 मीटर होगी यानि अगर हमारे शरीर की अरबों कोशिकाओं के डी एन ए की लम्बाई नापी जाये तो यह लगभग 9,600 लाख किमी से भी ज्यादा होगी जो पृथ्वी से सूरज तक की लम्बाई से छः गुना अधिक होगी।

उस समय वैज्ञानिकों का अनुमान था कि डी एन ए एक छोटा अणु है और यह लगभग 10 से 15 न्यूक्लिओटाइड का बना होता है। लीविन पूरी तरह से आश्वस्त थे कि किसी भी प्रकार का डी एन ए मात्र इन्हीं चार बेसों से मिलकर बना है।

1930 में जब पहली बार **टोर्बजोर्न केसपरसन् (Torbjorn Caspersson)** व **इनार हेमर्स्टन (Einar Hummersten)** ने यह खोज की कि डी एन ए एक पॉलिमर है तो लोगों को विश्वास नहीं हुआ। फिर भी तब तक वैज्ञानिक जगत यह नहीं सोच पाया कि

डी एन ए वंशागति के कारक हो सकते हैं क्योंकि उनका सोचना था कि इसमें मात्र चार बेस होते हैं जो एक ही तरह के अनुक्रम में जुड़े होते हैं, अतः यह कोई सार्थक सूचना प्रेषित नहीं कर सकते। दूसरी तरफ प्रोटीन चूँकि 20 अमिनों अम्ल से मिलकर बने हैं और उनके अनुक्रम भी अलग–अलग हैं, अतः प्रोटीन ही जेनेटिक कोड का निर्धारण करते हैं हालांकि यह एक भ्रम था।

प्रोटीन आनुवंशिकता के वाहक नहीं है, इस तथ्य पर पहली बार प्रकाश **ऑस्टवॉल्ड एवरी (Ostwald Avery)** ने डाला। एवरी का जन्म यद्यपि कनाडा में हुआ था, परन्तु अपने जीवन का मुख्य भाग उन्होंने रॉकफेलर विश्वविद्यालय के अस्पताल में अनुसंधान करते हुये बिताया। एवरी की टीम में दो और वैज्ञानिक **मैक लॉड (McLeod)** एवं **मैक कार्टी (Mac Carty)** भी थे।

उसी समय 1928 में **फ्रेड ग्रिफ्थ (Fred Griffth)** ने एक प्रयोग किया। वे न्यूमोकोकस जीवाणु की दो प्रजातियों पर काम कर रहे थे। न्यूमोकोकस जीवाणु निमोनिया रोग फैलाता है। उस समय तक चूँकि इस बीमारी का कोई इलाज नहीं था, लोग इससे बहुत भयभीत रहते थे। इस जीवाणु की प्रजाति का एक प्रकार चिकना व दूसरा खुरदुरा था। चिकना प्रकार बीमारी फैलाता था, परन्तु खुरदुरा प्रकार हानिरहित था। ग्रिफ्थ को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जब जीवित चिकने प्रकार के जीवाणुओं को मृत खुरदरे जीवाणु के साथ मिलाया तो खुरदरे प्रकार के जीवाणु चिकने प्रकार के जीवाणुओं में परिवर्तित हो गये। यह देखकर एवरी व उनकी टीम ने इस प्रेक्षण की तह तक जाने के लिये प्रयोग आरम्भ किये। उन्होंने चिकने प्रकार के जीवाणुओं से बड़ी कोशकीय संरचनाओं को अलग किया। इसके उपरान्त उन पर प्रोटियेज एन्जाइम की क्रिया कराकर प्रोटीन को भी हटा दिया। अब इन जीवाणुओं को खुरदरे प्रकार के जीवाणुओं में मिश्रित कर दिया और यह पाया कि खुरदरे प्रकार के जीवाणु चिकने प्रकार में रूपान्तरित हो गये। यह प्रेक्षण इस बात का प्रमाण था कि प्रोटीन रोग के वाहक नहीं है। अब इस प्रयोग का दूसरा चरण आरम्भ किया गया। चिकने प्रकार के जीवाणुओं की डिऑक्सीराइबोन्यूक्लियेज नामक एन्जाइम से क्रिया कराके डी एन ए को हटा दिया गया। इन खुरदरे प्रकार के जीवाणुओं का रूपान्तरण अब फिर न हो सका। यह इस तथ्य की ओर संकेत करता था कि **डी एन ए ही जीन के वाहक हैं**।

1937 में डेलबुक नामक जर्मन वैज्ञानिक ने राकफेलर प्रतिष्ठान में अल्फ्रेड हर्रे व साल्वाडोर लूरिया नाम के अन्य दो वैज्ञानिकों के साथ बैक्टीरियोफाज पर काम करना आरम्भ किया। बैक्टीरियोफाज एक तरह के जीवाणुभोजी विषाणु होते हैं। वास्तव में इन्हें जीवित व निर्जीव के बीच की कड़ी के रूप में जाना जाता है क्योंकि जब ये कोशिका के अन्दर होते हैं तो जीवितों की तरह व्यवहार करते हैं परन्तु कोशिका के बाहर निर्जीव क्रिस्टलों में परिवर्तित हो जाते हैं। ये तीनों ही वैज्ञानिक जीवाणुभोजी विषाणुओं की संरचना से परिचित थे। इनके प्रोटीन आवरण के अन्दर न्यूक्लिक अम्ल कुण्डली के आकार में अवस्थित रहता है। जब कोई जीवाणुभोजी बैक्टीरिया के सम्पर्क में आता है तो यह अपना न्यूक्लिक अम्ल बैक्टीरिया में स्थानान्तरित कर देता है और थोड़ी ही देर में सैकड़ों नये विषाणुकड़ बन जाते हैं। इस प्रकार तीनों वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया कि **न्यूक्लिक अम्ल (डी एन ए) ही जीवाणु कोशिका की पीढ़ियों में आनुवंशिक परिवर्तन करता है**।

इतना सब कुछ पता चलने के बाद भी डी एन ए की संरचना अभी भी रहस्य बनी हुयी थी। ऑस्ट्रिया के वैज्ञानिक **इरविन चार्गाफ** (**Erwin Chargaft**) एवरी के शोधकार्य से बहुत प्रभावित थे तथा क्रोमेटोग्राफी द्वारा डी एन ए में उपस्थित न्यूक्लिओटाइड की मात्रा ज्ञात करने की कोशिश कर रहे थे। जल्दी ही उन्होंने लीविन के मत को ध्वस्त किया कि डी एन ए मात्र 10 या 15 न्यूक्लिओटाइड के बने होते हैं। अब तक यह पता चल चुका था कि डी एन ए के चार नाइट्रोजन बेस होते हैं जो एडिनिन (A), साइटोसिन (C), ग्वानिन (G) व थाइमिन (T) हैं। चार्गाफ ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य का पता लगाया। वह यह था कि अलग–अलग प्रजातियों में A, C, G, T की मात्रा अलग–अलग हो सकती है। परन्तु एक ही जाति के किसी भी ऊतक से निकाले गये डी एन ए में इन चारों बेसों का अनुपात एक जैसा था। दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य जिसने डी एन ए की संरचना के समीप पहूँचने में बहुत मदद की जो चार्गाफ ने दिया, वह यह था कि A और T एवं G और C का अनुपात समान था और इसे **चार्गाफ रेशियो** के नाम से जाना गया।

1951 में वॉटसन ने केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के केवेन्डिश प्रयोगशाला में कार्य करना आरम्भ किया। इस समय कुछ भौतिकविद्, रसायनज्ञ मिलकर प्रोटीन की त्रिआयामी संरचना पर कार्य कर रहे थे। फ्रान्सिस क्रिक भी उनमें से एक थे और उनकी उम्र उस समय लगभग पैतींस वर्ष थी। वैज्ञानिकों के इस समूह के लीडर मैक्स पेरूज (Max Perutz) थे। इनका

जन्म ऑस्ट्रिया में हुआ था पर 1936 में ये अमेरिका आ गये थे। ये पिछले दस वर्षों से हिमोग्लोबिन के X–किरण विवर्तन सम्बन्धित आंकड़े (X–ray diffraction pattern) एकत्र कर रहे थे। इनकी सहायता केवेन्डिश के डायरेक्टर सर लॉरेन्स ब्रेग (Sir Lawresee Bragg) कर रहे थे। इनको नोबेल पुरस्कार मिल चुका था और इन्हें X–रे क्रिस्टलोग्राफी का जन्मदाता कहा जा सकता है। इस तकनीक के माध्यम से वह जटिल से जटिल अणु की संरचना को सुलझाने का प्रयत्न कर रहे थे। क्रिक कभी पेरूज के साथ X–रे विवर्तन की तस्वीरें खींचते तो कभी ब्रेग के साथ संरचना सम्बन्धी विचार विमर्श करते थे पर ज्यादातर वे संरचना सम्बन्धी शोधकार्य में डूबे रहते थे।

वॉटसन के कैम्ब्रिज आने के पूर्व फ्रान्सिस ने डी एन ए के महत्व के बारे में बहुत कम सोचा था। इरविन श्रोडिंजर ने एक पुस्तक 1946 में लिखी जिसका नाम "व्हाट इज लाइफ?" था। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद फ्रान्सिस क्रिक जीव विज्ञान में रूचि लेने लगे जबकि वे भौतिकविद् थे।

उस समय तक यह मान्यता थी कि जीन्स एक विशेष प्रकार के प्रोटीन होते हैं। लगभग इसी समय रॉकफेलर संस्थान में कार्यरत ओ. टी. एवरी ने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि एक जीवाणु से दूसरे जीवाणु में आनुवंशिक गुण डी एन ए द्वारा स्थानांतरित होते हैं। एवरी के प्रयोग से एक बात सिद्ध हो गयी कि जीन्स प्रोटीन के अणु नहीं होते बल्कि ये डी एन ए से बने होते हैं। फ्रान्सिस क्रिक पिछले दो साल से प्रोटीन पर शोध कर रहे थे और केवेन्डिश प्रयोगशाला में कार्य करने वाले वैज्ञानिकों की रूचि डी एन ए में लगभग नहीं के बराबर थी।

दरअसल डी एन ए सम्बन्धित कार्य इंग्लैंड में लंदन के किंग्स कॉलेज में युवा और अविवाहित वैज्ञानिक मॉरिस विलिकन्स कर रहे थे। मॉरिस भी भौतिकविद् थे और डी एन ए की संरचना समझने के लिये X–रे विवर्तन का ही सहारा ले रहे थे। इस कार्य में वे पिछले चार–पाँच साल से लगे हुये थे। फ्रान्सिस क्रिक व मॉरिस विलिकन्स लगभग एक ही उम्र के थे और आपस में अच्छे मित्र भी थे।

इसी बीच लीनियस पॉलिंग ने प्रोटीन की कुण्डली संरचना का पता लगा लिया था और उनका जादू वैज्ञानिकों के सिर चढ़कर बोल रहा था। जिस तरह प्रोटीन का मॉडल बनाया

गया था, फ्रान्सिस उसी तरीके से डी एन ए की संरचना के बारे में सोच रहे थे। वॉटसन का सारा समय डी एन ए की संरचना पर विचार करने में बीतता था। वे फ्रान्सिस क्रिक से इस विषय पर जब तब बात किया करते थे। वॉटसन को लगता था यदि पॉलिंग प्रोटीन का कुण्डली मॉडल X–रे विवर्तन से कम, बल्कि कौन सा परमाणु किसके बाद आयेगा, यह मॉडल बनाकर ज्यादा बता पाये थे तो डी एन ए की संरचना में भी यही तकनीक काम लायी जा सकती है।

इटली के पास नेपल्स में वैज्ञानिकों की एक संगोष्ठी होनी थी। वॉटसन इस संगोष्ठी में पहुँचे और वहाँ मॉरिस विलिकन्स को देखकर उन्हें सुखद आश्चर्य हुआ। वे मॉरिस से डी एन ए पर व्याख्यान सुनने को बेताब थे। मॉरिस ने बताया कि कैसे डी एन ए के X–रे विवर्तन से डी एन ए की संरचना को समझने में मदद मिल सकती है पर X–रे विवर्तन वाली तस्वीर उन्होंने अपने व्याख्यान के सबसे अन्त में मात्र दो या तीन सेकेण्ड के लिए दिखायी।

मॉरिस के व्याख्यान के पहले वॉटसन को लगता था कि जीन की संरचना बड़ी कठिन, अनियमित व असम्बद्ध होगी परन्तु मॉरिस के व्याख्यान के पश्चात् वॉटसन को यह समझ में आ गया कि यदि डी एन ए को क्रिस्टलाइज किया जा सकता है तो क्रिस्टल की संरचना में अणु या परमाणु का एक नियमित विन्यास होगा। वॉटसन मॉरिस के साथ इस बात पर विचार विमर्श करना चाहते थे पर व्याख्यान के बाद मॉरिस जैसे गायब हो गये। दूसरे दिन प्रतिभागियों ने एक ग्रीक मन्दिर जाने का कार्यक्रम बनाया। इसी बीच वॉटसन की बहन एलिजाबेथ भी अमेरिका से वहाँ आ गयी जो बहुत सुन्दर थी। मॉरिस और एलिजाबेथ की जल्दी ही दोस्ती हो गयी। यह देखकर वॉटसन बहुत खुश हुये कि शायद इसी बहाने उन्हें मॉरिस से डी एन ए पर बात करने का अवसर मिले परन्तु मॉरिस यद्यपि एलिजाबेथ के साथ घूमते व खाते रहे परन्तु संगोष्ठी समाप्त होते ही वे बिना कोई बातचीत किये लन्दन वापस लौट गये इससे वॉटसन बेहद निराश हुये। हर कोई जानता था कि डी एन ए की संरचना का भेद खुलते ही आनुवंशिकी सम्बन्धित बहुत सी समस्याएँ सुलझ जायेंगी, अतः वैज्ञानिक बड़ी ही शीघ्रता से इस क्षेत्र में शोध कर रहे थे।

वॉटसन नेपल्स से लौट आये परन्तु उनके दिल और दिमाग में मॉरिस द्वारा दिखाई गयी डी एन ए के X–रे विवर्तन की तस्वीर बराबर घूम रही थी। वॉटसन X–रे विवर्तन तस्वीरों को समझने तथा किसी से सीखने को आतुर थे।

वॉटसन जीव वैज्ञानिक थे। उन्हें रसायन विज्ञान बिलकुल नहीं आता था। जब केवेन्डिश प्रयोगशाला में वे पेरूज से मिले तो उन्होंने अपनी समस्या पेरूज को बतायी और कहा कि वे X–रे विवर्तन नहीं जानते। पेरूज ने उन्हें आश्वस्त किया कि यह कोई मुश्किल कार्य नहीं है। उन्हें केवल थोड़ी सी क्रिस्टलोग्राफी पढ़नी होगी ताकि वे X–रे विवर्तन तस्वीरें खींच सकें। उन्होंने वॉटसन को क्रिस्टलोग्राफी से सम्बन्धित कुछ किताबें दी।

अब तक यह पता चल चुका था कि डी एन ए बहुत सारे न्यूक्लिओटाइड से मिलकर बना है। प्रोटीन की कुण्डली में अमीनो अम्ल की एक श्रृंखला ही चक्करदार घेरों में हाइड्रोजन बन्ध के द्वारा जुड़ी हुयी थी। मॉरिस ने एक बार फ्रान्सिस को यह बताया कि यदि डी एन ए में भी पॉलीन्यूक्लिओटाइड की एक श्रृंखला है तो इसका व्यास अनुमान से अधिक है। मॉरिस की इस बात से फ्रान्सिस के दिमाग में एक तथ्य कौंधा कि डी एन ए एक श्रृंखला से नहीं वरन पॉलीन्यूक्लिओटाइड की कई श्रृंखलाओं से मिलकर बना है। यदि यह तथ्य सत्य था तो अगला प्रश्न यह था कि ये श्रृंखलायें आपस में हाइड्रोजन बन्ध द्वारा जुड़ी है अथवा फास्फेट समूहों के ऋणात्मक आवेश द्वारा लवण बन्ध से।

डी एन ए में चार तरह के न्यूक्लिओटाइड पाये जाते हैं जिनमें नाइट्रोजन बेस या तो प्यूरीन (एडिनिन व ग्वानिन) या पिरीमिडीन (साइटोसिन व थाइमिन) होते हैं तथा शर्करा व फास्फेट सभी में होते हैं यह जानकारी वैज्ञानिकों को हो चुकी थी। वॉटसन यह समझ रहे थे कि डी एन ए की यूनिकनेस उसके बेसों में ही है। अतः मॉडल बनाते समय वॉटसन शुगर–फास्फेट की बैकबोन का क्रम नियमित रख रहे थे परन्तु नाइट्रोजन बेसों का विन्यास समझ नहीं पा रहे थे। डी एन ए में बेसों का क्रम एक सा नहीं हो सकता यह वह अच्छी तरह से समझ रहे थे क्योंकि फिर जीनों में विभिन्नता नहीं हो सकती, एक जीन को दूसरे जीन से अलग होना ही चाहिये।

वॉटसन जानते थे कि यदि X–रे चित्रों सम्बन्धी आंकड़े मिल जाते तो कई मॉडलों की सम्भावना में से कुछ को निश्चित रूप से अस्वीकार किया जा सकता है परन्तु मुश्किल यह थी कि X–रे विवर्तन की तस्वीरें मॉरिस के पास थी और वे उसे देना नहीं चाहते थे, साथ ही वॉटसन व क्रिक इन तस्वीरों का आंकलन करना भी नहीं जानते थे, अभी वे X–रे विवर्तन सीख ही रहे थे। वॉटसन, क्रिक व मॉरिस तीनों भी यही समझ रहे थे कि डी एन ए एक

कुण्डली है पर इसके आगे की कहानी बन नहीं पा रही थी। मॉरिस X–रे विवर्तन चित्रों को देखकर अनुमान लगा रहे थे कि सम्भवतः पॉलीन्यूक्लिओटाइड की तीन श्रृंखलाओं से मिलकर डी एन ए कुण्डली बनी है।

मॉरिस विलिकन्स के शोध में सहायता करने के लिये रोजी (रोज़ालिन्ड फ्रेंकलिन) नाम की एक प्रशिक्षित महिला को नियुक्त किया गया था। मॉरिस और सहयोगी रोजी के मध्य सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। डी एन ए के X–रे विवर्तन तस्वीरें चूँकि रोजी खींचती थी अतः वह उनकी व्याख्या कर संरचना समझना अपना अधिकार समझती थी। जबकि मॉरिस का मानना था कि उसका काम केवल X–रे विवर्तन तस्वीरें खींचना है। मॉरिस डी एन ए का क्रिस्टलीकरण करके रोजी को देते थे। मॉरिस रोजी को अपने असिस्टेंट की तरह देखते थे जबकि रोजी एक स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर वैज्ञानिक की तरह काम करना चाहती थी। रोजी बुद्धिमान होने के साथ परिश्रमी भी थी।

वॉटसन व क्रिक के सामने समस्या यह थी कि डी एन ए की रीढ़ में उपस्थित फास्फेट पर उपस्थित ऋणावेश किस तरह से उदासीन होता है। उन्होंने अनुमान लगाया कि शायद दो फास्फेट मैग्नेशियम (Mg^{++}) अथवा कैल्शियम (Ca^{++}) से जुड़कर लवणसेतु (Salt Bridge) बनाते हैं। वे दिन रात तरह–तरह के मॉडल बनाकर देखते। कभी दो, कभी तीन व कभी चार श्रृंखला बनाकर उन्हें आपस में जोड़ने का प्रयत्न करते। वे लगातार डी एन ए के बारे में सोचते, तरह–तरह के मॉडल बनाते और प्रयोग करते।

X–रे विवर्तन चित्रों के आधार पर वॉटसन व क्रिक इस नतीजे पर पहुँचे कि डी एन ए की कुण्डली तीन श्रृंखलाओं से मिलकर बनी है और तीन श्रृंखलाओं वाला एक मॉडल बनाया गया। फ्रान्सिस ने मॉरिस को फोन पर अपनी प्रयोगशाला में बुलाया ताकि यह मॉडल सही है या नहीं, इसपर विचार विमर्श किया जा सके। मॉरिस अगले ही दिन अपने सहयोगी विली सीड व रोजी के साथ प्रयोगशाला पहुँचे जहाँ वॉटसन व क्रिक ने अपना बनाया मॉडल दिखाया और क्रिक डी एन ए के कुण्डली संरचना के पक्ष पर अपने तर्क देते रहे। मॉरिस बहुत सहमत नहीं थे और मैग्नीशियम आयन की उपस्थिति को रोजी ने बड़ी बेरूखी से अस्वीकार कर दिया।

समय धीरे–धीरे निकलता जा रहा था। इसी बीच पॉलिंग ने डी एन ए की संरचना पर

अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया। वॉटसन व क्रिक सन्न रह गये परन्तु शोधपत्र पढ़ते ही उन्हें समझ में आ गया कि यह मॉडल काम नहीं करेगा। पॉलिंग के मॉडल में दो खामियाँ थीं।

1. डी एन ए को तिहरी कुण्डली बताया था जो अपनी प्रतिलिपियाँ नहीं बना सकता था।
2. पॉलिंग के अनुसार फास्फेट समूह दोनों कुण्डली के केन्द्र में होते हैं जबकि ऋणावेशित फास्फेट एक दूसरे को विकर्षित करेंगे और दोनों कुण्डली जुड़ी नहीं रह सकती।

वॉटसन कागज के कटआऊट बना कर डी एन ए मॉडल बनाने में और तेजी से लग गये। उन्हें यह समझ में आ गया था कि न्यूक्लिओटाइड आपस में हल्के बंध बनाकर जोड़े बना सकते हैं और हल्के बंध हाइड्रोजन के हो सकते हैं पर प्रश्न यह था कि कौन सा बेस किसके साथ जुड़ा होता है। यहाँ पर चार्गाफ का शोध काम आया। उन्होंने यह खोज की कि एडिनिन की मात्रा हमेशा थाइमिन के बराबर होती है तथा साइटोसिन की मात्रा सदैव ग्वानिन की मात्रा के बराबर होती है। इस खोज से वॉटसन के मस्तिष्क में एक विचार कौंधा जो बाद में मील का पत्थर साबित हुआ वह यह था कि, क्या एडिनिन, थाइमिन के साथ और साइटोसिन, ग्वानिन के साथ जोड़ा बनाता है? कागज़ के कटआऊट बनाते बनाते वॉटसन ने यह कर दिखाया।

X–रे विवर्तन के अनुसार डी एन ए की कुण्डली की चौड़ाई समान थी। वॉटसन के तेज दिमाग ने जल्दी ही यह भाप लिया कि यदि ए–टी और सी–जी के जोड़े बनते हैं तो दोनों जोड़ों की चौड़ाई बिलकुल बराबर होगी। बेसों के ये जोड़े चार्गाफ के 1:1 अनुपात से बिल्कुल मेल खाते थे। वॉटसन ने जब अपना यह विचार क्रिक को बताया तो वे पूरी तरह से सहमत हो गये। क्रिक ने बंधों के कोणों की गणना की और यह विचार व्यक्त किया कि दोनों कुण्डलियों की दिशा एक दूसरे से विपरित होनी चाहिये यानि इन्हें **एन्टिपैरेलल** होना चाहिये।

7 मार्च 1953 को वॉटसन और क्रिक ने मिलकर 6 फूट का डी एन ए का त्रिआयामी मॉडल बनाया। यह एक मुड़ी हुयी सीढ़ी की भाँति था जिसमें शुगर व फास्फेट की रेलिंग थी और पैड़ियाँ बेस के जोड़ों से बनी थी। दोनों कुण्डलियाँ एक दूसरे के पूरक थी। यदि एक कुण्डली पर एडिनिन था तो दूसरी पर थायमिन, एक पर साइटोसिन था तो दूसरे पर ग्वानिन अर्थात् यदि एक कुण्डली का क्रम ज्ञात हो तो दूसरी का पता अपने आप चल जायेगा।

पूरक होने का यही गुण वंशागति का कारण था।

वॉटसन और क्रिक ने बिना समय खोये ब्रिटिश जरनल "नेचर" में अपना लेख छपने के लिये भेजा। लगभग इसी समय मॉरिस ने भी X–रे विवर्तन पर आधारित अपना पेपर भी नेचर में भेजा। डी एन ए की संरचना अब पूरे विश्व के सामने थी। 25 अप्रैल 1953 को शोधपत्र प्रकाशित हुये। इसके लिये वॉटसन, क्रिक और मॉरिस को 1962 में नोबेल पुरस्कार दिया गया।

➢ एसोसिएट प्रोफेसर,
रसायनशास्त्र विभाग,
सीएमपी डिग्री कॉलेज,
इलाहाबाद
मोबाइल – 09451806501

HBCSE

अनुक्रम, श्रेढ़ी और श्रेणी

■ डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र

'एकाचमे तिश्रश्चमे तिश्रश्चमे पंचचमे पंचचमे सप्तचमे....नवविंशतिश्चमे एकत्रिंशच्चमे एकत्रिंशच्चमे त्रयस्त्रिंसच्चमे यज्ञेन कल्पन्ताम्।'

(1 और 3), (3 और 5), (5 और 7),.....(29 और 31), (31 और 33) मुझे यज्ञ (आयोजन) के द्वारा फलदायी हों।

शुक्लयजुर्वेद की यह **ऋचा** अनुक्रम के वैदिक ज्ञान एवं प्राचीन उपयोग का प्रमाण है। अनुक्रमों के ज्ञान का प्रमाण **बेबीलोन, मिश्र और यूनान** की सभ्यताओं में भी प्राप्त होता है। चार हजार वर्ष ई. पूर्व से मिलने वाले इस ज्ञान की प्राचीनता जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इसकी उपयोगिता प्रदर्शित करता है।

वर्तमान समय में भी गणित, विज्ञान, अर्थशास्त्र, वाणिज्य आदि में इन श्रेणियों की अनेक उपयोगिताएं हैं। बैक्टीरिया और मानवीय आबादी के बढ़ते दर, रेडियोधर्मी पदार्थों के द्रव्यमान–क्षरण की समय–सापेक्ष दर आदि इन श्रेणियों पर आधारित आंकड़े देते हैं।

HBCSE

◆ **अनुक्रम (Sequence) :**

निश्चित नियम का पालन करती हुई तथा एक निश्चित क्रम में रखी हुई संख्याओं के प्रतिरूप (पैटर्न) या समुच्चय को अनुक्रम कहते हैं।

उदाहरण :–

(a) –7, –4, –1, 2, 5, 8, 11, 14 तथा

(b) 1/3, 1/9, 1/27, 1/81, ...

अनुक्रम में आने वाली संख्याओं को अनुक्रम का **अवयव या पद** (element or term) कहा जाता है।

प्रथम पद प्रायः a या T_1 या a_1 द्वारा तथा अंतिम पद l द्वारा और n वां पद (व्यापक पद) T_n या a_n द्वारा निरूपित करते हैं।

परिमित (सीमित) पदों की संख्या वाले अनुक्रम को **परिमित अनुक्रम** (Finite Sequence) तथा पदों की संख्या **अपरिमित** होने पर उसे **अपरिमित अनुक्रम** (Infinite Sequence) कहते हैं।

उदाहरण :– एक अनुक्रम इस प्रकार से परिभाषित है –

$a_1 = a_2 = 1,\ a_n = a_{n-1} + a_{n-2}$ जब $n > 2\ ;\ n \in N$

तब अनुक्रम होगा – **0, 1, 1, 2, 3, 5, 8, 13, 21,**.....(इस अनुक्रम को **फिबोनाशी अनुक्रम** कहते हैं)।

◆ **श्रेणी (Series) :–**

जब किसी अनुक्रम के सभी पदों को + या – चिन्हों द्वारा संयोजित कर देते हैं तब उसे श्रेणी कहते हैं।

जैसे$(-7)+(-4)+(-1)+2+5+8+11+14+17+20+23$ एक श्रेणी है।

इस श्रेणी का व्यापक पद $\mathbf{T_n = 3n-10}$ तथा फलन के रूप में श्रेणी $^{11}\Sigma_{n=1}\ 3n-10;\ n \in N$ है।

◆ **श्रेढ़ी या श्रेढी (Progression) :–**

जिन अनुक्रमों के क्रमिक पदों में **परिवर्तन एक निश्चित प्रतिरूप में होता है** उन्हें **श्रेढ़ी** या **श्रेढी** कहते हैं।

ध्यान दें :– यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक अनुक्रम एक श्रेढी हो। फिबोनाशी अनुक्रम एक अनुक्रम है किन्तु श्रेढी नहीं है।

HBCSE

◆ **समान्तर श्रेढी (Arithmatic Progression) :–**

वह श्रेढी जिसके किन्हीं दो क्रमागत पदों का अन्तर सदैव समान रहता है, समान्तर श्रेढी कही जाती है। इसे **A.P.** द्वारा प्रकट करते हैं।

पदों का यह निश्चित अन्तर श्रेढी का सार्वान्तर (Common difference ; **c.d.**) कहलाता है।

सार्वान्तर = कोई पद – उसका पूर्व पद

c. d. या, $\mathbf{d = T_r - T_{r-1}}$

समान्तर श्रेढी का व्यापक पद :– $\mathbf{T_n = a+(n-1)d}$

समान्तर श्रेढी के n पदों का योग :–

यदि किसी समान्तर श्रेढी का प्रथम पद **a** , सार्वान्तर **d**, अंतिम पद **1** तथा इसके **n** पदों का योग $\mathbf{S_n}$ हो तो

$\mathbf{S_n = n/2(a+1)}$

=1/2(श्रेढी के पदों की संख्या x प्रथम और अंतिम पदों का योग)

तथा

$\mathbf{S_n = n/2\{2a+(n-1)d\}}$

उदाहरण 1 : श्रेणी 4+7+10+..... के 20 पदों का योग

हल : – इस प्रश्न में a=4 , d=7–4= 3, n=20;

सूत्र $\mathbf{S_n = n/2\{2a+(n-1)d\}}$

$= 20/2\{2x4+(20-1)3\}$

$= 10\{8+19x3\}$

$= 10(8+57)$

$= 10 \times 65$

$= 650$

अतः योगफल = 650

HBCSE

◆ **समान्तर माध्य और समान्तर मध्य पद (Arithmatic Mean) :–**

यदि कोई तीन राशियाँ a, A और b समान्तर श्रेढी में हों तो A को a और b का समान्तर माध्य कहते हैं।

समान्तर श्रेढी की परिभाषा से b – A = A – a और A= a+b/2 ;

यदि **a, A_1, A_2, A_3,.....A_n, b** समान्तर श्रेढी में हो तो **A_1, A_2, A_3, ..., A_n** को **a** और **b** के बीच **n समान्तर मध्य पद** कहते हैं।

इसमें पदों की संख्या n+2 तथा समान्तर मध्य पदों के निवेश के लिए सार्वान्तर **d** = b – a / n+1 होगा।

r वां मध्य पद = Ar = a + r (b – a/n+1)

समान्तर श्रेढी के गुण :–

(अ) किसी समान्तर श्रेढी के प्रत्येक पद में एक ही राशि जोड़ी या घटाई जाये अथवा प्रत्येक पद में एक ही राशि से गुणा या भाग दिया जाये तो परिणामी श्रेढी भी समान्तर श्रेढी होती है।

(आ) दो समान्तर श्रेढी के क्रमिक संगत पदों को जोड़ने अथवा घटाने से प्राप्त श्रेढी भी समान्तर श्रेढी होती है। पर ध्यान रहे कि इन श्रेढियों के संगत पदों के गुणन अथवा भाग से प्राप्त श्रेढी समान्तर नहीं होती।

◆ **गुणोत्तर श्रेढी (Geometric Progression) :**

वह श्रेढी जिसमें किन्हीं दो क्रमागत पदों का अनुपात सदैव बराबर होता है गुणोत्तर श्रेढी कही जाती है, इस अनुपात को सार्वानुपात (Common Ratio) कहते हैं। इसे **r** या **C.R.** द्वारा निरूपित करते हैं।

उदाहरण :– 1/3, 1/6, 1/12, 1/24,.....।

HBCSE

सार्वानुपात किसी पद में उसके पूर्व पद से भाग देकर प्राप्त करते हैं; अर्थात्

$$r = T_n / T_{n-1}$$

उक्त उदाहरण में सर्वानुपात $= T_3 / T_2$

$= 1/12 \ / \ 1/6$

$= 1/12 \times 6/1$

$= 1/2$ है।

गुणोत्तर श्रेढी का व्यापक पद :-

$$T_n = ar^{n-1}$$ तथा,

गुणोत्तर श्रेढी के n पदों का योग

$S_n = a(1-r^n)/1-r$ यदि $|r| < 1$ और

$S_n = a(r^n-1)/r-1$ यदि $|r| > 1$ हो।

उदाहरण 1 – अनुक्रम 1/3, 1/6, 1/12, 1/18, ...के आरंभिक 5 पदों का योग ज्ञात कीजिए।

हल :- यहाँ n=5, a=1/3 , r=1/2 और सार्वानुपात का धनात्मक मान 1 से छोटा है, अतः योग के सूत्र $S_n = a(1-r^n)/1-r$ से आरंभिक 5 पदों का योग है,

$S_5 = a(1-r^n)/1-r$

$= (1/3)\{1-(1/2)^5\}/(1-1/2)$

$= (1/3)\{1-1/32\}/(1/2)$

$= (1/3)\{31/32\} \times 2$

$= 31/48$

गुणोत्तर श्रेढी के अनन्त पदों का योग : –

गुणोत्तर श्रेढी के n पदों का योग

$$S_n = a(1-r^n)/1-r$$

HBCSE

यदि $|r|<1$ यदि पदों की संख्या $n\to\infty$ तब $r^n\to0$

इस दशा के अनन्त पदों का योग

$$S_n = a\,(1-r^n)/1-r$$

यदि $|r|<1$ और पदों की संख्या $n\to\infty$ तब $r^n\to0$, $a\,(1-0)/1-r$ या $S = a/1-r$

उदाहरण :– अनंत गुणोत्तर श्रेढी 20/7, 80/49, 320/343,.....का योग ज्ञात कीजिए।

हल :– यहाँ $a = 20/7$ और $r = 4/7<1$

अतः अनंत पदों का योग होगा $S = a/1-r$

$= 20/7/(1-4/7)$

$= 20/7 \times 7/3$

$= 20/3$

HBCSE

◆ **गुणोत्तर माध्य और गुणोत्तर मध्य पद (Geometric Mean) :–**

यदि तीन राशियाँ a, G और b गुणोत्तर श्रेढी में हों तो G को a और b का गुणोत्तर माध्य कहते हैं। और गुणोत्तर श्रेढी की परिभाषा से $G/a=b/G$ या $G^2=ab$ या, $G=\sqrt{ab}$= a और b का गुणोत्तर माध्य, होता है।

दो राशियों के बीच n गुणोत्तर मध्य पद निवेशित करना :

यदि a, b के बीच गुणोत्तर मध्य पद $G_1, G_2, G_3, G_{n-1}, G_n$ हों तो

$$r = \sqrt[n+1]{b/a}, \quad \text{और}$$

$$p \text{ वाँ पद } \quad G_p = \sqrt[n+1]{a^{n+1-p}\, b_p}$$

गुणोत्तर श्रेढी के गुण : –

(अ) गुणोत्तर श्रेढी के प्रत्येक पद में एक राशि से गुणा या भाग करने से प्राप्त नई श्रेढी भी गुणोत्तर श्रेढी होती है।

(आ) दो गुणोत्तर श्रेढियों के क्रमिक संगत पदों के गुणा या भाग करने से प्राप्त नई श्रेढी भी गुणोत्तर श्रेढी होती है।

(इ) गुणोत्तर श्रेढी के पदों के व्युत्क्रमों से बनी श्रेढी भी गुणोत्तर श्रेढी होती है।

◆ **हरात्मक श्रेढी (Harmonic Progression) : –**

वह श्रेढी जिसके पदों के व्युत्क्रमों (Reciprocals) से बनी श्रेढी के पद समान्तर श्रेढी में हों, इसे H.P. द्वारा निरूपित करते हैं।

जैसे : 1/2, 1/5, 1/8, 1/11, 1/14, 1/17 एक हरात्मक श्रेढी है।

हरात्मक श्रेढी का व्यापक पद :-

यदि n पदों वाली किसी हरात्मक श्रेढी का प्रथम पद a और दूसरा पद b हों तो हरात्मक श्रेणी का

$$\textbf{n वाँ पद } T_n = ab/\{b+(n-1)(a-b)\}$$

◆ **हरात्मक माध्य :-**

यदि क्रमशः a, H, और b तीन हरात्मक श्रेढी में हों तो H को a और b का हरात्मक मध्य पद कहते हैं। परिभाषा के अनुसार 1/a, 1/H, 1/b समान्तर श्रेढी में होंगे अतः $1/H - 1/a = 1/b - 1/H \rightarrow$ **$H = 2ab/a+b$** = a और b का हरात्मक माध्य होगा।

◆ **समान्तर माध्य, गुणोत्तर माध्य और हरात्मक माध्य में संबन्ध**

चूंकि किन्हीं दो संख्याओं a, b के बीच

समान्तर माध्य $\mathbf{A = 1/2(a+b)}$,

गुणोत्तर माध्य $\mathbf{G = \sqrt{ab}}$ तथा

हरात्मक माध्य $\mathbf{H = 2ab/a+b}$ होता है।

अतः इसके अनुसार

$$\mathbf{G^2 = A.H} \text{ और } \mathbf{A > G > H}$$

◆ **विविध श्रेणियाँ (Miscellaneous Series) :**

समान्तरीय गुणोत्तर श्रेणी (Arithmetic–Geometric Series) :–

दो समान पद– संख्या वाली समान्तर श्रेणी और गुणोत्तर श्रेणी के क्रमिक पदों के गुणन से बनने वाली परिणामी श्रेणी को समान्तरीय गुणोत्तर श्रेणी कहते हैं।

समान्तरीय गुणोत्तर श्रेणी का मानक रूप

$a*1+(a+d)*r+(a+2d)*r^2+(a+3d)*r^3+.....\{a+(n-1)d\}*r^{n-1}+.....$

उदाहरण :– $1-3*2+5*4-7*8+.....$समान्तरीय गुणोत्तर श्रेणी है।

मानक समान्तरीय गुणोत्तर श्रेणी का योग :–

$\mathbf{S=1/1-r\{a+d*r*(1-r^n)/1-r-\{a+(n-1)d\}*r^n\}}$ और

यदि $\mathbf{n\to\infty}$ तब

$$\mathbf{S = a/1-r + dr/(1-r)^2}$$

प्रथम **n** प्राकृतिक संख्याओं का योग :-

$S = 1 + 2 + 3 + 4 + \dots\dots + (n-1) + n$

$= \Sigma n$

$= {}^{n}\Sigma_{1}\, n$

$= n(n+1)/2$

प्रथम **n** प्राकृतिक संख्याओं के वर्गों का योग :-

$= 1^2 + 2^2 + 3^2 + 4^2 + \dots\dots (n-1)^2 + n^2$

$= \Sigma n^2$

$= {}^{n}\Sigma_{1}\, n^2$

$= n(n+1)(2n+1)/6$

प्रथम **n** प्राकृतिक संख्याओं के घनों का योग :-

$= 1^3 + 2^3 + 3^3 + 4^3 + \dots\dots + (n-1)^3 + n^3$

$= \Sigma\, n^3$

$= {}^{n}\Sigma_{1}\, n^3$

$= \{n(n+1)/2\}^2$

$= (\Sigma\, n)^2$

- **भक्षाली हस्तलिपि से प्राप्त श्रेणी 'युति वर्ग क्रम' :-**

यदि किसी श्रेणी के पद $a_1, a_2, a_3, a_4, \dots\dots a_{n-1}$ से निरूपित हों तो श्रेणी $a_1 + 2a_1 + 3(a_1+a_2) + 4(a_1+a_2+a_3) + \dots\dots$ को युति वर्ग क्रम नाम दिया गया है।

HBCSE

श्रेणी का प्रथम पद 1 हो तो युति वर्ग क्रम 1+2+9+48+300+.... होगा।

भक्षाली हस्तलिपि से प्राप्त श्रेणी 'युतगुणित वर्ग क्रम':-

यदि किसी श्रेणी के पद a_1, a_2, a_3,.....आदि से निरूपित हों और b,c अन्य राशियां हों तो श्रेणी $a_1+(2a_1+b)+\{3(a_1+a_2)+(b+c)\}+\{4(a_1+a_2+a_3)+(b+2c)\}$ +..... को **युतगुणित वर्ग क्रम** नाम दिया गया है।

आर्यभट की श्रेणी 'चितिघन' :-

श्रेणी $1+(1+2)+(1+2+3)+(1+2+3+4)+.....+(1+2+3+.....+n)$ को आर्यभट ने चितिघन नाम दिया था।

$$\text{चितिघन श्रेणी का योग} = \mathbf{n}(\mathbf{n}+1)(\mathbf{n}+2)/6$$

इन सभी प्रकार की श्रेढियों का विविध अध्ययन उपरोक्त तीन प्रकार की आधारभूत श्रेढियों के आधार पर ही किया जाता है।

➢ विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद

विज्ञान शिक्षण हेतु अल्पव्ययी दृश्यश्रव्य सामग्री का प्रयोग

■ अखिलेश कुमार श्रीवास्तव

विद्यालय में समस्त गतिविधियों का केन्द्र विद्यार्थी ही होता है। इसी के इर्द–गिर्द शिक्षा का समस्त ताना–बाना बुना जाता है। जैसा कि सभी जानते हैं कि प्रभावी शिक्षण से ही अधिगम संभव है तथा इसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु विभिन्न प्रकार की शिक्षण विधियों का उपयोग किया जाता है। परन्तु प्रायः यह देखा गया है कि इन शिक्षण विधियों का प्रयोग मात्र बी.एड. की कक्षाओं में अध्यापन के अभ्यास के समय किया जाता है तथा वहां प्रायोगिक कार्य के समय ही इन पर अधिक जोर दिया जाता है।

विद्यालयों में सामान्यतः छोटी कक्षाओं में तू पढ़ विधि (पठन विधि) अर्थात् किसी विद्यार्थी को खड़ा कर उससे उस विषय संबंधी पाठ्यपुस्तक के किसी अध्याय का कुछ भाग पढ़ने को कह दिया जाता है तथा शेष विद्यार्थी उस अध्याय के उस भाग को पढ़ते रहते हैं। इस विधि के लाभ कम तथा हानियाँ ज्यादा है।

उच्च कक्षाओं में विज्ञान व गणित विषयों के अध्यापन में श्यामपट्ट प्रदर्शन विधि तथा अन्य विषयों में व्याख्यान विधि का उपयोग किया जाता है। इन विधियों के भी लाभ और हानियाँ हैं।

एक पुरानी कहावत है कि–

मैंने सुना, भूल गया।
मैंने देखा, कुछ याद रहा।
मैंने किया, सब कुछ समझ गया।

अर्थात् विज्ञान शिक्षण में प्रयोग प्रदर्शन विधि का अधिक प्रयोग किया जाये तथा विद्यार्थियों को भी इन प्रयोगों को करने की आजादी दी जाये तो विद्यार्थी इन प्रकरणों को लंबे

समय तक याद रखेंगे तथा आवश्यकता पड़ने पर सरल भाषा में अन्य विद्यार्थियों व आम लोगों को भी समझा सकेंगे।

समस्या

परन्तु वर्तमान समय में प्रायोगिक सामग्री अत्यंत महंगी होने से विद्यार्थियों को सभी प्रयोग करवाकर अध्यापन कार्य नहीं कराया जा सकता है।

समाधान के प्रयास

इस कठिनाई को ध्यान में रखते हुये कई संस्थाएँ जैसे विज्ञान प्रसार, अन्वेषिका ने अभिनव प्रयास किए हैं। आई. आई. टी. कानपुर तथा ए. आर. टी. बी. एस. ई., नागपुर से जुड़े प्राध्यापकों ने ऐसे प्रयोग विकसित किये हैं जिनमें अल्पव्ययी दृश्य–श्रव्य सामग्री का प्रयोग किया जाता है जिससे संस्था पर अधिक वित्तीय भार नहीं पड़ता है। इन सामग्री का सर्वसुलभ होना भी एक सुखद पहलू है।

विवरण

इस लेखक को भी ऐसी संस्था ए. आर. टी .बी. एस. ई., नागपुर से 2005 में जुड़ने का अवसर प्राप्त हुआ जहां उसने जाना कि विज्ञान का शिक्षण किस प्रकार दिया जाता है ? किस प्रकार अल्पव्ययी दृश्य–श्रव्य सामग्री का प्रयोग करके शिक्षण को रोचक बनाया जा सकता है? उदाहरण के लिए यहां मैं कुछ प्रयोगों का जिक्र करना चाहूंगा जो ऊष्मागतिकी से संबंधित हैं।

कुछ प्रयोग जिससे ऊष्मागतिकी से संबंधित कुछ तथ्य स्पष्ट किये जा सकते हैं

- **किसी बोतल के मुँह में से आंशिक रूप से जल से भरे गुब्बारे का बिना दबाए ही स्वतः अंदर चले जाना**

जब एक जारनुमा बोतल के मुँह पर एक आंशिक रूप से जल से भरे गुब्बारे को रखकर इसे दबाकर बोतल के अंदर धकेलने का प्रयास किया जाता है तो सभी विद्यार्थी असफल होते हैं। इसका कारण पूछने पर वे इसका संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाते हैं।

जब उनसे यह कहा जाता है कि क्या किसी और वस्तु का प्रयोग करके तथा हथेली से बिना दबाये इसको सम्पन्न किया जा सकता है तो सामान्यतः उनका उत्तर 'नहीं' होता है। परंतु जब एक कागज के जलते हुए टुकड़े को बोतल के अंदर डालकर, इसके मुँह पर गुब्बारा रखा जाता है तो बोतल इस गुब्बारे को आसानी से निगल लेती है। अर्थात् गुब्बारे को बिना दबाये ही यह क्रिया सम्पन्न हो जाती है।

- **किसी मोमबत्ती के बुझने पर गिलास में पानी के ऊपर चढ़ने का कारण?**

कई पुस्तकों में यह प्रयोग वायु में ऑक्सीजन की मात्रा बताने के लिए दिया गया है। इस प्रयोग में किसी जल से भरे बर्तन में रखी जलती मोमबत्ती पर जब एक पारदर्शी कांच का गिलास रखा जाता है तो मोमबत्ती के बुझते ही गिलास में जल स्तर में वृद्धि होती है। जिसके बारे में बताया जाता रहा है कि जैसे ही मोमबत्ती के जलने से ऑक्सीजन समाप्त हो जाती है वैसे ही ऑक्सीजन के आयतन के बराबर जल गिलास में ऊपर चढ़ गया। बचपन में मैं भी इस प्रयोग को इसी रूप में देखता व समझता था तथा कई बार छोटी कक्षाओं में इसी प्रकार बताया भी गया था।

जब इस प्रयोग को अलग-अलग आकार के गिलासों के साथ व विभिन्न लंबाई व मोटाई की मोमबत्तियों के साथ किया जाता है तो हर बार भिन्न-भिन्न जल स्तर प्राप्त होते हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि ऑक्सीजन के जलने पर उतने ही आयतन की कार्बन डाईऑक्साईड बनती है तथा यह इतनी जल्दी जल में घुल नहीं सकती है।

(3) जब एक जल भरी प्लेट में स्थित जलती मोमबत्ती पर एक छोटे मुँह की बोतल रखते हैं

● आप देखते हैं कि बोतल के मुँह के पास हवा के बुलबुले दिखाई देने लगते हैं तथा जैसे ही मोमबत्ती बुझने को होती है तो जल ऊपर चढ़ने लगता है। जैसा कि आपने देखा कि प्लेट में स्थित जल समाप्त हो जाने के बाद बाहर से हवा भी अंदर जाने लगी थी।

● किसी काँच की बोतल में गर्म जल भरकर जब उसे किसी जल से भरे मग या गिलास में रखते हैं तो भी इस बोतल में जल स्तर में वृद्धि होती है। विद्यार्थियों से पूछा जा सकता है कि यहाँ तो ऑक्सीजन नहीं जली तो फिर जलस्तर क्यों ऊपर चढ़ रहा है?

● इसी प्रकार किसी हार्ड प्लास्टिक की बोतल व नली द्वारा इससे जुड़ी दो पारदर्शी प्लास्टिक बोतलों की सहायता से इस प्रयोग को और स्पष्टता से प्रदर्शित किया जा सकता है। इन प्रयोगों से ऊष्मा से संबंधित विभिन्न जानकारी समझाई जा सकती है।

● रूमाल को मोमबत्ती की लौ पर रख देने पर भी उसका नहीं जलना, या कागज के बर्तन में पानी को गर्म करना।

सामान्यतः विद्यार्थियों के मन में यह भ्रांति होती है कि जब किसी लौ पर कोई ज्वलनशील वस्तु रखी जाए तो वह तुरंत जल उठती है। जब इन्हीं में से किसी एक का रूमाल लेकर पूछा जाता है कि यदि इसे जलती मोमबत्ती पर रख दें तो क्या होगा, तो सामान्यतः उत्तर आता है कि रूमाल जल जायेगी। वे कहते कि घर वाले डांटेंगे कि पढ़ने गये थे कि खेल करने गये थे और खेल भी ऐसा कि रूमाल जला लाये, यदि किसी कपड़े में आग लग जाती तो।

जब इस रूमाल में एक सिक्का रखकर सिक्के के ऊपर के रूमाल के भाग को मोमबत्ती की लौ पर ले जाते हैं तो रूमाल का कुछ भाग काला अवश्य हो जाता है परंतु वह जलता नहीं है, हाँ इसके अंदर स्थित सिक्का काफी गर्म हो जाता है। इस प्रयोग की सहायता से वस्तु के ज्वलन बिन्दु आदि की जानकारी दी जा सकती है।

इसी प्रकार कागज के बने बर्तन में जब जल रखकर किसी मोमबत्ती की लौ पर रखते हैं तो कुछ देर बाद पानी गर्म हो जाता है परंतु कागज पर कोई जलने का निशान नहीं आता है, हाँ इसका तल कुछ काला जरूर हो जाता है।

(4) ऊष्मा के स्थानान्तरण संबंधित प्रयोग

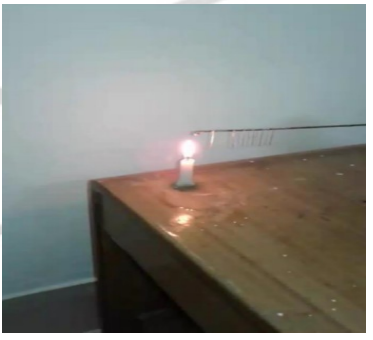

सामान्यतः विद्यार्थी ऊष्मा स्थानान्तरण की विधियों के बारे में जानते हैं परंतु इन्हें प्रयोग के माध्यम से समझाने में असफल रहते हैं। इसके लिए अर्थात् चालन विधि से ऊष्मा स्थानान्तरण को समझाने के लिए किसी साइकिल की तान या पतली छड़ के ऊपर मोम की सहायता से आलपिनों को चिपका देते हैं। अब जब इसके एक सिरे को किसी मोमबत्ती की लौ पर रखते हैं तो सर्वप्रथम लौ के पास वाली आलपिन नीचे गिर जाती है तथा धीरे–धीरे एक के बाद एक सभी आलपिनें नीचे गिर जाती है। प्रयोग को करते समय विद्यार्थियों को बता दें कि किसी कपड़े से इस छड़ को ना पकड़े नहीं तो हाथ जलने का डर बना रहेगा।

इसी प्रकार संवहन विधि से ऊष्मा स्थानान्तरण को समझाने के लिए लौ पर गर्म होते पानी से भरे कांच के गिलास में कुछ लाल दवा या पोटैशियम परमैंगनेट के क्रिस्टल डाल दें तो विद्यार्थी आसानी से इस घटना को समझ सकते हैं।

विकिरण विधि से सामान्यतः सभी परिचित होते हैं। सूर्य से प्राप्त गर्मी या सर्दियों में अलाव या हीटर से तापते समय इस घटना से परिचय प्राप्त हो जाता है।

(5) गर्म जल का ठंडे जल से हल्का होना

सामान्यतः हम पढ़ते हैं कि गर्म जल ठंडे जल से हल्का होता है। इसे प्रयोग द्वारा समझाने के लिये दो समान आकार के कांच के गिलास लेते हैं। इनमें से एक में रंगहीन ठंडा जल लेते हैं तथा दूसरे गिलास में रंगीन गर्म जल लेकर इस गिलास को इस ठंडे गिलास के ऊपर एक कार्डबोर्ड की सहायता से इस प्रकार रखते हैं कि दोनों गिलासों की परिधियां या रिम एक दूसरे के ऊपर रहें। जैसे ही कार्डबोर्ड को हटाते है तो पाते है कि रंगीन व गर्म पानी ठंडे पानी के ऊपर तैरता है। यदि इन गिलासों को तिरछा करते हुये उल्टा कर दें तो पायेंगे कि अब पुनः रंगीन व गर्म पानी ठंडे पानी के ऊपर ही तैर रहा है।

इस प्रकार हम विभिन्न प्रकार की गतिविधियों की सहायता से कई जानकारियाँ विद्यार्थियों को देकर उन्हें लाभान्वित भी कर सकते हैं तथा अल्प मूल्य में उपलब्ध दृश्य–श्रव्य सामग्री की सहायता से पठन–पाठन को आनंददायी तथा अधिगमपूर्ण बना सकते हैं।

➢ भौतिकी शिक्षक
राउमावि
धौलपुर (राजस्थान)
ई–मेल : akhilashsri@gmail.com

HBCSE

जैवप्रौद्योगिकी एवं उसके अनुप्रयोग

■ डॉ. दुर्गा दत्त ओझा

सारांश

मानव कल्याण के लिए व्यापारी स्तर पर वस्तुओं के उत्पादन और सेवाएँ प्रदान करने के लिए सूक्ष्मजीवों का नियन्त्रित उपयोग "जैव प्रौद्योगिकी" कहलाती है। बायोटेक्नोलॉजी या जैव–प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत जैविक कारकों, जैसे सूक्ष्मजीवों, जन्तु एवं पादप कोशिकाओं अथवा उनके अवयवों के नियंत्रित उपयोग से मानव के लिए उपयोगी उत्पादों का उत्पादन किया जाता है। यह प्रौद्योगिकी बहुविधायी विषय है, जिसमें अनेक विषयों का समावेश है, यथा–जीव विज्ञान, आनुवंशिकी, कोशिका विज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, विषाणुविज्ञान, जैव–रसायन अभियांत्रिकी, रसायन अभियांत्रिकी तथा कम्प्यूटर विज्ञान आदि। जैवऔद्योगिक क्रांति जैव–प्रौद्योगिकी का सर्वोच्च लक्ष्य एवं उद्देश्य है।

जैव–प्रौद्योगिकी या बायोटेक्नोलॉजी शब्द नया अवश्य है परन्तु यह प्रक्रिया अत्यन्त प्राचीन है। ईसा पूर्व 5000 वर्षों के पहले से भी मनुष्य सूक्ष्मजीवों की सहायता से सिरका, दही तथा मदिरा आदि का उत्पादन करता रहा है। सूक्ष्मजीवों के ये तथा अन्य कई उपयोग जो जैव–प्रौद्योगिकी से ही सम्बन्धित है, हमारे दैनिक जीवन के अभिन्न अंग बन चुके हैं।

जैव–प्रौद्योगिकी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ब्रिटेन के लीड्स नगर की नगर परिषद ने सन् 1920 में किया था। लगभग 50 वर्ष पूर्व महान वैज्ञानिक हाल्डेन ने आधुनिक जैव–प्रौद्योगिकी की संकल्पना की थी। हमारे देश में भी वर्ष 1986 से जैव–प्रौद्योगिकी विभाग बहुत सक्रियता से देश के अनवरत विकास में संलग्न है। जैव–प्रौद्योगिकी को औद्योगिक क्षेत्र, परिमाण एवं मूल्य तथा प्रौद्योगिकी के स्तर के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। जैव–प्रौद्योगिकी में किसी सूक्ष्मजीव अथवा जन्तु या पादक कोशिका की सहायता से किसी उत्पाद के या व्यापारिक उत्पादन को 5 मुख्य प्रक्रमों या चरणों में बांटा जा सकता है, यथा–विभेद चयन एवं सुधार, वृहत् कल्चर, कोशिका अनुक्रियाओं का इष्टतमीकरण (ऑप्टीमाईजेशन), प्रक्रम प्रचालन तथा उत्पाद की पुनः प्राप्ति।

HBCSE

बायोटेक्नोलॉजी ने मानव जीवन के लगभग सभी पहलुओं को प्रभावित किया है। इसके क्रिया क्षेत्र का विस्तार पर्यावरण से लेकर मानव स्वाथ्य और मानव जनन पर नियंत्रक है। इस प्रौद्योगिकी का विश्व व्यापार में भी महत्वपूर्ण योगदान है और यह रोजगार, उत्पादन एवं व्यापार के नए–नए अवसर प्रदान कर रही है। मानव स्वाथ्य की रक्षा के लिए बायोटेक्नोलॉजी के अब तक के निम्न उत्पाद अतिमहत्वपूर्ण हैं, यथा एकक्लोनीय प्रतिरक्षी, डी एन ए अन्वेषी, पुनर्योगज टीके, दूर्लभ एवं बहुमूल्य दवाइयां, जीन उपचार की तकनीक एवं अभिकारक आदि।

सूक्ष्मजीवों के उपयोग से बहुत ही मूल्यवान यौगिकों का उत्पादन किया जा रहा है। कई सूक्ष्मजीवों, जैसे – वाइरस, फफूंद, अमीबा, बैक्टीरिया आदि का उपयोग नाशी कीटों तथा पादप रोगों के नियंत्रण में किया जा रहा है। इसी प्रकार कुछ बैक्टीरिया तथा नीलहरित शैवाल का उपयोग जैव उर्वरक के रूप में, कुछ जैवभार का मानव या पशु भोजन के रूप में उपयोग होता है।

बैक्टीरिया के चुने एवं सुधरे विभेदों का उपयोग सीवेज उपचार, औद्योगिक इकाइयों के बहिःस्रावों में उपस्थित अविषालु पदार्थों के निराविषीकरण, खनिज तेलों के विघटन आदि के लिए किया जाता है। आनुवंशिकी इंजीनियरी द्वारा जन्तुओं तथा पौधों में उपयोगी जीनों का स्थानांतरण किया गया है, इससे फसलों के लक्षणों में उपयोगी सुधार हुआ है। पौधों का त्वरित क्लोनीय गुणन, आनुवंशिकी विविधता आदि क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कार्य हो रहे हैं।

जैव–प्रौद्योगिकी या बायोटेक्नोलॉजी शब्द की उत्पत्ति बायोलॉजी (जीव विज्ञान) एवं टेक्नोलॉजी अर्थात् प्रौद्योगिकी शब्दों को आपस में जोड़ने से हुई है। जैविक कारकों, जैसे– सूक्ष्मजीवों, जंतु और पादप कोशिकाओं अथवा अवयवों के नियंत्रित उपयोग से मानव के लिए उपयोगी उत्पादों का उत्पादन जैव–प्रौद्योगिकी कहलाती है। वस्तुतः जैव–प्रौद्योगिकी में विज्ञान एवं अभियांत्रिकी के सिद्धांतो के उपयोग एवं जैविक कारकों की सहायता से उपयोगी उत्पादों का उत्पादन किया जाता है।

विभिन्न संगठनों की दृष्टि में जैव–प्रौद्योगिकी :

विश्व के विभिन्न संगठनों ने अपनी–अपनी अभिरुची एवं पूर्वग्रहों के आधार पर इस प्रौद्योगिकी

को परिभाषित करने का प्रयास किया है, जो निम्नवत हैं –

1. जैव–प्रौद्योगिकी का सम्बन्ध जैविक गतिविधियों का तकनीकी एवं औद्योगिक उत्पादन में उपयोग से है। इसमें सूक्ष्म जैविकी, जैव रसायन विज्ञान, रसायन अभियांत्रिकी और प्रक्रम अभियांत्रिकी का समावेश होता है।

   "डेकेमा, जर्मनी, 1976"

2. जैव–रसायन विज्ञान, सूक्ष्मजैविकी तथा अभियांत्रिकी के समन्वित उपयोग से सूक्ष्म जीवाणुओं अथवा संवर्धित ऊतक, कोशिकाओं और उनके घटकों की क्षमता का औद्योगिकी स्तर पर उपयोग।

   "यूरोपीय जैव–प्रौद्योगिकी संगठन–1981"

3. ऐसी कोई भी तकनीक, जिसमें जीवाणुओं अथवा उनके घटकों द्वारा उत्पादों का निर्माण अथवा रूपांतरण एवं पादपों और जीवधारियों में सुधार होता है अथवा विशेष उपयोग हेतु नए जीवाणुओं का विकास किया जाता है, जैव प्रौद्योगिकी है।

   "अमेरिकी रसायन संस्था, 1988"

4. मानव–कल्याण के लिए व्यापारिक स्तर पर वस्तुओं के उत्पादन और सेवाएं प्रदान करने के लिए सूक्ष्म जीवों का नियंत्रित उपयोग "जैव–प्रौद्योगिकी" कहलाती है।

   "अनेक संस्थाओं द्वारा नवीनतम स्वीकार्य परिभाषा"

उपर्युक्त परिभाषाओं से यही परिलक्षित होता है कि जैव–प्रौद्यौगिकी प्राकृतिक अथवा कृत्रिम जीवाणुओं अथवा उनके घटकों का कार्यक्षेत्र है। आर्थिक लाभ एवं मानवीय कल्याण के लिए जीव–विज्ञान का व्यापक प्रयोग इसका प्रमुख लक्ष्य है। वस्तुतः यह बहुविधायी विषय है, जिसमें अनेक विषयों का समावेश है। जीव–विज्ञान, आनुवंशिकी, कोशिका विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, कृषि विज्ञान, विषाणु विज्ञान, जैवरसायन अभियांत्रिकी, रसायन अभियांत्रिकी तथा कम्प्यूटर विज्ञान आदि इसके आधार स्तंभ हैं।

जैव प्रौद्योगिकी का पुरातन एवं अद्यतन परिदृश्य

वस्तुतः बायोटेक्नोलॉजी या जैव प्रौद्योगिकी शब्द अवश्य नया है। परन्तु प्रक्रिया अत्यन्त

प्राचीन है। यदि हम भारतीय वाङ्मय, अध्यात्म, आयुर्वेद, ज्योतिष, मंत्र–तंत्र, सामवेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद आदि के अनगिनत अलौकिक एवं प्रामाणिक प्रयोगों और उपलब्धियों पर विचार करें तो हमें ये विदित होता है कि कई घटनाएँ अपरोक्ष एवं परोक्ष रूप से जैव–प्रौद्योगिकी से संबंध रखनेवाली हैं। अतः अनुभव पर आधारित ज्ञान के अनुप्रयोग से प्राप्त उत्पादों को जैव–प्रौद्योगिकी का प्रारंभिक युग कहा जा सकता है।

"जैव प्रौद्योगिकी" शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ब्रिटेन के लीड्स नगर परिषद ने सन् 1920 में किया था। उसी समय वहाँ जैव प्रौद्योगिकी संस्थान की स्थापना भी हुई। इस प्रौद्योगिकी ने प्रगति के सोपान पर पहला कदम तब रखा, जब किण्वन तकनीकों द्वारा ऐसीटोन ब्यूटेनॉल का उत्पादन किया गया।

किण्वन तकनीक के कारण ही रामबाण औषध "पेनिसिलीन" कम कीमत पर आम उपयोग के लिए उपलब्ध हुई है। सन् 1881 में जीवाणु समूहों के संवर्धन एवं स्ट्रेन के संरक्षण के तरीकों की जानकारी के साथ ही औद्योगिक सूक्ष्म–जैविकी को गति मिली और जैव–प्रौद्योगिकी के दूसरे युग का सूत्रपात हुआ। पेनिसिलीन की उत्पादक प्रक्रिया के विकास के साथ जैव–प्रौद्योगिकी के तीसरे युग का प्रारंभ हुआ। जैव–प्रौद्योगिकी के चौथे युग का प्रारंभ अभी हुआ है। अणु–जैविकी एवं आनुवंशिकी के क्षेत्रों में हुई वैज्ञानिक क्रांति ने इसका सूत्रपात किया है। नए उत्पादों की क्रांति इसका पहला अनुप्रयोग था।

हीब्रिडोमा तकनीक द्वारा एक कृत्तिकीय एन्टिबॉडी की प्राप्ति संभव हुई, जबकि आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा मानव–वृद्धि हार्मोन तथा इंसुलिन की। नूतन जैव–प्रौद्योगिकी के उपकरणों के निर्माण को अणु–जैविकी के क्षेत्र में हुए विकास से भी बल मिला। सन् 1978 में पुनर्योगज (Recombinant) डी एन ए अनुसंधान का पहला प्रतिफल मानवीय इंसुलिन के रूप में आया, जिसे "जेनेनटेक" नामक जैव–प्रौद्योगिकी फर्म ने ई. कोलाई से बनाया था। इस पुनर्योगज ई. कोलाई द्वारा उत्पादित इंसुलिन का मधुमेह के उपचार में उपयोग हो रहा है।

सन् 1980 में सबसे महत्वपूर्ण जैव–प्रौद्योगिकी परियोजना "ह्यूमन जीनोम" प्रकाश में आई। इसी प्रकार सन् 1987 में हिलीमैन के अथक प्रयासों से हिपेटाइटिस के लिए पुनर्योजित टीकों का निर्माण हुआ, जो साधारण टीकों से अधिक प्रभावशाली है एवं पूरे विश्व

से हिपेटाइटिस का प्रकोप नष्ट करने में सक्षम है। इसी प्रकार आणविक औषधियों तथा जीन थेरेपी का भी लाभ– अनेकानेक लोगों ने प्राप्त किया है। जैव–प्रौद्योगिकी के विकास में नया मोड़ तब आया जब वॉटसन और क्रिक द्वारा डी एन ए की दोहिरी हेलिक्स संरचना की खोज की गई। इसके फलस्वरूप अणुजैविकी, जीवविज्ञान की नई शाखा के रूप में विकसित हुई।

जैव–प्रौद्योगिकी के इतिहास में 27 फरवरी 1997 को नेचर शोधपत्रिका में प्रकाशित समाचार महत्वपूर्ण रहा, जब एडिनबर्ग के भ्रूण वैज्ञानिक डॉ. इआन विल्मट ने भेड़ की एकल कोशिका के द्वारा 'डॉली' नामक मेमना को विकसित करके जैव–प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नए अध्याय का सूत्रपात किया।

वर्गीकरण : जैव–प्रौद्योगिकी को औद्योगिक क्षेत्र, परिमाण एवं मूल्य तथा प्रौद्योगिकी के आधार पर तीन वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं (सारणी–1) प्रथम वर्ग का आधार उत्पादों का रासायनिक स्वरूप है, जबकि दूसरे वर्ग का आधार उत्पाद का परिमाण एवं उसका लागत मूल्य है। तीसरा वर्ग प्रौद्योगिकी की सुगमता व क्लिष्टता पर आधारित है।

जैव–प्रौद्योगिकी का वर्गीकरण

आधार	प्रकार	उत्पाद
1. औद्योगिक	रसायन	ऐसीटोन, ब्यूटेनॉल, इथेनॉल, कार्बनिक अम्ल, एंजाइम, सुगंध, बहुलक, धातुएँ।
	औषध	एन्टिबायोटिक, निदान कारक, एंजाइम, अवरोधक, टीके, स्टेरॉइड आदि।
	खाद्य पदार्थ	अमीनो अम्ल, पेय पदार्थ, यीस्ट (प्रकिण्व), नए खाद्य पदार्थ, मशरूम। स्टार्च, ग्लूकोस, उच्च फ्रूक्टोस सिरप, जीव–विष, अपनयन/निवारण।
	ऊर्जा	जैव पदार्थ, ऐल्कोहोल, मीथेन (बायोगैस)।
	लोक–सेवा	विश्लेषण के उपकरण, अपशिष्ट निस्तारण, जल–संशोधन, अपशिष्ट प्रबंधन।

HBCSE

जैव–प्रौद्योगिकी का वर्गीकरण

आधार	प्रकार	उत्पाद
	कृषि	पशु–आहार, सायलो–संरक्षण, कंपोस्टिंग, नाइट्रोजन स्थिरीकरण, पशु टीके, जैविक कीटनाशक, पादप कोशिका एवं ऊतक संवर्धन, आनुवंशिक रूपांतरण।
2. परिमाण एवं मूल्य	अधिक परिमाण कम मूल्य	पशु–आहार, जैव पदार्थ, ऐल्कोहोल, मीथेन, जल–संशोधन, अवजल–संशोधन
	अधिक परिमाण मध्यवर्ती मूल्य	अमीनो एवं कार्बनिक अम्ल, ऐसीटोन, ब्यूटेनॉल, खाद्य पदार्थ, यीस्ट, धातुएँ, बहुलक
	कम परिमाण अधिक मूल्य	एन्टिबायोटिक एवं अन्य स्वास्थ्य–रक्षक एंजाइम, विटामिन।
3. प्रौद्योगिकी का स्तर	उच्च स्तर	खाद्य संयोजी, मानव खाद्य, स्वास्थ्य रक्षक।
	माध्यमिक स्तर	किण्वित खाद्य, पेय, जैव–उर्वरक, कीटाणुनाशक, एंजाइम।
	निम्न स्तर	प्रदूषण–नियंत्रण, स्वच्छता, ईंधन, पशु आहार

जैव–प्रौद्योगिकी की क्रियाविधि

इस प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत किसी सूक्ष्म जीव अथवा जंतु या पादप कोशिका की सहायता से किसी उत्पाद के व्यापरिक उत्पादन को निम्नांकित पाँच चरणों में विभक्त किया जा सकता है।

i. विभेद (**Strain**) चयन और सुधार

किसी भी जैव–प्रौद्योगिकीय उत्पाद को बड़े पैमाने पर प्राप्त करने के लिए सबसे पहले उस जैविक कारक, जैसे सूक्ष्मजीव, जंतु अथवा पादप कोशिका को प्राप्त किया जाता है, जो वांछित उत्पाद को उत्पादित कर सकें। सूक्ष्मजीव के मामले में इसे उसके प्राकृतिक आवास स्थान (Habitat) से विलग करते हैं, तत्पश्चात् उस सूक्ष्मजीव के विभेद को सुधारा जाता है, जिससे वह अधिकाधिक मात्रा में वांछित उत्पाद उत्पन्न कर सके।

ii. बृहत् कल्चर (**Massculture**)

चुने गए एवं सुधरे विभेद को स्टॉक कल्चर के रूप में दीर्घ काल रखा जाता है। इस विभेद के कल्चर द्वारा दो प्रकार के उत्पाद प्राप्त किए जा सकते हैं, यथा–जीवभार एवं कोई विशिष्ट यौगिक। एकल कोशिका प्रोटीन (Single Cell Protein) के रूप में सूक्ष्मजीवों के जीवभार का उपयोग किया जाता है। दूसरी ओर कई सूक्ष्मजीवों से ऐल्कोहोल, एन्टिबायोटिक आदि मूल्यवान यौगिकों का उत्पादन किया जाता है। दोनों ही उद्देशों के लिए सूक्ष्मजीवों का बड़े पैमाने पर कल्चर किया जाता है।

iii. कोशिका अनुक्रियाओं का इष्टतमीकरण (**Optimisation of Cell Responses**)

किसी भी जीव की कोशिकाएँ कोई भी प्रकार्य कुछ विशेष दशाओं में ही कर सकती हैं, जो उनके जीनरूप (Genotype) पर निर्भर होता है। उदाहरण के तौर पर अधिकतम वृद्धि के लिए इष्टतम वातावरण में बहुत अधिक जैव–रसायनों, जैसे एन्टिबायोटिक आदि का उत्पादन बहुत ही कम होता है। अतः किसी यौगिक के अधिक उत्पादन के लिए विभिन्न वातावरणीय दशाओं का उपयोग भी अधिकतम उत्पादन प्राप्त कराने में महती भूमिका निभाता है।

iv. प्रक्रम संक्रियाएँ (**Process Operation**)

किसी भी उत्पाद को उत्पन्न करने संबंधी शोध प्राथमिक तौर पर प्रयोगशाला में छोटे पैमाने पर किया जाता है। परंतु व्यापरिक उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है। किसी भी जैव–प्रौद्योगिकीय उत्पादन विधि की व्यापरिक सफलता उसकी प्रक्रम संक्रियाओं के बड़े पैमाने पर उपयोग किए जा सकने पर निर्भर होती है।

v. उत्पाद प्राप्ति

किसी भी उत्पादन प्रक्रिया का अंतिम लक्ष्य संबंधित उत्पाद की प्राप्ति होता है। उत्पाद प्राप्ति की विधि को यथासंभव सरल, सस्ता तथा दक्ष रखना चाहिए। इस प्रक्रिया को अधो–प्रक्रमण (Down Stream Processing) भी कहा जाता है।

HBCSE

जैव–प्रौद्योगिकी के क्रिया क्षेत्र एवं महत्व

वस्तुतः जैव–प्रौद्योगिकी ने मानव जीवन के लगभग सभी पहलुओं को प्रभावित किया है। इसके क्रिया क्षेत्र का विस्तार पर्यावरण से लेकर मानव स्वाथ्य एवं मानव जनन पर नियंत्रण तक है। विश्व के व्यापरिक क्षेत्र में भी इस प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण योगदान है और यह रोजगार, उत्पादन एवं व्यापार के नए–नए अवसर प्रदान कर रही है। वर्तमान में कई नोबेल पुरस्कार विजेता भी बायोटेक्नोलॉजी से संबंधित कंपनियों से जुड़ रहे हैं।

इसके प्रमुख उत्पाद क्षेत्र हैं – चिकित्सा, औद्योगिक, पर्यावरण, कृषि, पादप बायोटेक्नोलॉजी एवं जीन इंजीनियरी।

जैव–प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग

जैव–प्रौद्योगिकी के अनेकानेक क्षेत्रों मे अनुप्रयोग हैं जिनसे जनमानस लाभान्वित हुआ है। इसमें कुछ महत्वपूर्ण जानकारी निम्नवत हैं।

- **ऊर्जा एवं जैव–प्रौद्योगिकी**

विश्व में ऊर्जा की निरंतर बढ़ती मांग तथा पेट्रोलियम उत्पादों की बढ़ती कीमतों के कारण भारत सहित अनेक देशों में ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों के उपयोग पर आवश्यकता प्रतिपादित की गई है। इसका एक अन्य विकल्प है हाइड्रोकार्बन उत्पन्न करने वाले पौधों, अर्थात् ऊर्जा फसलों का संदोहन। सैकड़ों पौधों का पेट्रोक्रॉप्स (ईंधन फसलें) के रूप में उपयोग हो सकता है। किसी जीव द्वारा उत्पादित सम्पूर्ण कोशिकीय शुष्क भार या कार्बनिक पदार्थ को उसका जीवभार (Biomass) कहते हैं। ईंधन के रूप में उपयोग किया जाने वाला जीवभार कार्बन डाइऑक्साइड एवं सूर्य के प्रकाश के उपयोग से बनाया जाता है। जैविक कारकों द्वारा उत्पादित ईंधन को जैव ईंधन (Biofuel) कहते हैं।

वस्तुतः जैव ईंधन एवं जीवाश्म ईंधन दोनों ही जीवभार से प्राप्त होते हैं और दोनों का ऊर्जा का आदि स्रोत सूर्य है। परन्तु जीवाश्म ईंधनों (कोयला एवं पेट्रोलियम उत्पाद) की कुल उपलब्ध मात्रा सीमित है और ये अनवीकरणीय (Non–renewable) है। इसके विपरित, जैव ईंधन नवीकरणीय है।

HBCSE

● **ऊर्जा फसलें :–** जो फसलें सूर्य के प्रकाश का उपयोग कार्बन डाईऑक्साइड के जीवभार में रूपांतरण के लिए दक्षतापूर्वक करती हैं और जिनके जीवभार का उपयोग ऊर्जा के स्रोत के रूप में किया जाता है, उन्हें ऊर्जा फसलें कहते हैं। इन फसलों से प्राप्त जीवभार लकड़ी, शर्करा या स्टार्च तथा हाइड्रोकार्बन के रूप में होता है।

यूफोर्बिएसी, एस्क्लीपिएडेसी, एपोसायनेसी, मोरेसी, सेपोटेसी और कॉन्वलवुलेसी कुल के लगभग चारसौ अस्सी देशी लेटेक्स उत्पादक पौधों और 74 रेजिनयुक्त पौधों का चयन किया जा चुका है। इन पौधों से प्राप्त बायोक्रूड की मात्रा लेटेक्स के अनुसार 26.29 प्रतिशत पायी गयी है। सबसे अधिक सक्षम फसलें– यूफोर्बिया एन्टिसिंफिलिटिका, पेडीलेंथस टिथिमेलॉयडीज कैलोट्रोपिस प्रोसेरा, कैलोट्रोपिस गिगैन्शिया और क्रिप्टोस्टीजिया ग्रैडीफ्लोरा पाई गई।

● **पेट्रो** – रासायनिक उद्योग में जीवाणुओं का उपयोग परंपरागत तेल की खोज या सर्वेक्षण में किया जाता है। प्राकृतिक रूप में पाए जाने वाले बैक्टीरिया हाइड्रोकार्बन का उपयोग ऊर्जा एवं कार्बन स्रोत के रूप में करते हैं।

● **जैव** – प्रौद्योगिकी तेल के विकास तथा भंडारों से तेल निकालने में सहायता करती है संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्पादन का लगभग 5 प्रतिशत तेल सेकेंडरी रिकवरी (द्वितीय प्रतिप्राप्ति विधि) की सहायता से जमीन से निकाला जाता है। इसी प्रकार जैव इथेनॉल एवं जैव ब्युटेनॉल के उत्पादन में भी जैव–प्रौद्योगिकी का योगदान है।

● **बायोडीज़ल** – जैविक पदार्थों से प्राप्त डीज़ल जैसे द्रव को जैव डीज़ल या बायोडीज़ल कहते हैं। बायोडीज़ल के दो जैविक स्रोत हैं। यथा – पौधों एवं शैवालों द्वारा उत्पादित लिपिड तथा कुछ पौधों एवं कुछ शैवालों द्वारा उत्पादित हाइड्रोकार्बन।

कई पौधे एवं कुछ शैवाल हाइड्रोकार्बन एकत्र करते हैं। पौधों में हाइड्रोकार्बन सामान्यतया लैटेक्स के रूप में होते हैं। यूफोर्बिएसी, मिल्कवीड तथा फलीदार वृक्ष कोपैफेरा मल्टीजुगा (Copaifera multijuga) एवं जेट्रोफा शुष्क दशाओं एवं बंजर भूमि पर भी उगाये जा सकते हैं।

हमारे देश के सीएसआईआर–सीएसएमसीआरआई, भावनगर के वैज्ञानिकों ने जेट्रोफा बीज के तेल से बायोडीज़ल तैयार किया है, जिसके उच्च ऊष्मीय मूल्य (9500 कि. कैलोरी/ कि. ग्रा.) के कारण यह जीवाश्म ईंधन का आकर्षक विकल्प बन गया है। इस जैवडीज़ल के साथ, बिना किसी मिलावट के तथा डीज़ल इंजन में बगैर परिवर्तन किए, 18400 फीट ऊचांई तक की यात्रा बिना किसी कठिनाई के की जा चुकी है। संस्थान के वैज्ञानिकों ने जैव–प्रौद्योगिकी का उपयोग करके कटिंग तकनीक में उत्कृष्टता प्राप्त करने के उपरांत, अंगविकास तकनीक द्वारा पत्ते तथा अंकुरण से ऊतक संवर्धित पौधे उगाने में सफलता प्राप्त की है। उक्त दोनों तकनीक द्वारा मातृपौधे के समान ही पौधे उगाये गये इसके क्लोन में किसी भी तरह की विविधता नहीं पायी गई।

● खनन उद्योग में जैव–प्रौद्योगिकी

यद्यपि खनन उद्योग अपने आप में जटिल समस्या है। परंतु हमारे देश के केन्द्रीय खनन एवं ईंधन अनुसंधान संस्थान, धनबाद के वैज्ञानिकों ने जैव–प्रौद्योगिकी का उपयोग खनन क्षेत्र में भी किया है, जो निम्नवत है –

i. कोयला खान के अन्दर के वातावरण को शुद्ध करना।
ii. अयस्कों से धातुओं का निक्षालन।
iii. ऊर्जा प्राप्त करना।
iv. खनन द्वारा विकृत भूमि को सुधारना।
v. भूमिगत खदानों का उपयोग खाद्य सामग्री के उत्पादन में करना।

i. कोयला खानों का निर्गैसीकरण

प्रायशः कोयला खानों में मीथेन गैस का उत्सर्जन होता है, जिसके कारण आग लगने की आशंका बनी रहती है। इस कारण कोयला खानों का निर्गैसीकरण आवश्यक है। इस कार्य के लिए जो जीवाणु प्रयुक्त किए जाते है उन्हें मिथेनोट्राफ्स कहते है। ये ग्राम निगेटिव होते हैं। अनेक कोयला खानों का इस विधि द्वारा निर्गैसीकरण करके कोयला निकालने में सफलता प्राप्त हुई है।

ii. अयस्कों से धातुओं का निक्षालन

धातुओं का निक्षालन करने में आनेवाले अनेक जीवाणु हैं, इनमें से प्रमुख हैं –

थायोबेसिलस फेराऑक्सीडेज, थायोबेसिलस थायोऑक्सीडेज, सल्फोलोबस ऐसिडोकैल्केरियस आदि। निक्षालन प्रक्रिया भी दो प्रकार से होती है, यथा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष विधि से।

iii. खनन द्वारा विकृत भूमि को सुधारना

खनन से होने वाले गंभीर नुकसानों में मिट्टी की ऊपरी परत का ह्रास तथा वनों का विनाश शामिल हैं। इस समस्या का उपचार है माइकोराइजा नामक एक सहजीवी कवक जिसका उपयोग विकृत भूमि के प्रबंधन में अक्सर किया जाता है।

iv. खाद्य सामग्री के उत्पादन में भूमिगत खदानों का उपयोग

परित्यक्त भूमिगत खदानों का उपयोग खुम्ब (मशरूम) की पैदावार में किया जा सकता है। क्योंकि मशरूम के उत्पादन के लिए ठंडे एवं अंधेरे वातावरण की आवश्यकता होती है। अतः इसकी अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए उचित वातावरण भूमिगत खानों में ही प्राप्त हो सकता है। इस दिशा में केन्द्रीय खनन एवं ईंधन अनुसंधान संस्थान, धनबाद उत्कृष्ट शोध कार्य कर रहा है।

● कृषि विकास और जैव–प्रौद्योगिकी

यद्यपि जैव–प्रौद्योगिकी ने हमारे जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में अपना प्रमुख स्थान बना लिया है। परंतु इसका सबसे अधिक प्रभाव कृषि एवं चिकित्सा विज्ञान में दिखाई दे रहा है। ऊतक संवर्धन, भ्रूण संवर्धन आदि पादप प्रवर्धन विधियाँ हमें जैव–प्रौद्योगिकी के द्वारा ही प्राप्त हुई हैं। कृषि वैज्ञानिकों ने ऐसी प्रजातियाँ विकसित की हैं, जिनमें हानिकारक गुणों की अपेक्षा लाभकारी गुण अधिक हैं। अब ऐसी किस्मों का विकास किया जा रहा है, जिन पर कवकनाशी एवं किटनाशी रसायनों के अवशेषों का प्रभाव न पड़े अथवा वह किस्म ऐसे गुणों वाली हो कि उस पर अमुक विशेष बीमारी या कीड़े का प्रकोप ही न हो।

जैव–प्रौद्योगिकी के द्वारा अब यह संभव है कि फसलों किस्मों और उत्पादन में गुणात्मक वृद्धि की जा सकती है, फसलों की अवधि घटाकर एक ही भूक्षेत्र में कई बार खाद्यान्न फसलों का उत्पादन किया जा सकता है। जीन अभियांत्रिकी तथा पौधों की नई विकसित प्रजनन–प्रौद्योगिकी के द्वारा फलों और सब्जियों के स्वाद नियंत्रित किए जा

सकते हैं तथा उनमें ऐसे गुणों का समावेश कराया जा सकता है, जिससे वे लंबे समय तक सड़ने–गलने और खराब होने से बचे रह सके। जैव–प्रौद्योगिकी की आधुनिक तकनीकों से पादप प्रजनन में अधिक शुद्धता और तेजी लाई जा सकती है।

i. दुग्ध उत्पादन में वृद्धि

जैव–प्रौद्योगिकी द्वारा पशुधन–उत्पादन में वृद्धि की संभावनाएँ व्यक्त की गई हैं। इस प्रौद्योगिकी द्वारा पशुओं की आनुवंशिकी पोषण, भार–वृद्धि, दुग्ध उत्पादन में वृद्धि, रोगों की पहचान एवं निवारण, भ्रूण–प्रस्थापन एवं पराजीवी पशुओं द्वारा मूल्यवान औषधीय पदार्थ का उत्पादन संभव हुआ है। जैव–प्रौद्योगिकी के द्वारा ही पशुओं में देह प्रभावी हार्मोन (बोवाइनसोमैटो ट्रोफिन) या बी. एस. टी. का उत्पादन संभव हुआ है।

ii. नीली क्रांति एवं जैव–प्रौद्योगिकी

मछली प्राप्ती के प्राकृतिक स्रोतों के अंधाधुंध दोहन से प्राकृतिक जल स्रोतों से होने वाला मछली उत्पादन दिन–प्रतिदिन घटता जा रहा है। वस्तुतः घटते प्राकृतिक मछली–उत्पादन के पूरक स्वरूप ही मत्स्य संवर्धन या मछली–पालन आरंभ हुआ। तेजी से बढ़ते मत्स्य पालन कार्यक्रमों अथवा तथाकथित "नीली–क्रांति" के लागू होते ही भारतीय वैज्ञानिकों ने जैव–प्रौद्योगिकी का प्रयोग मत्स्य उत्पादन बढ़ाने में किया है।

मछली की जातियों की आपसी संकरण से मनोवांछित गुणों वाली नई मत्स्य जातियों के विकास पर शोध कार्य जारी है। अधिकतर मछलियों में उच्च कशेरूकियों, सरीसृपों, पक्षियों व स्तनियों जैसा विषम आकारिक (Heteromorphic) लैंगिक गुण सूत्र नहीं होता है। इनमें जैव–प्रौद्योगिकी के प्रयोग द्वारा सेक्स हार्मोन के अनुप्रयोग से मछलियों में लैंगिक विपर्यय के प्रयोग सफल हुए हैं।

iii. ऊतक संवर्धन

ऊतक संवर्धन जैव–प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जो अकेले जनक पौधे की व्यष्टिगत कोशिकाओं और ऊतकों को अनेक स्वतंत्र पौधों को उत्पन्न करने के लिए प्रेरित करता है। इस तकनीक में ऊतकों को विभिन्न कृत्रिम पोषक माध्यमों पर नियंत्रित दशाओं में संवर्धित करते हुए उन्हें नन्हें पौधों में परिवर्धित करते हैं। इस प्रकार से प्राप्त सभी पौधें

कायिक विधि द्वारा गुणित किए जाते हैं। इस विधि द्वारा इच्छित पौधों को तीव्र गति से अधिक संख्या में बढ़ाया जा सकता है। कम समय में अधिक शाकीय और काष्ठीय पादप जातियों की रोगमुक्त सामग्री को उत्पन्न करने में ऊतक संवर्धन महत्वपूर्ण सिद्ध हो रहा है। ऊतक संवर्धन तकनीक का प्रयोग उत्तम किस्म के फूल तथा फूल वाले पौधों के परिवर्धनों के लिए किया जा रहा है।

iv. पराजीवी या ट्रांसजेनिक फसलें

वस्तुतः ट्रांसजेनिक या पराजीवी पादप ऐसे पौधों को कहते हैं, जिन्हें कोशिका, ऊतक अथवा अंग–संवर्धन द्वारा आनुवंशिक इंजीनियरी विधियों के माध्यम से विकसित किया गया हो। पराजीवी पादपों में इनके नैसर्गिक जीनों के अतिरिक्त अन्य जीन बाहर से प्रविष्ट कराकर इन्हें विकसित किया जाता है। ये रोग–रोधी, कीट–रोधी, विषाणु–रोधी तो होते ही हैं, साथ ही साथ इनमें अन्य प्रकार के कुप्रभावों के विरुद्ध प्रतिरोध की क्षमता भी होती है। ट्रांसजेनिक फसलों से अधिक उपज भी प्राप्त की जाती है। इनमें अच्छे प्रकार के प्रोटीनों का भी संग्रह होता है तथा अब ये अत्याधिक लोकप्रिय हो रही है। इस विज्ञान को आणविक खेती या Molecular Farming कहते हैं और यह तीव्र गति से प्रगति कर रहा है तथा विश्व भर में कई पराजीवी किस्में विकसित की गई हैं। कुछ प्रमुख हैं – तंबाकू, पेटूनिया, टमाटर, आलू, बैंगन, अलसी, सूर्यमुखी, रेपसीड, बंद एवं फूल गोभी, सरसों, शकरकंद, राई, गेंहू आदि।

v. सोमोक्लोनल विविधता

ऊतक संवर्धन द्वारा पौधों को कायिक विधि द्वारा प्रगुणित किया जाता है, इसके फलस्वरूप कोशिका विभाजन द्वारा एक कोशिकाओं का पुंज बनता है जिसे कैलस कहा जाता है। इस कैलस द्वारा विकसित पौधे प्रायः कुछ आनुवांशिक विविधताएँ दर्शाते हैं। इसे सोमाक्लोनल विविधता कहते हैं। पादप अभिजनन के लिए यह एक नया व अच्छा माध्यम है जिसके द्वारा आनुवंशिक विविधता उत्पन्न की जा सकती है।

राष्ट्रीय जैव–प्रौद्योगिकी अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली द्वारा विकसित की गई राई की किस्म "पूसा जय किसान" इसी विधि द्वारा विकसित की गई है। तथा यह भारत की पहली विमोचित राई की किस्म है जिसे जैव–प्रौद्योगिकी द्वारा विकसित किया गया है।

इस तकनीक का प्रयोग पादप अभिजनन के द्वारा फसल सुधार हेतु संपूर्ण विश्व में किया जा रहा है।

vi. जैव उर्वरक

बढ़ती जनसंख्या के भरण–पोषण हेतु उपज बढ़ाने में उपयोग किए गए रासायनिक उर्वरकों से मृदा, वायु एवं जल प्रदूषण में वृद्धि हुई है। इस क्षतिपूर्ती हेतु जैव उर्वरक, यथा एजोटोबैक्टर, फॉस्फोबैक्टीरिया, राइज़ोबियम तथा अन्य जीवाणुओं के धनात्मक प्रभाव देखे जा चुके हैं।

जैविक उर्वरकों में राइजोबियम इनोक्यूलेंटस अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्योंकि यह दलहनी तथा गैर–दलहनी फसलों को वायुमंडलीय नाइट्रोजन सहजीवन के द्वारा प्रदान करता है। जो नाइट्रोजन दलहनी फसलों द्वारा प्रयुक्त नहीं की जाती है, वह अन्य फसलों को उपलब्ध हो जाती है, जैसे–मूंगफली, चना, उड़द, लोबिया तथा सोयाबीन। राइजोबियम का दलहनी फसलों में उपयोग करने से उनकी उपज में 25 से 30 प्रतिशत वृद्धि होती है।

एजोस्पिरिलियम, खाद्य फसलों, जैसे– धान, गन्ना, कपास, मोटे अनाज व बागवानी की फसलों के लिए उपयुक्त होता है। इससे उपज वृद्धि 0–64 प्रतिशत देखी जा चुकी है। एजोटोबैक्टर का धान, कपास, टमाटर, पत्तागोभी तथा अन्य एकबीज पत्री फसलों में उपयोग किया जाता है। इससे उनकी उपज में 0–30 प्रतिशत वृद्धि हो जाती है।

vii. जैव पीड़कनाशी

भारतीय कृषि उत्पादन में एक सबसे बड़ी बाधा पादप पीड़कों (Plant pests) एवं इनके द्वारा होने वाले रोगों से है। एक आकलन के अनुसार इन कीटों द्वारा 6,000 करोड़ रूपये की हानि होती है। कृषि में रासायनिक पीड़कनाशियों के अत्यधिक उपयोग से यह अपनी अविघटनशील प्रकृति के कारण कई वर्षों तक अविघटित पड़े रहते हैं तथा खाद्य–श्रृंखला के माध्यम से जंतुओं में संचित होकर अनेक समस्याएँ यथा– पक्षियों में अंडों का समयपूर्व फूटना, मनुष्यों में पक्षाघात, पागलपन, मंदबुद्धि एवं अनेक तंत्रिका संबंधी दोष

HBCSE

उत्पन्न हो जाते हैं। इनसे गिद्धों का विनाश हुआ है। इस समस्या का निदान जैव पीड़कनाशी (Biopesticide) के उपयोग से किया जा सकता है। जैव पीड़कनाशी के रूप में उपयोग होने वाले कुछ सूक्ष्मजीव निम्नांकित हैं –

- स्यूडोमोनास फलूरीसेंस
- स्यूडोमोनास सेपासिया
- बैसिलस थूरिनजिएंसिस
- बैसिलस पोपली
- बैसिलस सबटिलस
- एग्रो बैक्टीरियम रेडियोबैक्टर

सूक्ष्मजीवों के अतिरिक्त कुछ कवक एवं विषाणु भी जैव पीड़कनाशी के रूप में उपयोगी हैं। अतः आशा की जाती है कि कालांतर में सूक्ष्मजीवों पर आधारित जैव पीड़कनाशी कृषि के लिए, मानव स्वाथ्य तथा पर्यावरण सुरक्षा हेतु वरदान सिद्ध होंगे।

viii. बागवानी में जैव प्रौद्योगिकी

जैव प्रौद्योगिकी के कारण जटिल से जटिल उद्यानिक समस्याओं का समाधान पौधों के वानस्पतिक प्रवर्धन, संकरण द्वारा किस्मों की पहचान, ऊतक संवर्धन, जीन स्थानांतरण अथवा अन्य नवीन तकनीकों के प्रयोग द्वारा संभव हो पा रहा है।

● स्वाथ्य सुरक्षा एवं जैव–प्रौद्योगिकी

जैव–प्रौद्योगिकी का सबसे अधिक उपयोग मानव स्वाथ्य की रक्षा में हुआ है। इसके दो प्रमुख कारण हैं– यह मानव के लिए सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र है तथा इस क्षेत्र में आर्थिक लाभ भी सबसे अधिक होता है। मानव स्वाथ्य के क्षेत्र में जैव–प्रौद्योगिकी के योगदानों को निम्न वर्ग में विभक्त किया गया है।

i. रोग की रोकथाम (Prevention of disease)
ii. रोग निदान (Disease diagnosis)
iii. चिकित्सकीय औषधियाँ (Therapeutic drugs)
iv. विधि औषधी (Forensic medicine)
v. जनसंख्या नियंत्रण (Population control)

vi. आनुवंशिक रोगों का संशोधन (Correction of genetic disease)

i. रोग की रोकथाम : टीकों द्वारा रोग की रोकथाम बहुत सरल, सुविधाजनक, बहुत अधिक प्रभावी तथा सबसे वांछनीय स्वाथ्य रक्षण विधि है। चेचक के टीके के समुचित उपयोग से इस रोग का उन्मूलन हो चुका है। टीके भी कई प्रकार के होते हैं, यथा – पारंपरिक (Conventional), शोधित प्रतिजन (Purified Antigen) तथा पुनर्योगज (Recombinant) प्रोटीन/पॉली पेप्टाइड/डी एन ए टीके)।

हमारे देश के भारतीय प्रतिरक्षा अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिक डॉ. जी. पी. तलवार को कुष्ठ रोग का वैक्सीन विकसित करने में सफलता प्राप्त हुई है। उन्होंने "लेप्रोवक" नामक टीका बनाया है जिसका सफल परीक्षण होने के बाद हजारों लोगों को प्रतिरक्षित किया जा चुका है। इसी क्रम में हैदराबाद की "शांता बायोटेक्निक्स" ने "हिपेटाइटिस–बी" रोधी वैक्सीन "शनवक" विकसित की है। जापानी एन्सेफेलाइटिस तथा रेबीज के प्रतिरोधी वैक्सीन भी विकसित किए जा चुके हैं। भारतीय रासायनिक जीवविज्ञान संस्थान, कोलकाता के वैज्ञानिकों ने हैजा के जिनोम का खाका बनाया है तथा हाल ही में अल्फा फीटोप्रोटीन नामक दवाई के उत्पादन की पद्धति को विकसित किया है।

डी एन ए टीके : जैव–प्रौद्योगिकी की सहायता से डी एन ए टीकों का निर्माण कर वैज्ञानिक परंपरागत टीकों की कमियों को दूर करने में सफल हुए हैं। इन टीकों में जीवित या मृत रोगाणुओं का प्रयोग न करके इनसे प्राप्त विशेष जीनों का उपयोग शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को सक्रिय करने के लिए किया जाता है। इन टीकों का सीधे मांसपेशियों की कोशिकाओं या त्वचा की कोशिकाओं में प्रवेश कराया जाता है। इस टीके का प्लाज्मिड प्रतिरक्षा प्रणाली के दोनों तंत्रों को सक्रिय करके शरीर को रोग से पूर्ण सुरक्षा प्रदान करता है। इसके साथ–साथ डी एन ए टीके के प्रयोग से किसी अनचाहे संक्रमण की आशंका भी नहीं होती है। वर्तमान में वैज्ञानिक अनेक प्रभाव के डी एन ए टीकें बनाकर मानव शरीर पर उनके प्रभाव का अध्ययन व अन्वेषण कर रहे हैं।

ii. रोग निदान : रोगों के सफल उपचार के लिए शीघ्र, सुस्पष्ट एवं विश्वसनीय रोग

निदान अनिवार्य है। पारंपरिक रोग निदान की विधियां, यथा– सूक्ष्मदर्शी से परीक्षण, कल्चर, आमापन तथा रोगी के शरीर में रोगजनक विशिष्ट प्रतिरक्षियों की उपस्थिति का संसूचना एवं मापन आदि श्रमसाध्य हैं तथा इनके परिणाम भी सुस्पष्ट नहीं होते हैं।

जैव–प्रौद्योगिकी के द्वारा विकसित अन्वेषी (प्रोब) तथा मोनोक्लोनल प्रतिरक्षी (मोनोक्लोनल एन्टिबॉडीज) रोग निर्णय में बहुत कारगर सिद्ध हुए हैं। क्योंकि इनमें विशेष एन्टिजन को पहचानने की पूर्ण क्षमता होती है।

iii. जीन–चिकित्सा : मानव जीन चिकित्सा एक ऐसी विधि है, जिसके द्वारा आनुवंशिक एवं अन्य रोगों का इलाज किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत दोषी जीवों को सही जीनों में बदला जाता है या अनुपस्थित/अधिक जीनों को जोड़ा या कम किया जाता है। इस प्रक्रिया को जीन थेरेपी कहते हैं। जैव–प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप प्राकृतिक औषध उद्योग नया रक्त, रोगोपचार में ट्रांसजेनिक दूध, लक्ष्यभेदक औषधियाँ, नए एवं डी एन ए टीकें, कैंसर रोग निदान, फ्लू सुरक्षा में नई दवाएँ, एड्स का जवाबी वैक्सीन, महिलाओं की सुविधा आदि क्षेत्रों में विलक्षण सफलताएँ प्राप्त हुई हैं।

● **जैव संवेदक (Biosensors)** : जैव संवेदक में एक अन्वेषी शलाका (प्रोब) होता है, जिसमें एक जैविक रूप से प्राप्त अभिज्ञान परत होती है, जिसे बायोलेयर कहते हैं। यह बायोलेयर सीधे एक ट्रांस्ड्यूसर से जुड़ी होती है, जो जैविक प्रतिक्रिया को रासायनिक प्रतिक्रिया में बदल देता है।

उपयोग : बायोसेंसर के निम्नांकित क्षेत्रों में उपयोग है –

• **चिकित्सा के क्षेत्र में** : सर्वप्रथम सन् 1987 में बायोसेंसर बनाया गया जो रक्त में ग्लूकोस की जाँच करनेवाला जेबी बायोसेंसर था। हमारे देश में सेंट्रल इलेक्ट्रोकेमिकल रिसर्च इंस्टिट्यूट, कराईकुड़ी ने भी एक अत्यन्त ही संवेदनशील स्वदेशी ग्लूकोस सेंसर बनाया। क्योंकि यह 0–15 मिलीमोल (मिली 10^{-3}) से भी कम ग्लूकोस की मात्रा के लिए विद्युत संकेत प्रदर्शित करता है, बायोसेंसर तकनीक से संक्रामक एवं असंक्रामक दोनों ही प्रकार के रोगों का निदान संभव है। समाकलित बायोसेंसर शरीर के अधस्त्वचीय अंतरालों और हार्मोन का विश्लेषण शीघ्र कर सकते हैं।

- **खेल के क्षेत्र में :** (बायोसेंसर के द्वारा पसीने में अमोनिया एवं लैक्टिक अम्ल की मात्रा ज्ञात हो सकती है, जिससे धावकों की थकान के बारे में जानकारी मिलती है।)
  - **रक्षा क्षेत्र**
  - **कृषि क्षेत्र**
  - **खाद्य–उद्योग**
  - **पर्यावरण के क्षेत्र में**
  - **औद्योगिक क्षेत्र में**

इस प्रकार चिकित्सा के क्षेत्र में जैव–प्रौद्योगिकी ने नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं तथा अनेक असाध्य रोगों के निदान के मार्ग खोले हैं।

- **पर्यावरण एवं जैव–प्रौद्योगिकी**

जैव–प्रौद्योगिकी का पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में बहुत योगदान है। इसके उपयोग से अब ऐसे सूक्ष्म जीवाणुओं को तैयार किया जा सकता है जो जैविक रूप से बेकार पड़े पदार्थों/कचरों को तथा साथ ही अविषालु पदार्थों को भी नष्ट या परिवर्तित कर अविषालुता को समाप्त कर सकते हैं। वर्मीकल्चर भी इसमें प्रभावी कदम है। कृमिकंपोस्ट में केंचुओं का उपयोग किया जाता है, जो प्रतिदिन अपने वजन से अधिक कूड़े को पचा लेते हैं। उनका बिखरा हुआ बारीक पदार्थ जीवाणुओं की अभिक्रिया के लिए आधार प्रदान करता है, जिसके बदलें में ये घुलनशील नाइट्रोजन, पोटैशियम और कैल्शियम उत्पन्न करते हैं। वैज्ञानिकों ने विलक्षण गुणों वाले सूक्ष्म जीवों को भूमि के नीचे तथा सागर की गहराई तक खोजा है। जैव उपचार प्रक्रियाएँ कम लागत के कारण अधिक लोकप्रिय हुई हैं।

इसी प्रकार प्रदूषण नियंत्रण में प्रदूषण नियंत्रक पौधों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। जलीय पौधों द्वारा पानी की सफाई करने का पुराना इतिहास है। जलीय पौधें भी कई प्रकार के होते हैं। कुछ जलकुंभी जैसे पौधे पानी की सतह पर तैरते हैं, दूसरे पूरी तरह से पानी में डूबे रहते हैं, जबकि कुछ तालाबों की तली पर जड़ों के निकल आने के बाद पानी की सतह पर निकल आते हैं। जलकुंभी का उष्णकटिबंध एवं उपोष्ण क्षेत्रों में ए. एम. एस. (Aquatic Macrophyte based Waste Water System) के रूप में तथा पैनीवार्ट, पैराघास तथा नैपियर घास आदि का भी प्रदूषित धातुओं के अवशोषण में

उपयोग किया जाता है।

- **परखनली वन**

जैव–प्रौद्योगिकी के कारण ऊतक संवर्धन तथा सूक्ष्म प्रवर्धन से विपुलता के कगार पर पाई जानेवाली प्रजातियों की पौध उपलब्ध हो रही है। इस विधा में किसी रोगमुक्त उपयोगी वृक्ष के किसी भी भाग का एक टुकड़ा लेकर परखनली में पूरी खुराक देकर नया पौधा प्राप्त किया जा सकता है तथा बड़े पैमाने पर इसकी पौध तैयार की जा सकती है। इस विधि का प्रयोग वानिकी, कृषि–विकास, फल तथा पुष्पोत्पादन में किया जा सकता है।

- **चर्म उद्योग में जैव–प्रौद्योगिकी**

चर्म शोधनालय से निकलने वाले अपशिष्ट महत्वपूर्ण औद्योगिक प्रदूषक हैं। खुरदरें खाल को चमकदार चमड़े के रूप में आने तक अनेक रासायनिक प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। इन अपशिष्टों के उपचार में जैव–प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि प्रोटोनलयी या वसालयी प्रक्रियाओं का उपयोग किया जाए तो चर्मशोधन अपशिष्ट जल से क्रोमियम निष्कासन हेतु स्यूडोमोनास जातियां और ए. फ्यूमिगेट्स जैसे सूक्ष्मजीव कारगर सिद्ध हुए हैं।

- **तेल प्रदूषण की रोकथाम में जैव–प्रौद्योगिकी**

वस्तुतः तेल प्रदूषण का प्रत्यक्ष कुप्रभाव सामुद्रिक जीवों तथा मानव पर भी पड़ता है। वैज्ञानिकों के आकलन के अनुसार एक ग्राम खनिज तेल एक घन लीटर समुद्री जल को विषैला करता है जिससे कुछ जलीय जीवों की मृत्यू भी हो जाती है। आनुवंशिक इंजीनियरों ने डी एन ए पुनर्योजन विधि से जीवाणुओं को विकसित किया है, जो अपना बहुगुणज भी करते हैं। भारतीय मूल के अमेरिका में कार्यरत वैज्ञानिक डॉ. आनंद चक्रवर्ति ने "स्यूडोमोनास" नामक जीवाणु की एक नयी प्रजाति विकसित की है, जो समुद्र में फैले पेट्रोलियम को हजम कर जाती है। ऐसे जीवाणु को "सुपरबग" कहते हैं।

- **मानव जीनोम परियोजना**

किसी भी प्राणी के संपूर्ण आनुवंशिक पदार्थ को "जीनोम" कहते हैं। जैव –

प्रौद्योगिकी की सबसे महत्वपूर्ण और अद्यतन उपलब्धि मानव जीनोम की संरचना का पता लगाना है। इससे जैव–चिकित्सा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन होंगे, पर्यावरण संरक्षण में सहायता मिलेगी, रोग रहित पादप विकास, अधिक उत्पादन वाले, स्वस्थ और रोग प्रतिरोधी पालतू पशुओं की नई प्रजातियों का विकास तथा स्वाथ्य संबंधी खतरों एवं जोखिम का आकलन हो सकेगा।

- **डी एन ए फिंगर प्रिंटिंग**

जीवित कोशिकाओं के गुण–सूत्रों में पाए जानेवाले लंबे तंतुनुमा अणु, जिनमें आनुवंशिक कूट निबद्ध होता है, डी एन ए कहलाते हैं। डी एन ए फिंगर प्रिंट तकनीक आनुवंशिक विज्ञान की देन है। जीवन सूत्र एक बहुत ही स्थिर रासायनिक तत्व है, अतः नमूना लिये जाने के बहुत बाद तक भी इससे व्यक्ति विशेष का क्रमादेश बताया जा सकता है। यह विशिष्ट क्रमादेश जीवनपर्यंत एक–सा रहता है तथा इसके कई उपयोग हैं– अपराधों एवं पारिवारिक मामलों की जाँच, प्रतिरक्षा प्रलेख, आयुर्विज्ञान एवं स्वाथ्य जाँच, वंशावली–विश्लेषण, कृषि एवं बागवानी तथा शोध एवं उद्योग।

यद्यपि जैव–प्रौद्योगिकी के अनेकानेक क्षेत्रों में अनुप्रयोग हैं तथा संधारणीय विकास के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जैव–प्रौद्योगिकी के समेकित उपयोग हेतु विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रयत्न भी किए जा रहे हैं। तथापि हमें इस प्रौद्योगिकी के विवादित पहलुओं से बचने हेतु इसका मानव कल्याण में विवेकपूर्ण तरीके से ही उपयोग करना होगा।

➢ "गुरू कृपा", ब्रह्मपुरी,
हजारी चबूतरा,
जोधपुर – 342 001
ई–मेल : ddozha@gmail.com

HBCSE

ज्ञान-विज्ञान शैक्षिक निबन्ध

सम्पादन : कृष्ण कुमार मिश्र

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केंद्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान
मुंबई-400 088